वैवाहिक विलम्ब के विविध आयाम एवं मन्त्र



Mridula Trivedi

ज्योतिष-जगत की ऊर्जस्वल उपलब्धि

वैवाहिक विलम्ब

के

विविध आयाम एवं मन्त्र

वैवाहिक विलम्ब एवं वैवाहिक विघटन के ज्योतिषीय कारण, मंगल-दोष की सर्वांग व्याख्या, मन्त्र की सैद्धान्तिक मीमांसा, प्रासंगिक विशिष्ट स्तोत्र तथा प्रयोग, व्रत का बहुपक्षीय विश्लेषण, अध्ययन-अनुभव-अनुसंधान का त्रिवेणी संगम

लेखिका

मृदुला त्रिवेदी

प्राक्कथन

डॉ० बी० वी० रामन

प्रकाशक

मो ती ला ल   ब ना र सी दा स

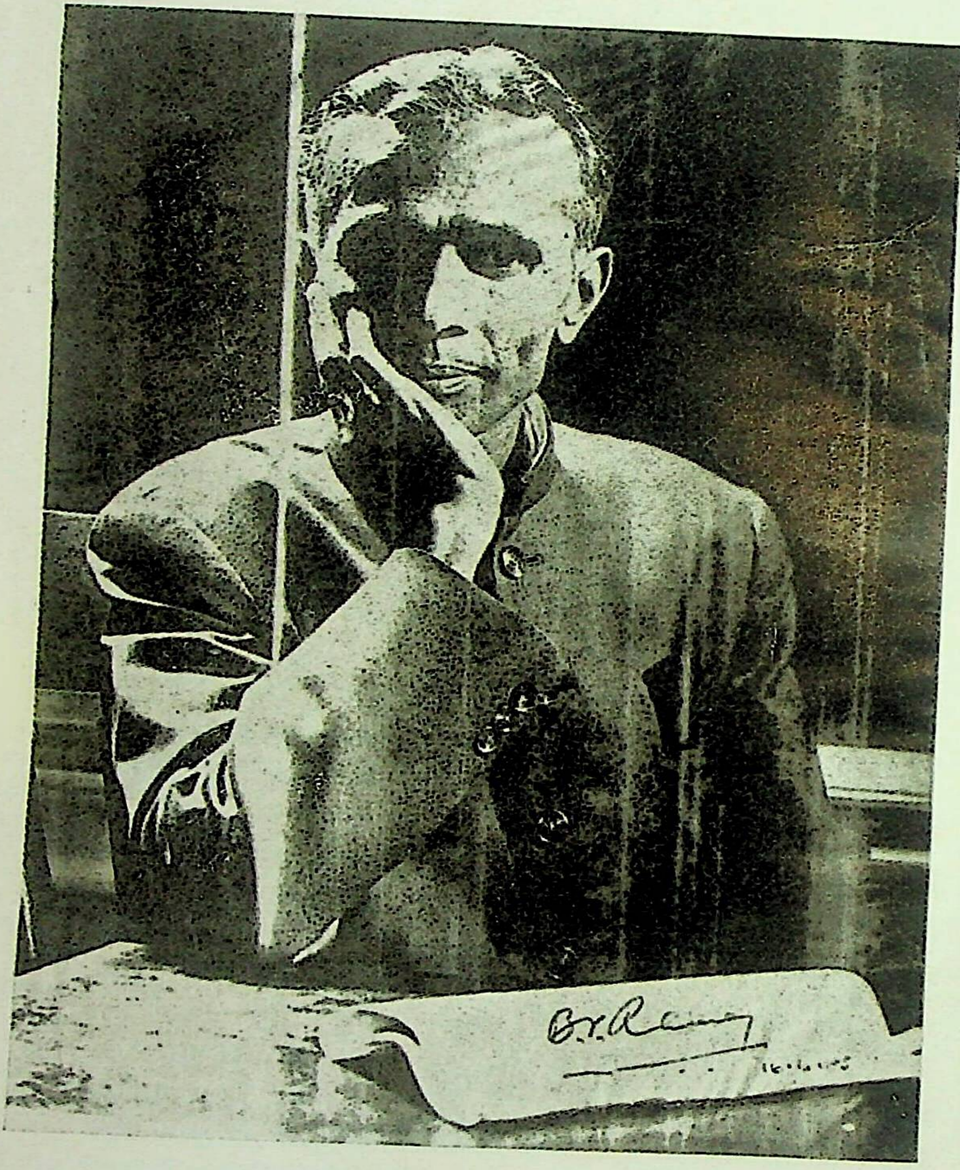
दिल्ली   वाराणसी   पटना   मद्रास   बंगलोर

मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
शाखाएँ : चौक, वाराणसी २२१ ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
१२०, रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४
२४, रेस कोर्स रोड, बंगलौर ५६० ००१

प्रथम संस्करण : १९८८

मूल्य : रु० ४५

नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, चौक,
वाराणसी द्वारा प्रकाशित तथा केशव मुद्रणालय,
सुधाकर रोड खजुरी, वाराणसी–२ द्वारा मुद्रित ।



ज्योतिष की वैश्विक विख्याति के अक्षर प्रतिमान

एवं

बहुवस्तुसंस्पर्शिनी मनीषा के शलाका-पुरुष

सर्वसमादृत डॉ० बी० वी० रामन

को पुस्तक का प्रथम वाचन !

FOREWORD

By

BANGALORE VENKATA RAMAN

Editor, THE ASTROLOGICAL MAGAZINE, Banglore

Women have proliferated into every area of human activity. Astrology is no exception. Mrs. Mridula Trivedi, still in her thirties, is a dynamic and enterprising astrological scholar who has been writing on various aspects of Astrology.

Vaivahik Vilamb Ke Vividh Ayaam evam Mantra is her maiden foray into the world of books. Her delineation of marriage, especially delay in marriage, is both lucid and thorough. She has in addition shown ways and means of overcoming horoscopic afflictions by **mantra**, **japa** and other observances.

Mrs. Trivedi has also dealt with the subject of denial of marriage and lack of marital happiness in considerable detail.

Mrs. Trivedi's treatment of the dreaded Kuja Dosha is quite exhaustive. She has given a number of illustrative charts, enabling amateur astrologers and students of astrology to correctly assess the intensity or otherwise of this particular affliction. But, her concluding statement about the significance of Jupiter's aspect on Mars causing the affliction needs further study.

Mrs. Trivedi's approach to remedial astrology is both comprehensive and relevant. She is quite correct in imphasizing the need for initiation into the **mantra** by a competent Guru before one can safely embark on the **mantra**.

Mrs. Trivedi has worked hard in providing much astrological information on the problems of marriage. I am sure her book will be well received by all those interested in Astrology. I look forward to seeing more books by her on different aspects of Astrology and wish her all success.

25-1-1988 B. V. RAMAN

FOREWORD

By

BANGALORE VENKATA RAMAN

Editor, THE ASTROLOGICAL MAGAZINE, Bangalore

Women have proliferated into every area of human activity [illegible] Mrs. Mitchell [illegible] [illegible] dynamic and enterprising [illegible] whether [illegible] on certain aspects of Astrology.

[illegible] Vimshottari Dasa [illegible] Aspects [illegible] is her [illegible] the world of [illegible] [illegible] [illegible] and [illegible] [illegible] and other [illegible]

Mrs. Trivedi has also dealt with the problem of denial of marriage and lack of [illegible] considerable detail.

Mrs. Trivedi's treatment of the [illegible] is quite exhaustive. She has given a number of illustrative charts, enabling [illegible] astrologers and students of astrology to correctly assess [illegible] or otherwise of their [illegible] afflictions. But the [illegible] statement about the significance of Jupiter's aspect on [illegible] afflictions needs further study.

Mrs. Trivedi's approach to [illegible] astrology is both [illegible] and rational. She is quite correct in emphasising the [illegible] by a competent [illegible] [illegible] on the [illegible]

Mrs. Trivedi has worked hard in providing much astrological [illegible] on the problems of marriage. I am sure her book [illegible] well received by all those interested in Astrology. I look forward to seeing more books by her on different aspects of Astrology and wish her all success.

B. V. RAMAN

[illegible]-1-19[illegible]

पुरोवाक

"यथा शिखा मयूराणां
नागानां मणयो यथा
तद्वद्वेदांगशास्त्राणां
ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्"

(याजुष ज्योतिष ४)

(जैसे मयूरों की शिखा और नागों की मणि शिरोभूषण है, वैसे ही वेदांग-शास्त्रों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) में ज्योतिष शिरोभूषण है)।

प्रस्तुत कृति उस अनिरुद्ध रचना-प्रक्रिया का प्रतिफल है, जिसके मूल में कुछ पूंजीभूत अनुभव अवस्थित है।

विकास के अलंध्य अंतरालों को अतिक्रमित करता हुआ मानव-समाज यात्रा के जिस विन्दु पर स्तब्ध खड़ा है, वह तलस्पर्शी चिन्ता का विषय है। दुष्प्रवृत्तियों के रावण का अट्टहास विकराल रूप प्राप्त कर रहा है और मानवीय मूल्यों के राम का स्थाई वनवास हो गया है। व्यापक सामाजिक हितों के संरक्षक एवं जन-जन को आत्मीयता के पीयूष से सिंचित करने वाले राग-संदर्भ सर्पदंशित रोहिताश्व की भांति आस्था का आंचल ओढ़कर जीवन के दाहघाटों पर भस्मीभूत होने के लिए वाध्य हैं।

इस प्रताड़ित परिवेश में समस्त सामाजिक संस्थायें अस्तित्व-संकट की दुराशंका से घिर गई हैं। विवाह नामक संस्कार और परिवार नाम्नी संस्था ने इस विघटनशील युग के सर्वाधिक घात-प्रतिघात सहन किये हैं। सम्प्रति सर्वतोभावेन उपयुक्त परिणय संपन्न होना एक दुस्साध्य और दुष्कर प्रक्रिया बन गई है। उसमें भी समस्या का संदर्भ यदि कन्या के विवाह में जुड़ता हो तो स्थिति की भीषणता का अनुमान कोई भुक्त-भोगी ही कर सकता है।

कन्याओं का विवाह सर्वदा से समस्यापूर्ण रहा है। परन्तु साम्प्रतिक समाज में यह स्थिति और त्रासद हो गई है। अनेकानेक कन्याओं की वरमाला उनके हाथों में ही मुरझा जाती है अथवा उनका परिणय तब सम्पन्न होता है जब उनके जीवन का ऋतुराज पत्रपात की प्रतीक्षा में तिरोहित हो जाता है। वैवाहिक विलम्ब के अनेक कारण हो सकते हैं। आर्थिक-विषमता, शिक्षा की स्थिति, पारिवारिक पृष्ठभूमि, शारीरिक संयोजन, मानसिक-संस्कार, वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा, वैचारिक अन्तर्विरोध आदि अनेक कारण वैवाहिक विलम्ब के उत्तरदायी सिद्ध होते हैं।

कन्या के वयस्क होते ही उसके अभिभावक उसके परिणय का उपक्रम प्रारम्भ कर देते हैं। यदि उचित समय पर अनुकूल वर उपलब्ध नहीं होता तब अभिभावक अनागत की व्याख्या के लिए जन्मांग लेकर ज्योतिर्विदों की शरण में जाते हैं।

मैं विगत प्रायः ७–८ वर्षों से लखनऊ में आवासित हूँ। इस अवधि में ज्योतिष से विभिन्न रूपों-प्रारूपों में सम्बद्ध समस्यायें लेकर सहस्राधिक व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) मेरे अनुभव क्षेत्र में आये हैं, उनमें से ३००० से अधिक व्यक्ति वैवाहिक विलम्ब की समस्या से आक्रान्त थे। प्रायः ५५% समस्यायें कन्याओं के वैवाहिक विलम्ब अथवा उनके दाम्पत्य अन्तर्विरोधों से सम्बन्धित थीं। वैवाहिक विलम्ब से पीड़ित अनेक कन्यायें ऐसी थीं, जिनके अभिभावक वर्षों से तथाकथित ज्योतिर्विदों की चरणधूल प्राप्त कर रहे थे। ज्योतिर्विदों द्वारा जन्मांग के निरीक्षणोपरान्त विवाह की जो तिथि बताई गई उसकी अनेक आवृत्तियां हुई, पर किसी भी उपाय से परिणय की पूर्व घोषित वेला नहीं आई। **प्रायः ऐसे ज्योतिषाचार्यों को इस तथ्य का ज्ञान तक नहीं होता कि वस्तुतः वैवाहिक विलम्ब के लिए उत्तरदायी ग्रह-योग कौन से हैं। मात्र सप्तम भाव पर क्रूर ग्रहों का प्रभाव पड़ता देखकर वैवाहिक विलम्ब को आद्यन्त परीक्षित घोषित करना नितान्त अनुचित है।**

इसी मध्य एक रोचक घटना घटी जो इस पुस्तक की रचना के सहायक प्रेरक-कारणों में से एक है। स्वयं को सम्पूर्ण भारतवर्ष में विख्यात ज्योतिषी के रूप में विज्ञापित करने वाले, पाकेट बुक आकार की ४०–५० पुस्तकों के महाप्रणेता एक ज्योतिषी महोदय से लखनऊ के एक ज्योतिष-संस्थान में मेरी भेंट हुई। वे एक निश्चित व्यावसायिक कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत के अनेक नगरों में जाते हैं। होटल में ठहरते हैं और समाचार पत्रों में विज्ञापन देकर अपने लिए ग्राहक जुटाते हैं। **वे ज्योतिष की ओट में दुःखी और ज्योतिष विद्या से अनभिज्ञ जनता की आस्था का दोहन करते हैं और सम्भावना के अन्तिम बिन्दु तक उसका शोषण करते हैं।** उनसे भेंट होने पर उनके ज्ञान का आकार-प्रकार देखकर मैं स्तब्ध रह गई। पुस्तक-लेखन का प्रसंग आने पर मैंने उनसे कहा कि मैं विवाह पर एक विस्तृत शोधपूर्ण पुस्तक लिख रही हूँ। अनुमानित १००० पृष्ठों की इस पुस्तक के लिए प्रायः दो वर्ष का रचना-समय अपेक्षित होगा। मेरी बात सुनकर वे पर्याप्त हंसे और आरोपित गम्भीरता के साथ बोले कि इस पुस्तक के व्यावसायिक पक्ष पर आपने सम्भवतः कुछ विचार नहीं किया। इसे कौन खरीदेगा। देखो, मैं ६० से ७० पृष्ठ तक की पाकेट बुक लिखता हूँ। जिनमें आरम्भ के ३० पृष्ठ सभी पुस्तकों में समान होते हैं। शेष पुस्तक ३–४ दिन में लिखकर दे देता हूँ। चार रूपये के मूल्य वाली इस पुस्तक को स्टेशनों पर लोग कहानी की तरह पढ़ने के लिए खूब खरीदते हैं। इस पर मेरे एक मित्र ने कहा कि ऐसे चंचुप्रवेशी एवं अपरिपक्व तथ्यों से भरी सतही पुस्तकों ने ही अगणित व्यक्तियों को दिग्भ्रमित और

ज्योतिष को कलंकित किया है। आपकी किसी पुस्तक का द्वितीय संस्करण नहीं हुआ। आपकी अनेक पुरानी पुस्तकों का शीर्षक बदलकर नई पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया है। आपके विपरीत डा० बी० बी० रामन का व्यक्तित्व है। उन्होंने ज्योतिष पर पर्याप्त साहित्य सृजन किया है और उनकी पुस्तकों के २०–२२ संस्करण तक प्रकाशित हो चुके हैं। आधुनिक ज्योतिष-जगत में एक विचारवान् और संवेदनशील ज्योतिषी के रूप में सुसम्मानित इस ज्योतिर्विद ने कभी भी जनास्था को दिग्भ्रमित नहीं किया। उनकी ६० रुपये की पुस्तकें भी उतनी ही संख्या में बिकती हैं, जितनी आपकी २ रुपये मूल्य की पुस्तक। अन्तर केवल क्रेता और पाठक वर्ग के स्तर और उनकी बौद्धिक योग्यता का है।

उनके व्यक्तित्व की इस व्यावसायिक दुर्बुद्धि को कुछ और उद्घाटित करने के लिए मैंने उनसे पूछा कि वैवाहिक विलम्ब की इस निरन्तर बढ़ती हुई समस्या के निदान स्वरूप आप क्या बताते हैं। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि आज के संदर्भ में ज्योतिषी को व्यावसायिक अवश्य होना चाहिए, अन्यथा उसका कोई मूल्य नहीं होता। मैं तो जातिका के अभिभावक से कहता हूँ कि इस जातिका के जन्मांग में तीव्र ग्रहदोष है, वैवाहिक सम्पन्नता में अनेकानेक बाधायें हैं। एक अनुष्ठान करना होगा जिसके लिए इतना व्यय होगा। इसके पश्चात् एक वर्ष तक आपको भी इस दिशा में सतत प्रयत्न करना होगा। जो अभिभावक अपनी कन्या के लिए प्रयत्नशील हैं, वे कठिन परिश्रम करके एक वर्ष के भीतर वर प्राप्त कर ही लेते हैं और तब इसका श्रेय मेरे अनुष्ठान को प्राप्त होता है जो कभी किया जाता नहीं)। यदि किसी के संदर्भ में अनुमान विपरीत होता है तो उनको देने के लिए अनेकानेक आश्वासन तो हैं ही।

ज्योतिषी महोदय का यह उत्तर सुनकर मैं अवाक् रह गई। ज्योतिष को अर्थ के अनर्थकारी रूप से जोड़ने वाले ज्योतिषियों की एक बहुत बड़ी संख्या इस कुचक्र और दुरभिसन्धि की दिशा में सक्रिय है। उसी क्षण मैंने यह संकल्प किया कि अपनी उस प्रस्तावित पुस्तक से पूर्व वैवाहिक-विलम्ब के सन्दर्भ में एक पुस्तक का सृजन करूँगी, ताकि इस अतिव्याप्त समस्या से संत्रस्त जातक लाभान्वित हों एवं ज्योतिष-ज्ञानार्जन में प्रवृत्त अनुसंधित्सु वैवाहिक विलम्ब के कारणों का सतर्क निरीक्षण कर सकें।

इस संकल्प के पश्चात् पुस्तक अनेक रूपों में सृजन-प्रक्रिया के चरण के चरण उत्तीर्ण करती रही। इस सन्दर्भ में उपलब्ध प्रायः समस्त ग्रन्थों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन तदुपरान्त मनन-चिन्तन तथा निज अनुभवों से उसका प्रमाणीकरण करके इस पुस्तक को पाठकों के अध्ययनार्थ प्रस्तुत कर रही हूँ।

इस पुस्तक की अन्तर्वस्तु के वे कुछ प्रमुख पक्ष यहाँ संक्षेपित हैं जो वैवाहिक-विलम्ब के संदर्भ में निरन्तर विवाद का विषय रहे हैं। वैवाहिक विलम्ब की समस्या

को हल करने के लिए प्रायः मंत्र-साधना का परामर्श दिया जाता है, किन्तु मंत्र-साधना की शास्त्रानुमोदित एवं अनुभवसिद्ध प्रविधि क्या है. इसका सम्यक् ज्ञान न तो मन्त्र-प्रदाता को होता है और न ही मन्त्र-गृहीता को । अतएव साधना से पूर्व मन्त्र क्या हैं ? मंत्र साधना किस प्रकार और कब तक करें ? प्रारम्भ और समापन कैसे करें एवं स्वानुकूल मंत्र का चयन कैसे करें ? आदि तथ्यों का पूर्ण अभिज्ञान होना अनिवार्य है । पुस्तक का द्वितीय अध्ययन इन्हीं विषयों पर केन्द्रित है जिसमें मंत्रों एवं प्रयोगों को सावधानीपूर्वक चयन पद्धति से विस्थापित, परिभाषित कर दिया गया है ।

मंगली-दोष अथवा कुज-दोष एक ऐसा विषय है जिसके सम्बन्ध में सामान्य जन-जीवन में ही नहीं, अपितु ज्योतिष के अध्येता ज्योतिर्विदों में भी अनेक विरोधात्मक भ्रान्तियाँ परिव्याप्त हैं । इस विषय पर संतुलित मतैक्य का नितान्त अभाव है । या तो मंगलदोष की तीक्ष्णता की व्याख्या आवश्यकता से अधिक की जाती है अथवा उसकी वक्रता को आवश्यकता से अत्यन्त कम करके प्रस्तुत किया जाता है । जबकि हानि दोनों स्थितियों में होती है एवं भविष्य कथन भी दोनों स्तरों पर अशुद्ध होते हैं। इस चर्चित विषय पर एक स्वतंत्र अध्याय में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है । इस सम्बन्ध में सूत्र को, **"मंगलदोष : अभिज्ञान के सूत्र"**, **"लग्न, द्वितीय भाव, चतुर्थ भाव, सप्तम भाव, अष्टम भाव एवं द्वादश भावस्थ, मंगल"** **"मंगल-मंगल की अपवाद परक दोष स्थितियाँ"**, **"मंगल दोष के परिहार"** और **"मंगल-दोष निर्धारण : एक तुलनात्मक गणितीय प्रविधि"** शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया गया है । विवेचन-वैशिष्ट्य यह है कि प्रत्येक सिद्धान्त को दो जन्मांगों के व्यावहारिक विश्लेषण द्वारा परिपुष्ट एवं चिन्तन-ग्राह्य किया गया है । मंगली कन्या के जन्मांग का मिलान करते समय किन तथ्यों का अवधान रखना चाहिए, मंगल दोष दूषित जन्मागों को किससे मेलापित किया जाय आदि तथ्यों को ज्योतिष के आलोक में प्रकाशित किया गया है । मंगल-दोष के परिशमन हेतु उद्धृत मंत्र एवं प्रयोग प्रभावित जातकों को दाम्पत्य की सुखद सम्प्राप्ति कराने में सक्षम हैं । यह अध्याय मौलिकता एवं उपयोगिता की दृष्टि से दिशादर्शी अध्याय है ।

वैवाहिक-विलम्ब की परिशान्ति की दिशा में मंत्र के साथ व्रत की भी महार्थ महत्ता उल्लेखनीय है । व्रत भारतीय संस्कृति का ऊर्जस्वलन आयाम है । परन्तु बहु-संख्य जनसमूह व्रत के मौलिक स्वरूप को विस्मृत कर चुका है। आज व्रत और उपवास समान अर्थों में व्यवहृत हो रहे हैं । इस विषय को, **"व्रत का तत्त्वार्थ"** **"व्रत और उपवास के पार्थक्य बिन्दु"**, **"अनुकूल व्रत चयन"**, **"व्रत विधि"**, **"व्रत के प्रमुख करणीय एवं अकरणीय ज्ञातव्य तथ्य"** **"व्रत-उद्यापन के निर्देश"**, **"सोमवार-व्रत विवरण"**, शीर्षक बिन्दुओं में विभक्त करके व्रत की बहु आयामी संस्कृति को उपस्थित करने का यत्न किया गया है । व्रत के आरम्भ और उद्यापन को भी रेखांकित किया

गया है। वैधव्य दोष की आशंका से सदा मुक्त रहने के लिये मंगलागौरी व्रत विस्तार से दिया गया है।

यहाँ बहुपरीक्षित तथा शीघ्र फलप्रदायी "पार्वती मंगल स्तोत्र" को स्वतन्त्र अध्याय के रूप में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

अन्तिम अध्याय पुस्तक की मूल विषय वस्तु से किंचित् पृथक् किन्तु अत्यन्त समीपवर्ती विषय से सम्बद्ध है। सप्तम भाव वैवाहिक सुख तथा परिणय से सम्बन्धित विषयों का होता है और सप्तम भाव में स्थित होकर कौन-सा ग्रह कैसे फलाफल की सृष्टि करता है, इस सबका विस्तृत विवेचन "कलत्रभावस्थ ग्रह" शीर्षांकित अध्याय में किया गया है। कुछ शुभचिन्तकों के परामर्शानुसार दाम्पत्य जीवन में आने वाले विघटन एवं अन्तर्विरोध भी एक दारुण समस्या का केन्द्र हैं। विवाहोपरान्त दाम्पत्य जीवन में यदि किसी प्रकार की वंचना अथवा रिक्ति है तो उसके परिशमन हेतु इस अध्याय में कुछ परीक्षित अनुभूत मंत्र-प्रयोग उद्धृत हैं। जिनके प्रयोग से जीवन आह्लाद और अनुराग से आपूरित हो सकता है। इस प्रकार वैवाहिक विलम्ब के बहुविस्तीर्ण एवं बहुविवादित विषय को उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिन्तना के साथ निवेदित किया गया है। इस विषय पर समुपलब्ध पुस्तकों में संभवतः सर्वाधिक परिपुष्ट पुस्तक के रूप में इस अध्ययन को स्वीकृति प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। दाता के अहं से नहीं, अपितु उसके गौरव और तोष से ज्योतिर्जगत् के समक्ष यह पुस्तक प्रस्तुत है। आध्यवसायिक क्षेत्र में कोई निष्कर्ष अन्तिम अथवा अन्यतम नहीं होता तथापि मुझे आशा है कि मेरा सृजनात्मक-श्रम सकारात्मक चिन्तन के अभिनव-गौरव-गवाक्ष उन्मीलित करेगा।

इस पुस्तक की रचना में मेरे स्नेहपात्र एवं प्रिय शिष्य सुशील सिद्धार्थ ने अपनी अतिव्यस्त दिन-चर्या में से समय निकालकर जो सहयोग प्रदान किया है, इसके लिए स्नेहाशीष! उन्होंने इसे अपना कार्य समझ कर ही किया, एतदर्थ वे धन्यवाद के आस्पद हैं। पुस्तक-रचना के मध्य एक भीषण ट्रक दुर्घटना में उनकी अनुजा पूर्ति अग्निहोत्री, जो अत्यन्त प्रतिभावान एवं स्नेही बालिका थी, का हृदयविदारक देहावसान हुआ। इस मानसिक-अग्निपरीक्षा के क्षणों को उत्तीर्ण करके वे पुस्तक-सृजन के अन्तिम चरण तक मेरे सान्निध्य में रहे। इसका शब्दातीत अनुभव।

इसके अतिरिक्त पुस्तक सृजन के संदर्भ में मैं अपने पति श्री तेज प्रकाश त्रिवेदी के सर्वतोभावेन सहयोग के प्रति कृतज्ञ हूं। उनका प्रोत्साहन मेरे संकल्प की प्राणशक्ति है। श्री गणेश मिश्र का सक्रिय योगदान भी धन्यवाद की वस्तु है।

अपने पुत्र विशाल एवं पुत्री दीक्षा का भी आभार, जिन्होंने चिन्तन और सृजन के गुरु-गंभीर क्षणों को अपनी निश्छल आमोदिनी-प्रमोदिनी प्रवृत्ति द्वारा सरल एवं तरल बनाया।

भारतीय साहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में अग्रणी, सर्वस्वीकृत मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास ने इस पुस्तक के प्रकाशन का गुरुतर दायित्व वहन कर न केवल लेखिका पर वरन् इसमें संकलित सामग्री से किसी न किसी प्रकार लाभान्वित होने वाले जनसामान्य के प्रति भी जो कृपा की है, उसके लिए उन्हें कोटिशः धन्यवाद।

हाँ, वरेण्य पं० जनार्दनशास्त्री पाण्डेय के स्तुत्य सहयोग के विना यह कार्य पूर्णतः निरापद संपन्न हो पाता, इसमें सन्देह है। पुस्तक का मुद्रण कार्य उनके कुशल संरक्षण-निर्देशन में ही संपन्न हुआ है। उन्होंने इसे अपना कार्य समझते हुए, व्यक्तिगत रुचि लेकर जिस सतर्कता और मनोयोग से, वाक्य-विन्यास से शब्दावली और वर्तनी तक के प्रति जैसी सजग दृष्टि रखी है, उसमें मात्रिक अशुद्धियों की सम्भावना भी नहीं है, जो मन्त्रविषयक कार्य के लिए अत्यन्त अपरिहार्य है। शास्त्रीजी ने जिस परिश्रम और निष्ठा से पुस्तक की पाण्डुलिपि का पारायण और अशुद्धियों का यथा-सम्भव निवारण किया है, उसके लिए मैं उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

सर्वाधिक पूर्वधन्यवाद उन व्यक्तियों का जो इस चिन्तन-क्रम को पूर्णता के शिखर तक ले जायेंगे।

मृदुला त्रिवेदी

२४, महानगर विस्तार,
कारपोरेशन क्वार्टर्स के सामने,
पीली कालोनी. लखनऊ–२२६००६

विषय-सूची

—:०:—

प्रथम-अध्याय

मन्त्र : सैद्धान्तिक विश्लेषण

समग्र सृष्टि शब्द के आणविक स्तरों से आवृत है। शब्द ब्रह्म के समकक्ष है। मानवता की अनिरुद्ध यात्रा का अक्षर पाथेय बन कर शब्द ने अपनी अनन्त-अपरिसीम अनिवार्यता का परिचय दिया है। आर्यावर्त में शब्द-साधना और आत्म-साधना की समानान्तर परंपरा है। इसी शब्द-साधना का कोई अनिर्वचनीय निमिष मन्त्र की अन्तःसलिला का भगीरथ बना होगा।

मन्त्र : पारिभाषिक क्षितिज

"मत्रि गुप्तभाषणे" धातु से घञ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न मन्त्र एक अनुभूतिशक्य असार्वजनिक गोपन संवेदना को रेखांकित करता है। तंत्रशास्त्रानुसार समस्त भावों के मनन और सम्पूर्ण जगत् के त्राण में समर्थ शक्ति मन्त्र स्वरूप में सुविदित है। मूल की एकात्मकता उपाधिवशात् बहुवस्तुसंस्पर्शिनी हो जाती है :—

"मननात्सर्वभावानां त्राणात् संसारसागरात्।
मन्त्ररूपा हि तच्छक्तिर्मननत्राणरूपिणी ॥"

मनन, विज्ञान, विद्या और ज्ञान भी मन्त्र से अभिहित होते हैं। मन्त्र से अनुशासित एवं नियमित ध्वनि-समूह का भी अवबोधन होता है। "महार्थ-मंजरी" के अनुसार "मनन योग्य शब्द-ध्वनि मन्त्र है" (मननत्राणधर्माणो मन्त्राः) मनन द्वारा अभ्युदित एवं वैभवोद्यत पराशक्ति-समन्वित शब्द-समूह मन्त्र है—

"मननमयी निजविभवे निजसंकोचमये त्राणमयी।
कवलितविश्वविकल्पा अनुभूतिः कापि मन्त्रशब्दार्थः ॥"

मीमांसा दर्शन के मत से मन्त्र देवता का अक्षरावतार है। मन्त्र स्वतन्त्र एवं सम्पूर्ण सत्य-सत्ता है जो देवतात्मा से अद्वैत है। आत्मकुपित युग में कुहेलिका की अन्तर्लापिका के सूत्रशोध से पराभूत मनुष्य के भव्य भविष्य की भूमिका है मन्त्र। प्रभूत भौतिकता से त्रस्त-परास्त समाज, पुरुषार्थ-चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए विकल समूह, आध्यात्मिक क्षितिजों का अनुसंधानाभिलाषी व्यक्ति मन्त्र के युगानुकूल, आचार्य-निर्देशित, आस्था-संवलित और विधिविहित प्रयोग से उपलब्धियों के द्योतित गवाक्ष उन्मीलित कर सकता है। मन्त्र द्वारा सम्पादनशक्य कर्म अग्रांकित हैं— **शान्ति-कर्म, पौष्टिक-कर्म, मारण, स्तम्भन, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, आकर्षण,**

जृंभण, एवं विद्वेषण। प्रत्येक वांछा के परिपूरण के लिए गुरु के अनुशासन में काल, ऋतु, तिथि, वासर, का विचार रखकर मन्त्रसाधना अपेक्षित होती है। दैहिक-दैविक-भौतिक विश्व के किसी भी उदग्रीव प्रश्न का समाधान करने की सामर्थ्य मन्त्र-साहित्य में है।

मन्त्राविर्भूति के सन्दर्भ में श्री माधव पुण्डलीक पंडित ने मत व्यक्त किया है—

"वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे"--अभिव्यक्ति की वेला में ब्रह्म नादब्रह्म का स्वरूप ग्रहण करता है, कालान्तर में जिसकी शक्ति सृष्टि-प्राकट्य का मूल हेतु बनती है। ऊर्ध्वतमाकाश में संस्थित सनातन शब्द वैदिक ऋचाओं में नित्यवाक् विभूषण-भूषित और मानव वाणी में सर्वश्रेष्ठ चतुर्थ स्वरूप में प्राप्त हैं। आन्तरिक दिव्य दर्शन के क्षणों में सत्य की मूल ध्वनि के सर्वाधिक आत्मीय मानव ध्वनि समूह की अघट शोध ऋषिपरंपरा ने की। तदनन्तर उसे मन्त्र की संज्ञा मिली।

मन्त्र में अन्तर्भूत अलक्षित क्षमताओं के विवेचन के दो प्रमुखसाधन हैं :--

१. शब्द   २. शब्द की मौलिक भावना।

शब्द को ध्वनि और भावना को विद्युत् से भी अभिहित किया जा सकता है। ये दोनों आधार इन्द्रियगम्य जगत् और इन्द्रियातीत जगत् का प्रतिनिधित्व करते हैं। सर्वप्रथम ध्वनि एवं भावनात्मक विद्युत के विश्लेषण के माध्यम से मन्त्र के संरचना-संसार की व्याख्या समीचीन होगी।

भारतीय मनीषा में व्यक्ति के पंचकोषमय अस्तित्व की उद्घोषणा की है—अन्नमयकोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष। आधुनिक शब्दावली में इनका रूपान्तरण और समाहार इस प्रकार है--

१. अन्नमय कोष २. प्राणमय कोष }	भौतिक देह	–१
३. मनोमय कोष ४. आनन्दमय कोष }	मानसिक देह	–२
५. विज्ञानमय कोष→	वैद्युतिक देह	–३

इस विभाजन से यह समीकरण सुस्पष्ट है कि मनोगत भावना को तरंगदैर्घ्य तक आने से पूर्व स्वयं को विद्युत् रूप में परिवर्तित करना पड़ता है। मानसिक देह से प्रारंभ हुई भावनायात्रा वैद्युतिक देह को आत्मसात् करती हुई भौतिक देह तक आकर मूर्तरूप प्राप्त करती है। इसीलिए ध्वनिस्वरूपा भावना की प्रभविष्णुता व्यक्ति के विद्युत-शरीर की संभावनाओं पर आधृत है। इसी सन्दर्भ में निवेदित किया जा सकता है कि "ध्वनिशक्ति को वैचारिक विद्युत् से गुणित करने पर गुणनफल मन्त्र माना

जाता है।" इसी वैचारिक ऊर्जा के अनुक्षण परिवर्त के लिए मन्त्र जप के संकल्पित समय में कुछ यम-नियम सुनिश्चित किये गये हैं। संक्षिप्त और सुपाच्य सात्त्विक आहार और संयम-सम्मत विहार, मानसिक शक्ति और वैचारिक सामर्थ्य को उद्दीप्त भास्वर बनाता है। समस्त ऊर्जा वाह्य जगत् के क्षरण से विनिर्मुक्त हो चितिमय अन्तर्जगत् की ओर प्रस्थान करती है। साक्ष्य संकल्पों से परिपूर्ण मन्त्र-साधना में इस प्रस्थान विन्दु का स्मर्तव्य स्थान है।

इस विन्दु पर शब्द के परम रहस्यमय स्वरूप पर किंचित् दृष्टि-निक्षेप उचित होगा। समस्त विश्व में शब्द को अक्षर और ब्रह्मस्वरूप माना गया है। शब्द की इकाई अक्षर है, जो ध्वनि में रूपान्तरित होने के पश्चात् अनन्त कालावधि के लिए सृष्टि के अन्तरिक्ष में विद्यमान रहता है। भारतीय संस्कृति में इसीलिए शब्द को परब्रह्म के विशेषण प्राप्त हैं। शब्द, सृष्टि की सर्वाधिक अप्रतिहत इकाई है जो संवेदना और त्वरा के शीर्षस्थ गुणों से आवेष्टित है। मंत्र के संगठन का प्रथम और अन्तिम आधार शब्दों का वैज्ञानिक संश्लेषीकरण ही है।

शब्द के वलाघात, आरोह, अवरोह, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुप्त, यति, गति आदि विशिष्ट लक्षणों को समाहित करके लय कहा जा सकता है। लय ध्वनि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक पक्ष है। समस्त सृष्टि का विलय लय में है। भाषाओं के छन्दःशास्त्र का यही आधारभूत सत्य है। भारतीय साहित्य शास्त्र में इसीलिए यति का गणात्मक स्वरूप उद्घाटित हुआ है। भारतीय संगीत का प्राणतत्त्व लय है। समय, मनोभाव और प्रकृति परिवर्तन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाजन को एक विशिष्ट लय और स्वर-संयोजना से संवद्ध किया गया है। इसी के परिणामस्वरूप विषाद-पूर्ण लय में निवद्ध रचना सुनते ही संवेदना के सारे तन्तु अश्रुसिक्त हो जाते हैं। वीरत्वपूर्ण काव्य का आरोह-अवरोह व्यक्तित्व को विचित्र उत्साह और संकल्प से परिपूर्ण कर देता है। लय के सम्यक् ज्ञान के विना प्रयोगकर्ता अर्थ का अनर्थ कर सकता है। यथा "रोको—मत जाने दो" वाक्य में विपर्यय करके "रोको मत—जाने दो" जैसा अर्थ ही उपलब्ध किया जा सकता है। सृष्टि के सत्य-शिव-सुन्दर में लय का अस्तित्व है।

मन्त्र में ध्वनि के स्थान-निर्धारण से पूर्व ध्वनि के प्रकारों का पार्थक्य आवश्यक है। ध्वनि के दो प्रकार हैं—

१. कर्णगम्य ध्वनि। २. कर्णातीत ध्वनि।

विज्ञान उसी ध्वनि का विश्लेषण कर रहा है जो कर्ण से ग्रहणीय है। किन्तु कर्णातीत ध्वनि के विषय में वैज्ञानिक मौन हैं। इस सन्दर्भ में भारतीय शास्त्रीय संगीत का उल्लेख प्रसंगानुकूल होगा। सिद्ध गायकों को ध्यान से सुनने पर आभासित होता है कि कंठ के मर्मस्थानों से निकलने वाली ध्वनियों के कंठाग्र पर आने से पूर्व

वे अपना रूप प्राप्त कर रही हैं। इन कंठगत मर्मस्थलों को शब्द शास्त्र में वृत्ति कहा गया है। वृत्ति के निम्नलिखित प्रकार हैं :—

१. परा	२. पश्यन्ती
३. मध्यमा	४. वैखरी

कर्णगोचर ध्वनियों के उपरान्त इन दुर्लभ स्वर-स्फोट-स्थलों की साधना तपोनिष्ठ एवं परमसंकल्पवान् व्यक्तित्व का विषय है। वैखरी वृत्ति की साधना शब्द को ब्रह्म से एकाकार करती है।

मन्त्र-साधना से जिन परिणामों की प्राप्ति संभावित होती है उनका परोक्ष संबंध ध्वनि के कर्णगम्य स्वरूप से नहीं होता। मन्त्र की ध्वनियाँ अत्यन्त सूक्ष्म और द्रुत अकल्पित तरंगों से विस्फारित होती हैं जो कर्णातीत होती हैं। कर्णगम्य श्रव्य ध्वनि की सामर्थ्य और सीमा निर्धारित है। किन्तु अश्रव्य ध्वनि की प्रभाववत्ता और शक्तिमत्ता अननुमेय और अप्रमेय होती है। इसीलिए मन्त्र शास्त्र में श्रव्य ध्वनि को तृतीय स्थान प्रदान किया गया है और जप के निम्नलिखित प्रभेद किये गये हैं :—

१, **प्रौढ**—इस जप में ध्वनि श्रवणगम्य होती है।

२. **उपांशु**—इस जप भेद में प्रौढ से दस गुनी वारम्वारितायुक्त ध्वनि-तरंगें होती हैं। इसमें जप साँस की गति में घुल मिल जाता है।

३. **मानसिक**—इस जप भेद में उपांशु से दस गुनी वारम्वारितायुक्त ध्वनि-तरंगें होती हैं। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों की समस्त निष्ठा केन्द्रीभूत होकर संकल्प-विकल्प की परिधि से परे निकलकर मन्त्र को अनिर्वचनीय इन्द्रियातीत स्वरूप प्रदान करती है। मन की अतिचेतना मन्त्र का वाहन बनती है।

मन्त्र के इस संरचनात्मक स्वरूप के अवबोधोपरान्त जप के व्यवहार पक्ष के उल्लेखनीय तथ्य अंकित हैं। सर्वप्रथम मन्त्र-जप के व्यवहार पक्ष के लिए श्रद्धा और विश्वास का होना महत्त्वपूर्ण है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की प्रारम्भिक वंदना में उद्धृत किया है—

"भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥"

मन्त्र का जप करने से पूर्व उसमें निष्ठा एवं समर्पण एक शुभ लक्षण है। शीघ्र एवं अव्याहत उद्देश्य प्राप्ति के लिए यह हितकर है। किन्तु यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। यह तो एक परमादर्श स्थिति होगी कि साधनावस्था में भौतिक देह, वैद्युतिक देह और मानसिक देह एक स्तर पर संस्थित हों। किन्तु आस्था में न्यूनता होने पर भी यदि संकल्पानुसार नियमित रूप से उचित मात्रा, शुद्ध शब्दावली और सम्यक् लयानुसार जप निरंतरित है तो उद्दिष्ट की अभिप्राप्ति अवश्य होती है—यद्यपि

उपलब्धि की अवधि में वृद्धि हो जाती है। साधनासम्बद्ध समस्त नियम और साधना, जप संख्या तथा पुरश्चरण संख्या के सन्दर्भ में भी इसी दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए, व्यक्ति का शारीरिक-मानसिक स्तर, उसका संस्कार, आहार, विहार जप-सिद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है।

मन्त्र-प्रकार

मन्त्रों का वर्गीकरण निम्नलिखित दो दृष्टिकोणों से किया जा सकता है :—

(१) सामाजिक वर्णव्यवस्था के अनुसार ही मंत्रों का भी वर्गीकरण किया गया है, यह वर्गीकरण मंत्र के आद्यन्त में प्रयुक्त बीज मन्त्रों के द्वारा निर्धारित किया जाता है—

(क) **ब्राह्मण मन्त्र**—इसमें चार बीजाक्षर होते हैं।

(ख) **क्षत्रिय मन्त्र**—इसमें तीन बीजाक्षर होते हैं।

(ग) **वैश्य मन्त्र**—इसमें दो बीजाक्षर होते हैं।

(घ) **शूद्र मन्त्र**—इसमें एक बीजाक्षर होता है।

विशेष तथ्य यह है कि प्राथमिक और अन्तिम रूप से प्रत्येक वर्ण के लिए निर्दिष्ट मन्त्र ही उसको हितकर सिद्ध होते हैं। अपवाद रूप में ब्राह्मण आवश्यकता पड़ने पर शेष तीनों वर्णों के लिए निर्दिष्ट मंत्रों से भी वांछापूर्ति कर सकता है।

(२) मन्त्रों का वर्गीकरण योनि के आधार पर भी किया जाता है—

(क) **पुंल्लिग मन्त्र**—जिस मन्त्र के अन्त में "हुं फट्" का प्रयोग हो।

(ख) **स्त्रीलिंग मन्त्र**—जिस मन्त्र के अन्त में "स्वाहा" का प्रयोग हो।

(ग) **नपुंसक मन्त्र**—जिस मन्त्र के अन्त में "नमः" का प्रयोग हो।

मन्त्र-दोष

किसी भी कार्य में प्रवृत्त होने से पूर्व उसके धनात्मक और ऋणात्मक दोनों पक्षों का समुचित ज्ञान होना चाहिए तभी उस पथ की संभावित विपत्तियों से निवृत्त हुआ जा सकता है। मन्त्र-साधक को अधोलिखित दोषों का परिहार करना चाहिए :—

अभक्ति—प्रत्येक मन्त्र स्वतन्त्र रूप से सर्वोत्कृष्ट एवं श्रेयस् है—इस तथ्य की प्रतीति प्रत्यक्ष रूप से साधक होनी चाहिए। भाषा के माध्यम से व्यक्त मन्त्र में अव्यक्त शक्ति अनिर्वच और इन्द्रियातीत है। इसलिए मन्त्रभाषा में भाषा का अतिक्रमण है। गृहीत मन्त्र के प्रति हीन भाव एवं मन्त्र को मात्र भाषा मानने का हठ अभक्ति का लक्षण है।

अक्षर भ्रान्ति—भ्रम या प्रमादवशात् मन्त्र के लिए संगठित अक्षरों को विपर्यस्त करने से अक्षर भ्रान्ति उत्पन्न होती है। यथा—**''भार्या रक्षतु भैरवी''** के स्थान पर **''भार्या भक्षतु भैरवी''** का जप इसी दोष के अन्तर्गत परिगणनीय है।

लुप्त दोष—मन्त्र-साधक मन्त्र ग्रहण करते समय अथवा साधना के समय असावधानी के फलस्वरूप **किसी अक्षर को विस्मृत कर देता है।** तब लुप्त दोष माना जाता है।

छिन्न दोष—संयुक्ताक्षरों का उच्चारण विश्रृंखलित होने से यह दोष होता है।

ह्रस्व या दीर्घ दोष—प्रत्येक भाषा-भाषी का अपना एक विशिष्ट उच्चारण-संस्कार होता है। क्षेत्रीय बोलियाँ, विभाषायें, तद्भव एवं देशज शब्द राशि मिलकर प्रत्येक क्षेत्र में भाषा का एक स्वतंत्र अनुशासन बनाती हैं। किन्तु मन्त्र की भाषा एक अपरिवर्तनीय और अतर्क्य भाषा होती है। उसका उच्चारण मुख-सुख के लिये पृथक-पृथक नहीं किया जा सकता। हम किसी क्षेत्रीय बोली का प्रयोग करें किन्तु मन्त्र की भाषा में अक्षरों का जो अनुपात आकार निर्धारित है, मन्त्र-साधना करते हुये हमें उसी का अनुसरण करना चाहिए। अन्यथा ह्रस्व दोष अथवा दीर्घ दोष हो जायेगा।

कथन दोष—सिद्धि का रहस्य साधना की गोपनता में भी है। व्युत्पत्त्यर्थ की दृष्टि से मन्त्र का तात्पर्य गोपन ही होता है। मन्त्र प्रदाता गुरु के अतिरिक्त किसी के समक्ष गृहीत मन्त्र को प्रकाशित नहीं करना चाहिए। मन्त्र प्रकाशन कथन दोष की श्रेणी में आता है।

स्वप्नकथन दोष—आचार्यों ने स्वप्न में भी किसी को मन्त्र प्रकाशित करने पर निषेधाज्ञा लगाई है।

सदोष साधना के परिणाम एवं लक्षण

सम्पूर्ण निष्ठा के साथ की हुई साधना भी शिव के स्थान पर अशिव परिणाम प्रदान करने लगती है, यदि उसमें उपरिलिखित दोषों में से कोई भी उपस्थित हो। चित्त-विक्षिप्ति, शारीरिक क्षीणता, आर्थिक क्षय, पारिवारिक अशुभता या अन्य कोई असामान्य व्यतिक्रम आदि सदोष साधना के लक्षण और परिणाम हैं, ऐसी दशा उपस्थित होने पर साधक को साधना पद्धति का सांगोपांग सतर्क पुनर्दर्शन करना चाहिये एवं प्रायश्चित्त करना चाहिये।

प्रायश्चित्त

उपचार के रूप में निम्नलिखित प्रक्रियायें अभ्यास में लानी चाहिये—

(१) मन्त्र में अभक्ति मन्त्र के पुनः पुनः जप, हवन एवं व्रतादिक से दूर होती

है, शारीरिक और मानसिक शुद्धि होने पर ही पुनः साधना विधिवत् प्रारम्भ करनी चाहिये।

(२) मन्त्र की अक्षर-विन्यस्ति में भ्रम उत्पन्न होने पर मन्त्र प्रदाता गुरु, गुरु पुत्र, गुरु कुल के योग्य पुरुष अथवा सच्चरित्र किसी अन्य मनीषी से इसके हेतु संपर्क करना चाहिए। पुनः मन्त्र ग्रहण करने के अनन्तर साधना में संलग्न होना चाहिये।

मन्त्र से सम्बन्धित इस परिभाषात्मक और संरचनात्मक विश्लेषण के उपरान्त इसके प्रयोग पक्ष पर विचार किया जा रहा है। अनुष्ठान के सांगोपांग ज्ञान द्वारा इच्छुक व्यक्ति अपनी अभिलाषाओं की उपलब्धि कर सकते हैं—

दीक्षा

आचार्यों का अभिमत है कि पुस्तक में पढ़कर किया हुआ मन्त्र-प्रयोग असफल अथवा क्षीणफल होता है। अतएव मन्त्र की विधिवत् दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए। पिच्छिला तन्त्र के मतानुसार—

दीक्षां विना न मोक्षः स्यात् प्राणिनां शिवशासनात्।
सा च न स्याद् विनाचार्यमित्याचार्यपरम्परा॥
उपासनाशतेनापि यां विना नैव सिद्धयति।
तां दीक्षामाश्रयेद् यत्नात् श्रीगुरोर्मन्त्रसिद्धये॥

अर्थात्, "शिव का अनुशासन यही है कि दीक्षा के विना किसी को मुक्ति नहीं प्राप्त होती है। विना आचार्य के दीक्षा नहीं होती इसीलिये आचार्य-परम्परा चली आ रही है। सैकड़ों प्रकार की उपासना-पद्धतियाँ प्रचलित हैं, परन्तु दीक्षा के विना सिद्धि संभव नहीं। गुरु से दीक्षा प्राप्त करके ही मुक्ति प्राप्ति संभाव्य है।"

एक विवेकी साधक ने गुरु, दीक्षा और साधना की त्रिवेणी को इस प्रकार व्याख्यायित किया है—

"दीक्षा एक दृष्टि से गुरु की ओर से आत्मदान, ज्ञानसंचार अथवा शक्तिपात है, तो दूसरी दृष्टि से शिष्य में सुषुप्त ज्ञान और शक्तियों का उद्बोधन है। दीक्षा से शरीर की समस्त अशुद्धियाँ समाप्त हो जाती हैं और शरीर शुद्ध होने से देवपूजा का अधिकार मिल जाता है।"

दीक्षा के सन्दर्भ में आचार्य का महत्त्व अत्यन्त उद्दीप्त हो उठता है।

गुरु-गौरव

पं० गोविन्द शास्त्री ने इस संदर्भ में मत व्यक्त किया है—**"गुरु मन्त्र की धुरी है"** वैदिक परिचर्या से लेकर साधना के समस्त गोत्रों में गुरु का माहात्म्य अनिवार्य

अक्षुण्ण है। गुरुविहीन व्यक्ति पितृज्ञानविहीन व्यक्ति की तरह निन्दित और कलंकित माना गया है। मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण और उसकी सूक्ष्म तथा स्थूल सक्रियताओं पर किसी विवेकपूर्ण, तपःपूत और तेजस्वी शक्ति का नियन्त्रण होना चाहिए। भारतीय परम्परा ने गुरु को त्रिदेवों में स्थान दिया है। गुरु गति को विधि से संयुक्त करके प्रगति का पथ प्रशस्त करते हैं। अतएव —

विना दीक्षां फलं न स्याद् यमिनां शिवशासने।
सा च न स्याद्विनाचार्यमित्याचार्यपुरःसरम्॥
देवि दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत्॥

अर्थात् शिव के शासन में साधकों को "दीक्षा के अभाव में कोई भी फल नहीं प्राप्त होता। दीक्षा आचार्य के अभाव में संभव नहीं। अतएव आचार्य के पुरस्सर ही होवे। हे देवि! दीक्षाविहीन पुरुष को न सिद्धि होती है और न उसकी सद्गति ही। इसीलिए सभी प्रयत्नों से गुरु द्वारा दीक्षित होना चाहिए।" स्पष्ट है कि सभी सामान्य जप-पूजा करने वाले व्यक्ति गुरु पद जैसे दुर्लभ स्थान पर अधिष्ठित नहीं हो सकते। सद्गुरु के लक्षणों का उल्लेख "तन्त्रसार" में इस प्रकार है —

"सत्यवादी, शान्तचित्त, इन्द्रियजयी, दैनिक कर्मकाण्ड में रत, गुरुजन-सेवी और वचनानुसार उचित आश्रम की चर्यापूर्ति करने वाला, अपने देश (प्रान्त, क्षेत्र, स्थान) में रहने वाला ब्राह्मण ही गुरु पद के योग्य होता है।"

इस तथ्य को विश्वसार तन्त्र के द्वितीय पटल में भी विश्वास प्रदान किया है। गुरु को कुलीन, संस्कार युक्त, अपने आश्रम के अनुसार नैत्यिक कर्म के प्रति जागरुक, शान्त, शारीरिक-मानसिक रूप से स्वस्थ, विनम्र, स्वच्छताप्रिय, सिद्धि-प्रसिद्ध, साधना-निष्णात, समभावेन प्रत्येक परिस्थिति में सहज और सात्विक होना चाहिए। इन लक्षणों के अभाव में वाह्य रूप से कोई व्यक्ति कितना भी विख्यात, समृद्ध एवं शक्तिशाली हो, वह गुरु का पद नहीं प्राप्त कर सकता। इन लक्षणों के अतरिक्त श्वेत कुष्ठ पीड़ित, पाण्डुरोग पीड़ित, नेत्र रोगी, विकृत नख युक्त, वामन, विकृतदन्त, अस्वाभाविक अंग से युक्त या रहित, कपटाचरणी, दीर्घसूत्री, दीर्घाहारी, वाचाल, शापित, निस्सन्तान, धूर्त, ईर्ष्या-त्रस्त, विक्षिप्त, परछिद्रान्वेषी, कामुक, अर्थ पिशाच, हिंसक और वेदनिन्दक व्यक्ति भी गुरु नहीं हो सकता। इन तथ्यों पर विचार के उपरान्त ही गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए। तुलसीदास ने गुरु-गौरव के संदर्भ में कहा है कि—

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोह तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥

साधक-अर्हता

निश्चित रूपेण सृष्टि में प्रत्येक कर्म को संपादित करने के लिए विशिष्ट अर्हता अथवा पात्रता की अनिवार्यता होती है। अतएव मन्त्र-साधना में निरत होने से पूर्व आत्मनिरीक्षण एवं आत्मविश्लेषण द्वारा व्यक्ति को सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि वह साधना के निकष पर पूर्ण है अथवा नहीं। यद्यपि मन्त्रोपासना के पंचांग में साधक का महत्त्व न्यून है तथापि उभय पक्षों के लिए इस तथ्य का परिबोध आवश्यक है, क्योंकि इसमें आत्मदर्शन और आत्मपरिष्कार की प्रक्रिया संयुक्त है। सुशील, धैर्यशील, श्रद्धापूर्ण, चरित्रवान्, जितेन्द्रिय, गुणज्ञ, कायेन मनसा स्वस्थ एवं सहज, बौद्धिक रूप से सक्षम व्यक्ति श्रेष्ठ साधक हो सकता है। आचार-विचार-व्यवहार-आहार-विहार-संस्कार भ्रष्ट, क्रूरकर्मा, दरिद्री, वेद-ब्राह्मण-गुरु-देव-द्वेषी, दीर्घसूत्री, कापुरुष, मुद्राराक्षस, वासनान्ध, वाचाल, और आस्थाविहीन जातक अयोग्य साधक सिद्ध होते हैं। वस्तुतः साधना का मार्ग अनेकानेक दुस्साध्य विघ्नों से आपूर्ण है। समर्पित व्यक्ति ही इस पथ के सक्षम पथिक होते हैं। कबीर की यह उक्ति अक्षरशः सत्य है--

''यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाँहि।
सीस उतारे भुंइ धरे सौ पैठे घर माँहि॥''

स्थल-चयन

साधना-स्थल मन्त्र-सिद्धि में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है। यही कारण है कि कुछ विशिष्ट स्थलों को सिद्धपीठ की महत्ता प्राप्त है। किसी भी स्थान पर मन्त्रानुष्ठान करके अभिप्रेत लाभ नहीं प्राप्त हो सकता। भूमि के संस्कार अलक्षित रूप से साधक को प्रभावित करते हैं। शास्त्रानुसार निम्नलिखित स्थल साधना के लिए उत्तम हैं—

''उद्यान, पर्वतीय प्रान्त, उपत्यका, गहन गुफा, संगमस्थल, नदी का कूल, तीर्थस्थल, सिद्धपीठ, बेल–तुलसी-पीपल अथवा आँवले के वृक्षों से परिपूर्ण स्थल, देवस्थान, गोशाला, पीपल वृक्ष की छाया, जल के मध्य अथवा अपने निवास का कोई एकान्त प्रकोष्ठ।''

इन स्थलों पर साधना करने से वहाँ की शुचिता-सात्विकता अप्रत्यक्ष रूप से मस्तिष्क को प्रभावित करती है। शास्त्रों के मत से--

''गया धाम, भट्ट ग्राम, सूर्य क्षेत्र, मातंग देश, विरजा तीर्थ, चन्द्र पर्वत, कन्या की ससुराल तथा दूषित एवं भ्रष्ट स्थल न तो मन्त्र ग्रहण के लिए

उपयुक्त हैं और न ही मन्त्र साधना के लिए। गौ, ब्राह्मण, जल, दीपक, सूर्य, चन्द्र, गुरु की साक्षी में यह साधना और भी फलवती सिद्ध होती है, इनके सान्निध्य में चित्तवृत्तियों में आसुरी प्रवृत्तियों का निरोध होता है और वाह्याभ्यन्तर व्यक्तित्व में दिव्य आनन्द तथा स्फूर्ति का संचरण होता है। परिणामस्वरूप साधक समस्त भौतिक ऐषणाओं से विनिर्मुक्त होकर उच्चस्तरीय साधना-विन्दु का संस्पर्श करता है।

स्वर-योग

स्वर ही प्राण है। जीवन के विभिन्न पक्षों से संवद्ध परिणाम स्वर-योग की गंभीर चिन्तना से संभव हैं। भारतीय योगाचार्यों ने मानव-देह में प्रसृत उस अदृश्य नाड़ी-संसार का शोध किया जो नवग्रह से प्रभावित होता है और उनका अनुकूलन करके वाह्याभ्यन्तर व्यक्तित्व को प्राणोष्मा से–आपूरित कर देता है। "शिव स्वरोदय" के अनुसार–"**स्वर-ज्ञान शास्त्र, पुराण, स्मृति और वेदांगादि से श्रेष्ठ है, यह गुह्य ज्ञान प्रकाशक है।**" आचार्यों के अनुसार मानव की नाभि में निहित कुंडलाकृति नाड़ी वाली दस नाड़ियों में इड़ा (चन्द्र), पिंगला (सूर्य), और सुषुम्ना (वायु) नाड़ियों की अनुकूलता-प्रतिकूलता जीवन की सफलता-असफलता को आमूल-चूल प्रभावित करती है। इसलिए इसका परिज्ञान आवश्यक है। श्वास लेने के लिए वने दो नासाछिद्र क्रमशः स्वर परिवर्तन करते रहते हैं। अनुभव वतलाता है कि वाम स्वर चन्द्रप्रधान होने के कारण मनुष्य के व्यक्तित्व को शान्त, सात्विक और शीतल सद्‌गुणों से परिपूर्ण करता है और दक्षिण स्वर सूर्यप्रधान होने के कारण उग्र, उत्तेजक, तप्त और प्रखर होता है। अतएव मन्त्रज्ञों के मतानुसार, "**मन्त्रानुष्ठान जैसे सौम्य, सात्विक कार्य में चन्द्रमा के गुणों से परिपूर्ण वाम स्वर ही हितकर है।**" आध्यात्मिक कार्य, मैत्री, योगाभ्यास, यज्ञ, पूजा आदि समस्त आस्था-एकाग्रतापरक कार्यों में वाम स्वर को प्रमुखता देनी चाहिए। शास्त्राभ्यास, संगीत-साधना, व्यायाम, तंत्र प्रयोग, रतिकर्म, युद्ध आदि परुष कार्यों में दक्षिण स्वर उपयोगी होता है। मन्त्रानुष्ठान के लिए वाम स्वर की साधना-प्रतीक्षा करनी चाहिए। अन्यथा श्रम व्यर्थ होगा। व्यवधान उत्पन्न होगा।

दिशा

प्रकृति की संरचना के अपने गुह्य सिद्धान्त हैं। अत्यन्त पुराकाल में भारतीय ऋषियों ने इस गोपन-तथ्य का गंभीर विश्लेषण करके प्रत्येक कार्य के लिए दिशा-निर्देश किया था। यह विवेचन आज की वैज्ञानिक शोधों के निकष पर भी सत्य सिद्ध हो रहा है।

प्रत्येक अभिलाषा की संपूर्ति के लिए किये जाने वाले मंत्रानुष्ठान के लिए दिशाओं की व्यवस्था इस प्रकार है—

(१) पूर्व दिशा--प्रातःकालीन संध्या, जप, वैवाहिक कार्य, वशीकरण, और वैराग्य भाव की प्राप्ति के लिए पूर्व दिशा को उन्मुख होकर की गई साधना श्रेयस्कर होती है। क्योंकि शतपथ ब्राह्मण (१/७/१/१२) के अनुसार--

"प्राची हि देवानां दिक्"

पूर्व दिशा में इन्द्र का आधिपत्य है एवं समस्त अदितिसुवन विश्व-कल्याण के लिए वहीं निवसित हैं। सूर्य से तेज, ओज, आरोग्य, प्राणोष्मा और धृति प्राप्त करने के लिए पूर्वाभिमुख होना आवश्यक है। वैदिक कथन है कि--

प्राचीं-प्राचीं प्रदिशमारभथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।
यद्वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती संश्रयेथाम्॥
(अथर्ववेद-१२/३/७)

अर्थात् हे दम्पति! पूर्व की ओर उद्यत हो, उस स्वर्ग पर श्रद्धावान् ही आरूढ़ हो पाते हैं अग्नि में तुम्हारे द्वारा रखे पक्व ओदन के रक्षार्थ संस्थित रहो।

(२) पश्चिम दिशा--संध्या के समय किये जाने वाले समस्त अनुष्ठान पश्चिम दिशाभिमुख होकर संपन्न करने चाहिए। क्योंकि सायंकाल सूर्य उसी दिशा में अवस्थित होता है। उसका स्वरूप हमें यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं होता, तथापि अप्रत्यक्ष रूप से उसकी तेजवाहिका रश्मियाँ हमारे व्यक्तित्व को प्राणोष्मा प्रदान करती हैं। प्रातःकाल प्राची दिशा में सूर्य के जो गुण संचित होते हैं, सायंकाल प्रतीची में वे सारे गुण स्थानान्तरित हो जाते हैं। इस दिशा के अधिपति वरुण हैं। उड्डीश तंत्र (२१४) के अनुसार धन प्राप्ति से संवन्धित मन्त्रसाधना इसी दिशा में अभिमुख होकर करनी चाहिए।

(३) उत्तर दिशा--उच्चादर्शों की प्राप्ति, बौद्धिक अर्हता, स्वाध्याय, इन्द्रिय-निग्रह आदि के लिए उत्तर दिशा सर्वश्रेष्ठ है। योगाभ्यास के लिए तो यह दिशा वरदान है :--

ततः कालवशादेव ह्यात्मज्ञानविवेकतः।
उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थानात्स्थानान्तरं क्रमात्॥
मूर्ध्न्याधाय मनः प्राणान् योगाभ्यासं स्थितश्चरन्।
योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानयोगः प्रवर्तते॥
(त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् १८/१९)

अर्थात् कालक्रमानुसार विवेक और आत्मज्ञानोपलब्धि के अनन्तर उत्तराभिमुख होकर क्रमशः अनेक श्रेणियाँ प्राप्त होती हैं। साधक प्राणों को मूर्धा में अवस्थित करके योगाभ्यास रत होता है योग से ज्ञान और ज्ञान से योग प्रवर्तित होता है। उत्तर दिशा में देवतात्मा नागाधिराज हिमालय अपनी तुंग शृंगावलियों के साथ प्रबुद्ध और शुष्क वैश्विक चेतना का दिक्कालजयी प्रसार कर रहा है। तपःपूत हिमाद्रि का कण-

कण त्रिकालद्रष्टा योगियों की साधना से अभिषिंचित, अभिमंत्रित एवं प्रशोधित है। अतएव अथर्ववेद (१२/३/१०) का यह कथन सत्य है—

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीचीं कृणवन्नो अग्रम्।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह संभवेम॥

"प्रजाओं से युक्त श्रेष्ठ उत्तर दिशा तप की उत्कृष्ठता प्रदान करे।" इस दिशा के अधिपति सोम हैं।

उड्डीश तंत्र (११४) के अनुसार—

..................विद्यादुत्तरे शान्तिकं भवेत्।
आयुष्यरक्षां शान्तिं च पुष्टिं वापि करिष्यति॥"

अर्थात् आयु रक्षा, शान्ति और पुष्टि कर्म के लिए उत्तराभिमुख होकर जप करना चाहिए।

(४) **दक्षिण दिशा**—यम द्वारा अनुशासित यह दिशा पितृ दिशा है। पितृ कर्म में दक्षिणाभिमुख होकर प्रवृत्त होना चाहिए। पितृलोक की शास्त्र सम्मत अवस्थिति दक्षिण में चन्द्रमा के ऊपर की कक्षा में है। पितृगणों के आगमन हेतु अन्य समस्त दिशायें अनुचित एवं अश्रेयस् हैं। अथर्ववेद (१२/३/८) के मतानुसार—

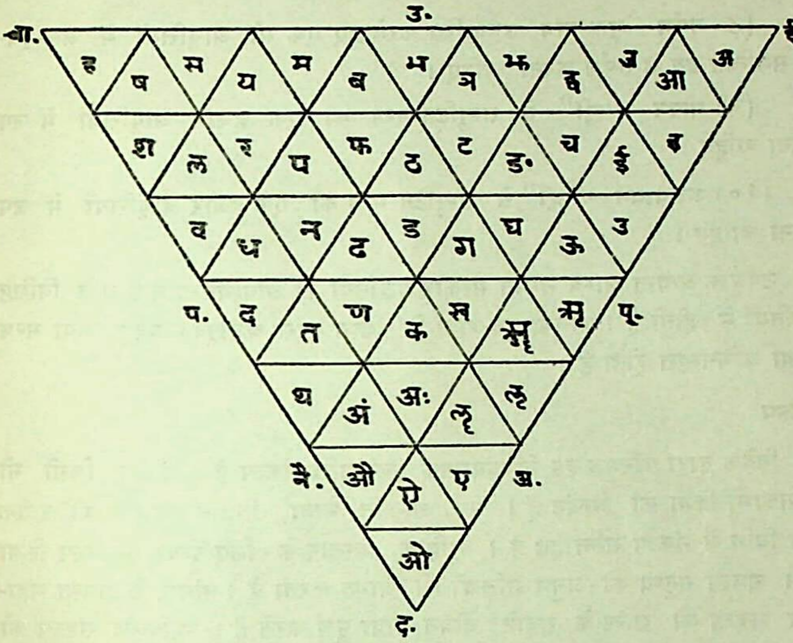
दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत्।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म
बहुलं नियच्छात्॥

हे दम्पति! दक्षिण की ओर इस पात्र की प्रदक्षिणा करते हुए आओ। पितरों से सम्मत यमदेव तुम्हारे ओदन के निमित्त अनेक प्रकार के कल्याण प्रदान करें।

मन्त्र-संस्कार

मन्त्र-साधना करने प्रारम्भ से पूर्व मन्त्र को संस्कारित करना चाहिए। संस्कार विवेचन इस प्रकार है—

(१) **जवन**—भोजपत्र पर चन्दन, गोरोचन अथवा कुमकुम से एक आत्माभिमुख त्रिकोण सर्जित करे। त्रिकोण के तीनों कोनों से छः छः समान रेखायें आकर्षित करें। जो ४९ त्रिकोण बनायें। कोष्ठकों में ईशान कोण से प्रारम्भ मातृका वर्ण अंकित करें। शक्ति मन्त्र से रक्त चन्दन एवं शिव मन्त्र से भस्म द्वारा मन्त्र का संस्कार करें। अभीष्ट देव की अर्चना करें। मन्त्र-संस्कार के पश्चात् अंकित को प्रक्षालित कर पवित्र जल में समर्पित कर देना चाहिए। चित्र निम्नांकित है :—



(२) जीवन —मन्त्र में "स्वधा-वषट्" संपुट सहित एक हजार संख्या में जप जीवन संस्कार संपन्न होता है। उदाहरणार्थ—

"स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधा"

(३) दीपन—हंस मन्त्र से संपुटित एक हजार मन्त्र जप अभीष्ट होता है। उदाहरणार्थ—

"हं सो रामाय नमः सोहम्"

(४) बोधन—बोधन संस्कार के निमित्त "हूँ" बीज से सम्पुटित मन्त्र का ५०० की संख्या में जप करना चाहिए—

"हूँ रामाय नमः हूँ"

(५) ताड़न—इस संस्कार के लिए फट् से संपुटित मन्त्र का जप एक हजार की संख्या में हितकर होता है—

"फट् रामाय नमः फट्"

(६) अभिषेक—भोजपत्र पर लिखित मंत्र का अभिमंत्रण "ॐ हं सः अं" से करके एक सहस्र वार जपित जल से अश्वत्थपत्रादि द्वारा उसको अभिषिक्त करना चाहिए।

(७) विमलीकरण—"अं त्रों वषट्" से सम्पुटित मन्त्र का एक हजार आवृत्तियों में जप करना चाहिए।

(८) **तर्पण**—मूल मन्त्र उच्चारित करते हुए एक सौ आवृत्तियों में जल-दूध-घी समन्वित द्रव से तर्पण करना चाहिए।

(९) **गोपन**—"ह्रीं" से सम्पुटित मन्त्र का एक हजार आवृत्तियों में जप करना चाहिए।

(१०) **आप्यायन**—"ह्रौं" से सम्पुटित मन्त्र का एक हजार आवृत्तियों में जप करना चाहिए।

उपर्युक्त अत्यन्त शास्त्र सम्मत संस्कार पद्धतियों की आवश्यकता कुछ अति विशिष्ट स्थितियों में होती है। अन्यथा गुरु-आज्ञा से शिष्य द्वारा श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया मन्त्र सर्वथा अभिसंस्कृत होता है।

संकल्प

विवेक द्वारा परिशुद्ध दृढ़ निश्चयात्मक इच्छाशक्ति संकल्प है। संकल्प किसी भी प्राप्तिकामी क्रिया का मेरुदंड हैं। धर्म, संस्कृति, भाषा, विज्ञान एवं सृष्टि की प्रत्येक गति विधि में संकल्प सन्निहित है। सृष्टि के विस्तार के लिए ईश्वर ने संकल्प लिया था। संकल्प मनुष्य की प्रसुप्त शक्तियों को जागृत करता है। संसार के समस्त महा-पुरुष संकल्प की शक्ति के सहारे जीवन यात्रा पूर्ण करते हैं। ऋषिवृन्द संकल्प को ब्रह्म कह चुके हैं। संकल्प में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदाता शक्तियाँ सन्निहित हैं, यथा--

"संकल्पं मानसं देवि चतुर्वर्गप्रदायकम्"

अतएव मन्त्र साधना से पूर्व संकल्प लेना आवश्यक है। हाथ में जल लेकर देशकाल, मन्त्र, बीज, छन्द, देवता, ऋषि, अनुष्ठान, उद्देश्य, जप संख्या का उल्लेख करके जल धरती पर छोड़ देना चाहिए। संकल्प-भाषा इस प्रकार है—

"ओम् तत्सत् अद्य.........संवत्सरे मासानां मासोत्तमे.........मासे.........पक्षे.........तिथौ.........वासरे.........छन्दः.........देवता.........बीजम्.........ऋषिः.........मंत्रस्य.........कार्यार्थम्.........संख्याकं जपमहं करिष्ये।"

रिक्त स्थानों पर उचित विवरण देकर संकल्प लेना चाहिए।

आसन

आचार्यों ने मन्त्र सिद्धि में आसन का विशिष्ट महत्त्व बतलाया है। आसन विहीन साधना हानिकर होती है। अनेक प्रकार के आसनों में मन्त्रोपयुक्त आसन का चयन गुरु के निर्देशानुसार करना चाहिए। नग्न भूमि पर बैठने से साधनार्जित विद्युत शक्ति पृथ्वी में स्थानान्तरित न हो, साधक में सुरक्षित रहे, इसलिए आसन कुचालक और असंक्रामक होना चाहिए। किसी अन्य द्वारा प्रयुक्त आसन में अदृश्य रूप से विद्यमान

रहने वाले जीवाणु-रोगाणु-संस्काराणु नवीन साधक को क्षति दे सकते हैं। साधना को अक्षत रखने के लिए आचार्यों ने निम्नलिखित आसनों की आज्ञा दी है—**कुशासन, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म, ऊनी वस्त्र, रेशमी वस्त्र, काष्ठासन**। प्रत्येक आसन अपने विशिष्ट गुण-प्रभाव के लिए विवेच्य है।

(१) **कुशासन**—तृणों में सर्वश्रेष्ठ कुश का हिन्दू धर्म के प्रत्येक संस्कार में अनिवार्य स्थान है। प्रत्येक सात्विक कार्य कुश के स्पर्श से प्रभावी हो जाता है। महाभाष्यकार पतंजलि मुनि के अनुसार अष्टाध्यायी की रचना के समय पाणिनि हाथ में कुश की पवित्री पहने रहते थे। आयुर्वेद शास्त्र ने कुश को भूतवाधा निरोधक कहा है। वैदिक मत है—

"त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत्॥
(अथर्ववेद–१९/३३/३)

कुश महान् औषधि है। वातावरण के संक्रमण से रक्षा करने में सक्षम होने के कारण ग्रहण काल में इसका उपयोग निर्धारित है। अथर्ववेद में "**वध्नामि जरसे स्वस्तवे**" और "**दर्भोऽयं उग्र औषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे**" कहकर कुशल, यौवनावस्था और आयुवृद्धि के लिए कुश की प्रशंसा की गई है। अथर्ववेद में इससे संवन्धित अनेक विवरण हैं। साधना द्वारा साधक में उत्पन्न विद्युत के पृथ्वीकरण के निरोध के लिए कुशासन अत्यन्त उपयोगी है पारस्कर गृह्यसूत्र, महाभाष्य, अष्टाध्यायी, वेद-वाङ्मय, आयुर्वेद-साहित्य और विभिन्न श्रेष्ठ साधकों ने कुश की महत्ता सिद्ध की है। कुशासन के उपयोग से साधक में पवित्रता, तन्मयता, आरोग्य की वृद्धि होती है। परिवेश के प्रदूषण से साधक रक्षित रहता है।

(२) **मृगचर्मासन**--मृग से सम्बन्धित समस्त विशेषतायें—त्वरितता, अहिंसा, कमनीयता, तेज, प्रशान्ति आदि उसके चर्मासन में विद्यमान रहती हैं। ऋषि आश्रमों में मृग की उपस्थिति उसकी संस्कारिता का प्रमाण है। यजुर्वेद ने समस्त पुण्यों के प्रदाता के रूप में (**कृष्णाजिनं वै सुकृतस्य योनिः**), श्रीगीता ने ज्ञान सिद्धि सहायक के रूप में (६/११), स्वामी दयानन्द ने सुसंस्कार सम्पन्नक के रूप में (**कृष्णाजिनमखण्डम्**) मृगचर्म की प्रशंसा की है। इन्द्रिय निरोध और वासना वेग के परिहारार्थ तपस्वी, मनस्वी-साधक-सन्त इसका प्रयोग करते हैं। गृहस्थ व्यक्ति या परिवार कामी व्यक्ति के लिए इसका उपयोग निषिद्ध है।

आयुर्वेदानुसार कषाय और मधुरगुणपूर्ण होने से यह वात पित्त और रक्त-विकार तथा उत्तेजनापरक मूर्च्छा जैसे कष्टों में हितकर है—

"जाङ्गला मृगाः कषाया मधुरा लघवो वातपित्तापहाः।
तीक्ष्णाः हृद्याः, वस्तिशोधनाश्च ॥
(सुश्रुत० सूत्र स्थान ४६ अ०)

ज्ञानसिद्धि, आध्यात्मिक साधना के लिए मृगचर्म एक श्रेष्ठ आसन है।

(३) **व्याघ्रचर्मासन**--रजोगुण प्रधान यह आसन, पुरुषार्थ, तेज, ओज का प्रदाता और निर्विघ्न ध्यान-समाधि-साधना के लिए उपयोगी है। विषैले कीट इससे परे रहते हैं। यह योगिराज भगवान् शिव का अति प्रिय वस्त्र और आसन है। राजसी कामनाओं के निमित्त की जा रही साधना के लिए सर्वश्रेष्ठ आसन के रूप में व्याघ्रचर्मासन प्रख्यात है।

(४) **रोमासन**—रेशम और ऊन से विनिर्मित आसन भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं। गीता के अनुसार मृगचर्म के नीचे रेशमी वस्त्र बिछाना चाहिए (६/११)। अथर्ववेद (१८/१/४३) ने ऊन के आसन का उल्लेख किया है। ये दोनों कुचालक-असंक्रामक आसन हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से रेशमी आसन, भौतिक कामनाओं की संपूर्ति हेतु लाल कम्बल या विविध वर्णी कम्बल उल्लेखनीय हैं।

(५) **काष्ठासन**—काष्ठासन भी रोमासन के समान ही उपयोगी है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आसन का प्रयोग आचार्य की आज्ञानुसार-निर्देशानुसार करना चाहिए। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार काम्य कर्म में कंबल (श्रेष्ठ लाल कम्बल), और शीघ्र मन्त्र सिद्धि के लिए कुशासन अत्यन्त श्रेष्ठ है--

"काम्यार्थं कम्बलं चैव श्रेष्ठं च रक्तकम्बलम्।
कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥"

इन पारम्परिक शास्त्रानुमोदित आसनों के अतिरिक्त किसी भी अन्य आसन पर बैठने के कुपरिणाम पांचरात्र में इस प्रकार वर्णित हैं—

वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिसंभवः।
धरण्यां दुःखसंभूतिर्दौर्भाग्यं छिद्रिदारुजे।
तृणे धनयशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ॥

अर्थात् बाँस के आसन पर दरिद्रता, पाषाण पर व्याधि, भूमि पर दुःख, छिद्रित काष्ठ पर दुर्भाग्य, तृण पर लक्ष्मी एवं यश की क्षति और पर्णासन पर चित्त विभ्रम होता है, अतएव इन आसनों का प्रयोग निषिद्ध है।

माला

शुद्ध, वास्तविक अदोष और संस्कृत माला से जप साधना का मूलाधार है, माला ईश्वर स्मरण का सेतु है। शास्त्रवचनानुसार---

अंगुलीगणनादेकं पर्वण्यष्टगुणं भवेत् ।
पुत्रजीवैर्दशगुणं शतं शंखैः सहस्रकम् ॥
प्रवालैर्मणिरत्नैश्च दशसाहस्त्रिकं स्मृतम् ।
तदेव स्फाटिकैः प्रोक्तं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ॥
पद्माक्षैर्दशलक्षं स्यात् सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।
कुशग्रन्थ्या कोटिशतं रुद्राक्षैः स्यादनन्तकम् ॥
सर्वैर्विरचिता माला नृणां मुक्तिफलप्रदा ।

अर्थात् "अंगुलि जप का फल एक गुना, अंगुलि-पर्व पर आठ गुना, जीवपुत्रिका की माला पर दस गुना, शंख माला पर सौ गुना, मूँगामाला पर सहस्रगुना, मूंगा मणि व रत्न माला पर दस हजार गुना, स्फटिक माला पर दस हजार गुना, मौक्तिक माला पर लाख गुना, कमल माला पर दस लाख गुना, स्वर्ण माला पर करोड़ गुना, कुशग्रन्थि की माला पर सौ करोड़ गुना तथा रुद्राक्ष की माला पर अनन्त फल उपलब्ध होता है। माला का उपयोगानुरूप वर्गीकरण इस प्रकार है—

(१) कर माला--अँगुलियों को परस्पर सटाकर उनके पर्वों पर एक सम क्रम में मन्त्र जाप किया जाता है —

"अङ्गुलीर्न वियुञ्जीत किंचिदाकुंचिते तले ।
अङ्गुलीनां वियोगाच्च छिद्रे च स्रवते जपः ॥"

दैनिक संक्षिप्त जप के अतिरिक्त दीर्घकालिक साधना में यह विधि अवैज्ञानिक सिद्ध होती है। गायत्री कल्प में इस करमाला का विस्तार से वर्णन है।

(२) वर्णमाला--सनत्कुमार तन्त्र और वैशम्पायन संहिता आदि में वर्णमाला का वर्णन है। "अ" से "क्ष" तक ५१ वर्णों में "क्ष" मेरु मानकर "अ" से "ह" और "ह" से "अ" तक पंचाशद्वर्णमाला का जप करना चाहिए। यह विधि भी असुविधाजनक है और इसीलिए नितान्त अप्रचलित है। मालिनीविजय तंत्र में वर्णमाला माहात्म्य वर्णित है :--

"अन्तर्विद्रुमभासमानभुजगीं सुप्तोत्थवर्णोज्ज्वलाम् ।
आरोहप्रतिरोहतः शतमयीं वर्गाष्टकाष्टान्तराम् ॥"

(३) मणि माला – पुराकाल से साधना के साथ अलंकार और श्रृंगार के क्षेत्रों में मणिमाला का व्यवहार है, शोभा एवं सौंदर्य वृद्धि, सम्मान एवं श्रद्धा का अभिसूचन मणिमालाओं से होता है, सूत्र में मणि-संग्रथन के कारण इसे मणिमाला कहते हैं, ये मालायें तुलसी, रुद्राक्ष, जीवपुत्रक, शंख, पद्म बीज, सोना, मणि, रक्तचन्दन, चाँदी, स्वर्ण कण, मौक्तिक, स्फटिक, कुशमूल आदि से प्रायः विनिर्मित होती हैं, शाक्त, शैव, स्मार्त रुद्राक्ष की एवं वैष्णव तुलसी की माला को श्रेष्ठ समझते हैं। विभिन्न कामनाओं के लिए पृथक्-पृथक् मणिमाला का विधान है।

२

शत्रुहनन हेतु कमल गट्टा, पापविनाश हेतु कुश मूल, पुत्र हेतु जीवपुत्रक, लक्ष्मी-प्राप्ति हेतु मूंगा माला का जप हितकर है। भैरवी विद्या हेतु स्वर्णमणि, स्फटिक, शंख और मूंगे की माला उचित है। त्रिपुरसुन्दरी की सिद्धि हेतु लाल चन्दन बीज माला श्रेष्ठ है। वैष्णव साधना में तुलसी, गणेश आराधना में गजदन्त, त्रिपुर साधना में रुद्राक्ष एवं रक्त चन्दन की माला निर्देशित की गई है। विवाह से संबद्ध कामनापूर्ति हेतु तुलसी या स्फटिक की माला सर्वोत्कृष्ट बतलाई गई है।

माला चयनोपरान्त पंचोपचार द्वारा उसकी संस्कार शुद्धि करनी चाहिए, इसके अनन्तर शुद्ध होकर, श्रद्धापूर्वक, वस्त्राच्छादित करके उसका प्रयोग करना चाहिए। माला का मूल्य उसकी शुद्धता, पुष्टता, समरूपता एवं संस्कारिता है। इसका सर्वदा ध्यान रखें।

पुरश्चरण

पुरश्चरण एक नियतकालिक अनुष्ठान है, जिसमें समस्त नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करके मंत्र को सिद्ध किया जाता है। पुरश्चरण के हेतु मंत्रानुसार संख्या का निर्धारण है। इस पवित्र अनुष्ठान में मन्त्र दीक्षा ग्रहणोपरान्त नियमित रूप से पूरी विधि सम्पूर्ण करनी होती है। शास्त्रों के अनुसार पुरश्चरण में जातक प्रातः कालीन जागरण से रात्रि शयन तक आचार्य-निर्देशित आचार-व्यवहार-संहिता रखता है और सात्विक भाव से चतुरंगी (**ध्यानं पूजा जपो होमः**) अथवा पंचांगी (+ ब्राह्मण भोजन) षडंगी (+ तर्पण) साधना पूर्ण करता है। यद्यपि इस क्षणाकुल त्वरिता-क्रान्त युग में समस्त शास्त्र विहित कृत्यों का अक्षरशः पालन दुष्कर है, तथापि संक्षिप्ततः अग्रांकित तथ्यों पर समुचित अवधान देना चाहिए—

> **मनसा, वाचा, कर्मणा, अद्रोह-अस्तेय-अहिंसा-वाणीसंयम-इन्द्रियनिग्रह-पवित्राचार-पवित्रविहार और पवित्र विचार के प्रतिपादन से पुरश्चरण अपने उद्दिष्ट तक पहुँचता है।**

पुरश्चरण से पूर्व पवित्र स्थान पर अनुष्ठानानुसार गायत्री, कामाख्या मन्त्र अथवा काली मन्त्र जपने से साधक पाप मुक्त हो जाता है। तन्त्र द्वारा पुरश्चरण की परिभाषा इस प्रकार है —

> **"साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते।**
> **पुरश्चरणहेतुत्वाद् विनियोगादि कर्मणाम् ॥"**

मूल मन्त्र की साधना पुरश्चरण है, इसके पूर्व विनियोगादि कर्म होते हैं, इसलिए पुरश्चरण कहा जाता है। कालिक, सांख्यिक और उभयात्मक तीन प्रकार के पुरश्चरण होते हैं। सामान्यतया बड़े मन्त्र का कम संख्या में और लघु मन्त्र का अधिक संख्या में जप करने से पुरश्चरण संपन्न होता है।

पुरश्चरणार्थ जप्य मन्त्र से पूर्व तिथि, वार, नक्षत्रादि का विचार करें। इष्टदेव, गुरुचरण, कुलदेव, स्थान देव को प्रणामार्पणोपरान्त संकल्प में तत्पश्चात विनियोग करें—

धर्मार्थकाममोक्षेषु शास्त्रमार्गेण योजनम्।
सिद्धमन्त्रस्य संप्रोक्तो विनियोग इति स्मृतः॥

शास्त्रानुसार सिद्ध मन्त्र की धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में विनियुक्ति विनियोग है। इसमें मन्त्र का नाम, ऋषि, छन्द, देव, बीज, और शक्ति का उल्लेख रहता है। तत्पश्चात् ध्यान का क्रम आता है।

ध्यान—अभीष्ट मन्त्र के स्वरूप में इन्द्रियों को मग्न करना ध्यान है। प्रायः मन्त्र से पूर्व प्रदत्त श्लोक में ध्यानार्थ भाव उद्धृत रहता है—

अर्चना से पूर्व न्यास का स्थान है।

न्यास—देहावस्थित पद्मचक्रों के स्पर्श से शरीर में अद्‌भुत उद्दीप्त विद्युत का स्फुरण होता है। अंगोपांगी न्यास सामान्यतया पाँचों अँगुलियों एवं अंगुष्ठ के संयुक्त संस्पर्श से होता है वैष्णवेतर संप्रदायों में हृदय का स्पर्श कनिष्ठिका और अंगुष्ठ के अग्रभाग से, शीर्ष (ब्रह्मरन्ध्र) का स्पर्श मध्यमा अंगुलि से, शिखा का स्पर्श बद्धमुष्टि से, मुख का स्पर्श कनि० अंगुष्ठ के अग्रभाग से (अनामिका को बायीं एवं तर्जनी को दायीं आँख के समक्ष और मध्यमा को भ्रूमध्य में रखकर) करते हैं।

पूजा—मानसी पूजा, मुद्रामयी पूजा, उपचारवती पूजा-इन तीन प्रकारों का वर्णन शास्त्रों में है। मानसी पूजा सामान्य स्तर पर वर्जित है। देहस्थ पंच कमल पंचतत्त्वों के मूल स्थान के रूप में प्रस्फुटित होकर देवार्पित हों, यह स्थिति अत्यन्त उच्च साधकों की है। मुद्रामयी पूजा में हाथों से पंचोपचार मुद्रा प्रदर्शन करके **गन्ध के लिए लं, पुष्प के लिए वं, दीप के लिए रं, धूप के लिए यं, नैवेद्य के लिए हं अथवा लं वं रं यं बीजमन्त्रों से** पूजा की जाती है। यह विधि भी प्रायः अप्रचलित है। उपचारवती पूजा सर्वसुलभ और सर्वग्राह्य है। पाँच से छत्तीस उपचारों में स्थूल से सूक्ष्म (तत्त्व) की ओर गमन होता है। उपचार उल्लेख इस प्रकार है—

पंचोपचार—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य।

षोडशोपचार—आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आरती, प्रदक्षिणा, पुष्पांजलि।

अष्टादशोपचार—आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, आचमन, वस्त्र, उपवीत, दुकूल, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, माल्य, अनुलेप, आरती, सामग्री में शुद्धता और पवित्रता का ध्यान रखना चाहिए। विष्णु को अक्षत, गणपति को तुलसी, देवी को दूर्वा, सूर्य को विल्वपत्र, विष्णु को धतूरा और मन्दार, सूर्य को तगर, शिव

को चम्पा अर्पित नहीं करनी चाहिए। शिव अभिषेक से, देवी पूजन से, गणपति तर्पण से, विष्णु स्तुति से और कार्तवीर्य दीप से मुदित होते हैं। पुरश्चरण अबाध चलना चाहिए। असाध्य परिस्थितियों को छोड़कर भोजन में हविष्यान्न, दूध और फल का प्रयोग करना चाहिए।

जप—"जपः स्यादक्षरावृत्तिः"—अक्षरों की पुनरावृत्ति जप है। जप वाचिक, उपांशु और मानस तीन प्रकार का है। जप के समय अशुद्ध हाथ एवं वाचालता अहितकर होती हैं। शान्त वातावरण, एकान्त सात्विक परिवेश, शान्त चित्त एवं मानसिक एकाग्रता जप की शक्ति को संवर्द्धित करते हैं। जप के समय समस्त बाह्याभ्यन्तर व्यक्तित्व को विकारों से मुक्त होना चाहिए। सिद्ध साधकों ने जप के संदर्भ में कुछ बातों का उल्लेख किया है।

१. मंत्रोच्चारण की समगति और समध्वनि।

२. स्थल, आसन, माला, पूजन सामग्री की शुद्धता, पवित्रता का ध्यान।

३. जप काल में सूर्य, ध्रुवतारा, गौ, अग्नि, दीपक या जल की साक्षी।

४. विधेय और निषिद्ध सिद्धान्तों का अक्षरश अनुपालन।

हवन—हवन अनुष्ठान की अन्तिम और अपरिहार्य क्रिया है। पवित्र समिधा द्वारा प्रज्ज्वलित अग्नि में मन्त्रान्त में स्वाहा बोलते हुए निर्दिष्ट हव्य सामग्री का अर्पण करते हैं। हवन नितान्त वैज्ञानिक क्रिया है। हवनान्त की आहुति पूर्णाहुति कहलाती है। इसके पश्चात् इष्ट से क्षमायाचना करनी चाहिए और हवनकुण्ड की भस्म मस्तक पर लेपित करनी चाहिए। इसके अनन्तर देव प्रतिमा हवन-कुण्ड और अन्तरिक्ष को प्रणाम निवेदित करना चाहिए। फिर प्रदक्षिणा और विसर्जन करें। विसर्जन में अत्यन्त सुशान्त चित्त से समग्र समर्पण करके इष्ट का आशीष प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार सविधि सश्रद्धा मन्त्रानुष्ठान से अभीप्सित की उपलब्धि संभव है। आस्था इस प्रक्रिया का प्रधान विन्दु है।

शास्त्रानुसार—

मन्त्रे, तीर्थे, द्विजे, देवे, दैवज्ञे, भैषजे, गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

अर्थात् मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, वैद्य और गुरु भावनानुसार सिद्धि प्रदान करते हैं।

इस परंपरापूत विज्ञान का लाभ उसके विधिपूर्वक अनुष्ठान से ही प्राप्तव्य है—

"यादृशी भावना यस्य
सिद्धिर्भवति तादृशी"

●

द्वितीय–अध्याय

वैवाहिक विलम्ब एवं ग्रहयोग : ज्योतिषीय विश्लेषण

क्षणजीवी भौतिकता की दिशा में समग्र सामर्थ्य के साथ उद्यत मानव समाज में सर्वाधिक आहत एवं क्षत-विक्षत हैं सम्बन्धों के समीकरण। समाज की समस्त इकाइयाँ और संस्थायें इस दुष्कालिक आक्रमण से स्तब्ध हैं। विवाह नामक केन्द्रीय संस्कार भी समस्याओं के चक्रव्यूह में मोहाविष्ट है। इस संदर्भ में अनागत दर्शन की क्षमता से संपन्न ज्योतिष शास्त्र की भूमिका अत्यन्त उत्तरदायी एवं अनाविल हो उठती है।

विवाह एक संश्लिष्ट और बहुआयामी संस्कार है। इसके संबंध में किसी प्रकार की फलप्राप्ति के लिए विस्तृत एवं धैर्यपूर्ण अध्ययन-मनन-चिंतन की अनिवार्यता होती है। किसी जातक के जन्मांग से विवाह संबंधी ज्ञानप्राप्ति के लिए द्वितीय, पंचम, सप्तम एवं द्वादश भावों का विश्लेषण करना चाहिए। द्वितीय भाव परिवार का द्योतक है तथा पति-पत्नी परिवार की मूल इकाई हैं। सातवें भाव से अष्टमस्थ होने के कारण विवाह के प्रारंभ व अंत का ज्ञान देकर यह भाव अपनी स्थिति महत्त्वपूर्ण बनाता है। प्रायः पापाक्रान्त द्वितीय भाव विवाह से वंचित रखता है। सन्तान सुख वैवाहिक जीवन का प्रसाद पक्ष है, जिसके लिए पंचम भाव का समुचित विश्लेषण आवश्यक है। सप्तम भाव से तो मुख्यतः विवाह से संबंधित अनेक तथ्यों का उद्‌घाटन होता ही है। द्वादश भाव शैया सुख के लिए विचारणीय है। अनेक ज्योतिषी एकादश भाव का विवेचन भी आवश्यक समझते हैं। एक बहुख्यात सूत्र है कि यदि एकादश भाव में दो ग्रह संस्थित हों तो जातक के दो विवाह होते हैं। स्त्रियों के सन्दर्भ में सौभाग्य ज्ञान प्रदाता अष्टम भाव का भी अध्ययन करना चाहिए।

फलदीपिका में मन्त्रेश्वर ने शुक्र और बृहस्पति को क्रमशः पुरुष व स्त्री का विवाह कारक ग्रह बतलाया है। जबकि प्रश्नमार्ग के मतानुसार स्त्रियों के विवाह का कारक ग्रह शनि है। बृहस्पति और शनि पर विचार करने के साथ-साथ शुक्र पर भी अवश्य विचार करना चाहिए अन्यथा निर्णय में अशुद्धि होगी।

सप्तमाधिपति की स्थिति भी विवाह के विषय में पर्याप्त बोध कराती है। यदि सप्तमाधिपति अपनी उच्च राशि में स्थित हो तो उच्च कुल की श्रेष्ठ कन्या के साथ विवाह संपन्न होता है, यदि निम्न राशि में स्थित हो तो सामान्य परिवार से

परिणय सूत्र जुड़ता है। इसके केन्द्र में श्रेष्ठ स्थिति में स्थित होने पर वैवाहिक संस्कार अत्यन्त वैभवशाली ढंग से सम्पन्न होता है। सप्तमाधिपति यदि षष्ठ, अष्टम या द्वादश भाव में स्थित हो तो विवाह प्रायः दुःखपूर्ण होता है, इन सब संदर्भों के साथ विवाह के विलम्ब से होने या न होने पर विचार किया जायेगा। सर्वप्रथम कुछ सूत्र उल्लिखित हैं—

वैवाहिक विलम्ब के संदर्भ में शनि की स्थिति

शनि, सर्वाधिक मन्द गति से भ्रमण करने वाला ग्रह है। द्वादशराशियों में भ्रमण करने के निमित्त उसे ३० वर्ष अपेक्षित होते हैं। अतः विवाह के विलम्ब से होने में शनि की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

किसी भी जन्मकुण्डली में विवाह-काल का निर्णय करते समय सर्वप्रथम विचारणीय यह है कि जातिका (कन्या) या जातक का विवाह उचित आयु में होगा या विलम्ब से होगा अथवा नहीं होगा। प्रायः कन्या के विवाह में विलम्ब होने की स्थिति में ही अभिभावक चिन्ताग्रस्त होते हैं। जब विलम्ब अधिक होने लगता है तो स्वयं जातिका की व्यग्रता भी बढ़ जाती है।

विवाह की समुचित अवस्था, विशेषतया कन्या के लिए १८–२५ वर्ष तक है। परन्तु २२वें वर्ष के समाप्त होने के साथ-साथ कन्या के अविवाहित रहने की स्थिति में, अभिभावकों को कुछ विलम्ब का अनुभव होने लगता है। २५वें वर्ष से अभिभावकों के सँग-सँग कन्या स्वयं भी विवाह की ओर से अनिश्चितता की स्थिति में आ जाती है। विवाह में विलम्ब होगा अथवा विवाह होगा ही नहीं, इसके ज्ञान के लिये ज्योतिष से अधिक कोई अन्य विज्ञान उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ है, किन योगों के कारण विवाह में विलम्ब होता है इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है। सर्वप्रथम उन योगों पर समुचित ढंग से विचार करना चाहिए। विवाह में अवरोध का क्या कारण है ? कौन-कौन से ग्रह बाधक हैं ? किस ग्रहयोग के कारण अनेक गम्भीर प्रयत्न भी लगातार विफल होते जा रहे हैं।

जब किसी कन्या की जन्मकुण्डली में शनि, चन्द्रमा अथवा सूर्य से युक्त या दृष्ट होकर सप्तम भाव अथवा लग्न में क्रमशः संस्थित हो तो विवाह नहीं होता, नवांश चक्र भी अवश्य देखना चाहिए। आगे जातकों की जन्म कुण्डलियाँ दी जा रही हैं उनमें देखें—

उदाहरण संख्या–१ की जन्मकुण्डली में सूर्य और शनि लग्न और सप्तम भाव में संस्थित होकर एक दूसरे को देख रहे हैं जिस कारण विवाह ५२ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी नहीं हुआ है।

शनि सप्तम भाव में भले ही स्वगृही हो परन्तु सूर्य से सप्तमस्थ होने पर विवाह में अवश्य बाधा आयेगी।

शनि सूर्य संयुक्त रूप से लग्न में हों तब भी बाधा आयेगी।

शनि लग्न में और चन्द्रमा सप्तमस्थ हो तो विवाह में पर्याप्त विलम्ब होगा।

उदाहरण संख्या–८ में यह योग द्रष्टव्य है।

शनि और चन्द्रमा संयुक्त रूप से सप्तमस्थ हों अथवा नवाँश लग्न से सप्तमस्थ हों तो विवाह में विलम्ब होता है।

उदाहरण संख्या–७ की नवांश कुण्डली में शनि ओर चन्द्रमा सप्तम भावस्थ हैं जिस कारण विवाह में अप्रत्याशित विलम्ब हुआ।

× × ×

उदाहरण संख्या–९ की जन्मकुण्डली में शनि और चन्द्रमा की युति द्वितीय भाव में विवाह में विलम्ब का कारण वनी।

यदि शनि और चन्द्रमा लग्न और सप्तम भाव के स्वामी होकर एक दूसरे को देख रहे हों तो विवाह में विलम्ब होता है। यह स्थिति कर्क व मकर लग्न वालों के लिए ही संभव है। उदाहरण संख्या–११ की कुण्डली में लग्नेश चन्द्रमा द्वादशस्थ है तथा सप्तमेश शनि षष्ठ भावगत है और परस्पर एक दूसरे को देख रहे हैं जिस कारण अभी २७ वें वर्ष में भी विवाह, सतत प्रयत्न करने पर भी सम्पन्न नहीं हो पाया है।

लग्न में शनि स्थित हो, सूर्य सप्तम भावस्थ हो एवं सप्तमाधिपति निर्बल हो तो विवाह नहीं होता।

उदाहरण कुण्डली संख्या–२ में जातक ४४ वर्ष का है। सूर्य सप्तमभावस्थ है तथा लग्नस्थ शनि से परस्पर दृष्ट है। अतएव जातक ने जीवन भर अविवाहित रहने का निश्चय किया है।

शनि यदि सूर्य अथवा चन्द्रमा में से एक को देखता हो अथवा उससे युक्त हो तथा शुक्र द्वारा भी प्रभावित हो (शनि की राशि या नत्रत्र में हो अथवा शनि से दृष्ट हो) **तो विवाह में विलम्ब होता है।**

उदाहरण संख्या—३ की जन्मकुण्डली में शनि धनु राशिगत होकर सूर्य और चन्द्रमा दोनों को देख रहा है इसलिये पर्याप्त विलम्ब अपेक्षित है।

× × × ×

उदाहरण संख्या – ४ की कुण्डली में शनि मिथुन राशिगत होकर सप्तमस्थ है तथा सूर्य और चन्द्रमा को देख रहा है।

× × × ×

उदाहरण संख्या - ५ की जन्मकुण्डली में भी शनि सप्तमस्थ है और चन्द्रमा को देख रहा है जिससे विवाह में वहुत विलम्ब हो रहा है।

लग्न, सप्तम, उनके अधिपति अथवा शुक्र यदि पापकर्तरी योग स्थापित कर रहे हों तो विवाह में विलम्ब होता है। **विशेष रूप से यदि सूर्य, लग्न, लग्नेश, सप्तम**

भाव, सप्तमेश अथवा शुक्र से द्वितीयस्थ हो व शनि से द्वादशस्थ हो तो विवाह में अप्रत्याशित विलम्ब होता है। यदि कुछ अन्य दोष भी हों तो विवाह नहीं होता।

उदाहरण संख्या—९ की जन्मकुण्डली में लग्न से द्वादशस्थ शनि है तथा द्वितीयस्थ सूर्य, जिस कारण जातक ५७ वर्ष की आयु में भी अविवाहित है। यहाँ शनि द्वितीयेश होकर द्वादशस्थ है।

उदाहरण संख्या—१० की कुण्डली में सप्तम भाव शनि और सूर्य के कारण पापकर्तरी योग ग्रस्त है। फलतः जातक अविवाहित है।

× × × ×

उदाहरण संख्या—८ की जन्मकुण्डली में भी लग्नेश शुक्र से द्वादशस्थ सूर्य है और द्वितीयस्थ शनि। इस कारण जातिका का विवाह अनेक अवरोधों के उपरान्त ३४ वर्ष की आयु में सम्पन्न हुआ।

शनि यदि सप्तम भाव पर, सप्तमेश पर एवं शुक्र पर दृष्टि निक्षेप करे तो अनपेक्षित विलम्ब होता है।

उदाहरण संख्या—११ की जन्मकुण्डली में शुक्र, शनि और सूर्य के मध्य पापकर्तरी योग स्थापित है तथा शनि सप्तम तथा सप्तमेश पर दृष्टि डाल रहा है।

लग्न से शनि पंचमस्थ, सप्तमस्थ अथवा दशमस्थ हो अथवा सप्तमेश या शुक्र से चतुर्थ, सप्तम या एकादशस्थ हो तो विवाह में विलम्ब होता है। उल्लेखनीय है कि सप्तमभावस्थ शनि पुरुषों के विवाह में अवरोध नहीं उत्पन्न करता, यदि अन्य अवरोधात्मक योग न हों।

विवेचित उदाहरणों में बहुलांश से योग देखा जा सकता है।

यदि उपरोक्त स्थिति में शनि के साथ राहु अथवा शुक्र स्थित हों या शनि से राहु या शुक्र सप्तमस्थ हों तो शनि का विघ्नकारी प्रभाव और भी बढ़ जाता है। इसी प्रकार यदि उपरोक्त वर्णित शनि की स्थिति के साथ सूर्य अथवा चन्द्रमा हो या मंगल हो तब भी विवाह यथासमय सम्पन्न नहीं हो पाता। शनि की स्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार करके अवरोधात्मक दोषादि का स्पष्ट निर्णय करना चाहिए। तदुपरान्त महादशा अन्तरदशा की सहायता से यह देखना चाहिए कि विवाह काल कब है और उसमें अवरोध क्या है?

शनि और सूर्य के कुछ विशिष्ट योग, जिनकी जन्मांग में संस्थिति जातक के परिणय की संभावना को क्षीण अथवा विनष्ट करती है, अग्रांकित हैं :—

शनि और सूर्य यदि संयुक्त रूपेण सप्तम भावस्थ हों तो विवाह नहीं होता। **अथवा, यदि लग्न से द्वादशस्थ शनि हो और द्वितीयस्थ सूर्य हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो विवाह नहीं होता।**

अथवा, यदि सप्तम भाव शनि और सूर्य से संपुटित हो अर्थात् शनि षष्ठभावस्थ तथा सूर्य अष्टमभावस्थ हो एवं सप्तमेश बलहीन हो तो विवाह नहीं होता।

अथवा, यदि शनि लग्नस्थ हो और सूर्य सप्तमभावस्थ हो तथा कोई अन्य शुभ योग सप्तमभाव में न हो तो विवाह नहीं होता।

अथवा, यदि शनि सप्तम भावस्थ हो और सूर्य लग्नस्थ हो तो विवाह नहीं होता।

अथवा, यदि सप्तमेश या शुक्र से द्वितीयस्थ सूर्य हो एवं द्वादशस्थ शनि हो तो भी विवाह नहीं होता।

अथवा, यदि शनि और सूर्य ऐसा पारस्परिक दृष्टिसंबन्ध रखते हों कि लग्न या सप्तम भाव प्रभावित हो रहा हो तो विवाह होने की संभावना बहुत कम होती है।

अथवा, यदि सूर्य सप्तमभावस्थ हो और शनि की उस पर दृष्टि हो अर्थात् शनि लग्नस्थ, पंचमस्थ या दशमस्थ हो तो भी विवाह होने की सम्भावना क्षीण हो जाती है।

अथवा, यदि सूर्य और शनि के साथ शुक्र और सप्तमेश हों तो भी विवाह की सम्भावना नहीं होती।

उल्लेखनीय तथ्य है कि शनि और सूर्य की युति उतनी अशुभ नहीं है जितनी कि सूर्य पर शनि की दृष्टि या सूर्य या शनि की परस्पर दृष्टि। उपरोक्त स्थितियों में शनि और सूर्य के अंशों में ६०° या १८०° का अन्तर विवाह प्रतिबन्धक योग की स्थापना करता है।

वैवाहिक विलम्ब में शुक्र की विशिष्ट संस्थिति

शुक्र और चन्द्रमा की पारस्परिक शत्रुता है। चन्द्र और सूर्य दोनों ही शुक्र के शत्रु हैं। यदि शुक्र, सूर्य अथवा चन्द्रमा की राशि कर्क या सिंह में स्थित हो एवं सूर्य और चन्द्रमा उससे द्वितीयस्थ एवं द्वादशस्थ हों तो विवाह नहीं होता अथवा उसमें अनेकानेक बाधायें समुपस्थित होती हैं। बहुधा वैवाहिक सम्बन्ध प्रायः निश्चित होकर भी भंग हो जाता है।

उदाहरण संख्या-१३ की जन्मकुण्डली में यह ग्रह योग बिलकुल स्पष्ट है। शुक्र शत्रु राशि कर्क में संस्थित है तथा शुक्र से द्वितीयस्थ सूर्य व द्वादशस्थ चन्द्रमा स्थित है।

शुक्र और चन्द्रमा की सप्तम भाव में स्थिति भी पर्याप्त चिन्तनीय है। यदि शनि व मंगल उनसे सप्तम हों तो विवाह निश्चित रूप से नहीं हो पाता। बृहस्पति से दृष्ट हो तो विवाह पर्याप्त विलम्ब के बाद सम्पन्न होता है।

शुक्र और चन्द्र यदि सप्तम भाव में कर्क, सिंह, तुला या वृषभ राशिगत होकर स्थित हों या नवांश लग्न से सप्तमस्थ हों अथवा शुक्र और चन्द्रमा षडष्टक हों तो विवाह में अवरोध आता है। उदाहरण संख्या—१४ की जन्मकुण्डली में सप्तम भाव में चन्द्रमा, शुक्र शत्रु की राशि सिंह में स्थित हैं इसलिए विवाह में विलम्ब हो रहा है।

यदि शुक्र शत्रु राशिगत होकर सप्तमस्थ हो और चन्द्रमा उसे देख रहा हो अर्थात् कुम्भ या मकर लग्न में चन्द्रमा स्थित हो तथा शुक्र सप्तमस्थ हो तो विवाह में अनेक अवरोध आते हैं और विलम्ब होता है। उदाहरण संख्या–१५ की जन्मकुण्डली में भी शुक्र शत्रु राशि गत होकर सप्तमस्थ है और चन्द्रमा लग्न में स्थित है दोनों परस्पर एक दूसरे से दृष्ट हैं। २९ वर्ष की आयु पूरी हो जाने के बाद भी जातक अब तक अविवाहित है।

उल्लेखनीय है कि **यदि सप्तमेश शुक्र हो और उसके साथ सूर्य और चन्द्रमा स्थित हों तो शुक्र अत्यन्त पापी हो जाता है। ऐसी स्थिति में विवाह नहीं होता। यदि हो जाय तो अविवाहित की तरह ही जीवन यापन करना पड़ता है।** उदाहरण संख्या–१६ की जन्मकुण्ली में सूर्य, शुक्र, चन्द्रमा सिंह राशिगत होकर नवमस्थ हैं यहाँ शुक्र सप्तमाधिपति है अतः जातिका का विवाह नहीं हुआ। आजीवन अविवाहिता का योग है। क्योंकि अनेक अविवाह के योग हैं।

इसी प्रकार यदि शुक्र सूर्य और चन्द्रमा से युक्त होकर सप्तमस्थ हो तब भी विवाह का सुख-निषेध होता है। यह स्थिति सतर्कतापूर्वक देखनी चाहिए। उदाहरण संख्या १७ की जन्मकुण्डली में चन्द्र-सूर्य-शुक्र सप्तमस्थ हैं जातिका ५१ वर्ष की है परन्तु विवाहिता होने के बावजूद अपने पति से किसी प्रकार के शारीरिक-आर्थिक-सामाजिक सुख से वंचित है। इसके पति ने जातिका से विवाह के तत्काल बाद दूसरा विवाह कर लिया। जातिका अपने ही घर में एक दासी का जीवन व्यतीत कर रही है।

शुक्र और सूर्य के बीच में अधिकतम दूरी ४८$^{\circ}$ होती है। यदि यह दूरी ४३$^{\circ}$ से अधिक हो तो विवाह में विलम्ब होता है। उदाहरण संख्या–१८ के जन्मांग में सूर्य और शुक्र की अंशादि में ४३$^{\circ}$ से अधिक अन्तर होने के कारण विवाह में विलम्ब हुआ।

पापग्रहाकान्त जन्मांग : वैवाहिक विलम्ब

यदि लग्न, सप्तम व द्वादश भाव में पापग्रह संस्थित हों तथा पंचमस्थ चन्द्रमा निर्बल हो तो जातक का विवाह नहीं होता। यदि अन्य किसी योग से विवाह संभव हो तो स्त्री बन्ध्या होती है।

उदाहरण संख्या—८ की जन्मकुण्डली में लग्न में केतु, सप्तम में राहु स्थित है तथा इनके अधिपति शुक्र और मंगल क्रमशः दशम और अष्टम भाव में पापाक्रान्त हैं। द्वादश भाव भी पापकर्तरी योगग्रस्त है। पंचम भाव में पापग्रस्त चन्द्रमा है जिस कारण जातिका के विवाह में अत्यधिक विलम्ब हुआ।

यदि लग्न अथवा सप्तम भाव में पापग्रह संस्थित हों और गृहयुद्ध की स्थिति बन रही हो तो जातिका का विवाह नहीं होता। यदि संयोगवशात् संभव हो भी जाय तो अतिशीघ्र विघटन हो जाता है।

उदाहरण संख्या—१२ के जन्मांग में, लग्न में तथा उदाहरण संख्या—५ एवम् उदाहरण संख्या —१९ की जन्मकुण्डलियों में सप्तम भाव में गृहयुद्ध की स्थिति देखी जा सकती है।

शनि और मंगल लग्नगत हों या नवांश लग्न से सप्तमस्थ हों तो विवाह नहीं होता परन्तु वृश्चिक लग्न में यदि यह स्थिति बने तो अवश्य ही दो विवाह होते हैं। सप्तमेश बली हो अथवा उच्चराशिगत हो तो चालीस वर्ष की आयु में विवाह होता है।

शनि द्वारा सूर्य और चन्द्रमा प्रभावित हों तथा पंचमेश बलहीन हो तो विवाह में पर्याप्त विलम्ब होता है। उदाहरण संख्या—९ की जन्मकुण्डली में सप्तमेश शनि लग्नेश सूर्य को देख रहा है जिस कारण विवाह में विलम्ब हुआ। चन्द्रमा शनि की राशि में है।

यदि लग्नाधिपति और चन्द्रराशि का स्वामी किसी पापग्रह के साथ सप्तम भाव में संस्थित हो तथा सप्तमाधिपति द्वादशस्थ हो तो विवाह विलम्ब से सम्पन्न होता है।

राहु यदि सप्तम भाव अथवा नवम भाव में क्रूर ग्रहों से युक्त होकर स्थित हो तब भी विवाह में विलम्ब होता है। **राहु यदि शनि से संयुक्त होकर उन स्थानों पर हो जहां केवल शनि के ही रहने मात्र से विवाह में अवरोध होता है, तो विवाह—निषेध की संभावनायें और भी प्रबल हो जाती हैं।**

उदाहरण संख्या—४ की जन्मकुण्डली में राहु शनि से युक्त होकर सप्तमस्थ है। उ० सं०—७ की जन्मकुण्डली में राहु नवमस्थ है। उ० सं०—८ की जन्मकुण्डली में राहु सप्तमस्थ है। उ० सं० —२० की जन्मकुण्डली में राहु नवमस्थ है और शनि, सूर्य ऐसे ग्रहों द्वारा दृष्ट है। उ० सं०—१३ की जन्मकुण्डली में राहु नवमस्थ है। उ० सं०—२१ की जन्मकुण्डली में राहु सप्तमस्थ है। उ० सं०—९ की जन्मकुण्डली में सप्तमस्थ राहु है। तथा उ० सं०—१० की जन्मकुण्डली में भी राहु सप्तम भाव में स्थित है।

राहु का प्रभाव भी शनि की तरह ही देखना चाहिए। राहु और शनि संयुक्त रूप से इन स्थानों पर विवाह के और भी अधिक विलम्ब का कारण बनते हैं।

यदि लग्न और शुक्र वन्ध्या राशिगत हों अर्थात् मिथुन सिंह कन्या अथवा धनु राशि में स्थित हों तो विवाह में विलम्ब होता है।

उदाहरण संख्या—३ की जन्मकुण्डली में मिथुन लग्न है तथा शुक्र भी सिंह राशिगत है जिस कारण उपरोक्त योग का होना पाया जाता है।

राहु और शुक्र के लग्नस्थ होने से भी कुछ विलम्ब होता है।

यदि सप्तमाधिपति अथवा नवमाधिपति अष्टमस्थ हों या अष्टमस्थ ग्रह के नक्षत्र में स्थित हों तो विवाह में विलम्ब होता है।

उदाहरण संख्या—८ की जन्मकुण्डली में सप्तमेश मंगल अष्टमस्थ है और शनि द्वारा दृष्ट है इसलिए विवाह में पर्याप्त विलम्ब होगा।

पुरुषों के लिए सूर्य मंगल अथवा चन्द्र शुक्र की सप्तम भाव की स्थिति यदि पापाक्रान्त हो तो विवाह में विलम्ब का कारक होती है।

यदि द्वितीय भाव पाप ग्रस्त हो तथा द्वितीयेश द्वादशस्थ हो तब भी विवाह में विलम्ब होता है।

उदाहरण संख्या—६ की जन्मकुण्डली में द्वितीयेश शनि के द्वादशस्थ होने के कारण विवाह नहीं हुआ। इसी प्रकार उदाहरण संख्या—९ की जन्मकुण्डली में द्वितीयेश बुध द्वादशस्थ है।

उपरोक्त स्थिति में **यदि द्वितीयेश वक्री ग्रह हो या द्वितीय भाव में वक्री ग्रह स्थित हो तो विवाह में अत्यधिक अवरोध उत्पन्न होता है।**

यदि सप्तम भाव का स्वामी ६. ८. १२ भाव में स्थित हो अथवा अस्त हो या ६. ८. १२ भाव के स्वामी सप्तम भाव में हों तब भी विवाह में अत्यधिक अवरोध उत्पन्न होता है। यदि पापग्रहों का प्रभाव अधिक हो तो भी विवाह नहीं होता है।

उदाहरण संख्या—२२ की जन्मकुण्डली में यह योग द्रष्टव्य है जो ३९ वर्ष की अवस्था में भी अविवाहित हैं। इसी प्रकार उदाहरण संख्या—२३ की जन्मकुण्डली में भी षष्ठेश सूर्य सप्तमस्थ है, सप्तमेश बुध अष्टमस्थ है तथा अष्टमेश शुक्र नवमस्थ है। जातिका २६ वर्ष की है, पर अविवाहित है।

वैवाहिक विलम्ब और वक्री ग्रहों की भूमिका

सप्तम भाव में यदि वक्री ग्रह स्थित हो या सप्तमेश वक्री हो अथवा वक्री ग्रह या ग्रहों की सप्तम भाव, सप्तमेश या सप्तम भावस्थ ग्रह अथवा शुक्र पर दृष्टि हो या शुक्र स्वयं वक्री हो तब भी विवाह में अनेक अवरोध आते हैं और विवाह समय पर सम्पन्न नहीं होता।

यदि द्वितीय भाव में कोई वक्री ग्रह स्थित हो या द्वितीयेश स्वयं वक्री हो अथवा कोई वक्री ग्रह द्वितीय भाव या वहाँ पर स्थित ग्रहों को या द्वितीयेश को देखता हो तो भी विवाह विलम्ब से होता है।

उदाहरण संख्या–३ की जन्मकुण्डली में वक्री शनि सप्तम भाव तथा सप्तमेश बुध को देख रहा है। वक्री बृहस्पति द्वितीय भाव को देख रहा है।

उदाहरण संख्या–२४ की जन्मकुण्डली में सप्तमेश मंगल वक्री होकर अष्टमस्थ है और द्वितीय भाव को भी देखता है फलतः विवाह में अप्रत्याशित विलम्ब हो रहा है और वैवाहिक सुख की सम्भावना नहीं है।

उदाहरण संख्या–२५ की जन्मकुण्डली में सप्तमेश शनि वक्री है तथा द्वितीयेश बुध और कारक शुक्र दोनों को देख रहा है फलतः ४० वर्ष की आयु पर भी विवाह नहीं हो पाया है।

उदाहरण संख्या–२६ की जन्मकुण्डली में भी द्वितीय भाव में स्थित बृहस्पति वक्री है और द्वितीयेश बुध तथा कारक शुक्र को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है।

उदाहरण संख्या–१३ की जन्मकुण्डली में द्वितीय भाव में वक्री शनि, कारक शुक्र पर दृष्टि डाल रहा है तथा वक्री बृहस्पति सप्तमेश बुध को देख रहा है।

उदाहरण संख्या–२७ की जन्मकुण्डली में भी वक्री बृहस्पति द्वितीय भाव शुक्र को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है व द्वितीयेश शनि द्वादशभावगत है जिस कारण विवाह नहीं हुआ।

उदाहरण संख्या–३७ में सप्तमेश चन्द्रमा को वक्री बृहस्पति देख रहा है तथा शनि स्वयं द्वितीयेश होकर वक्री है। तथा द्वादशभावस्थ है। वक्री ग्रहों का प्रभाव यदि द्वितीय एवं सप्तम भाव या भावेश अथवा शुक्र पर हो तो विवाह में विलम्ब अवश्य ही होता है।

स्थिर राशिस्थ ग्रहों की विवाह विलम्ब में भूमिका

यदि लग्न, सप्तम भाव, सप्तमेश और शुक्र स्थिर राशिगत हो एवं चन्द्रमा चर राशि में हो तो विवाह में विलम्ब होता है, यदि इस स्थिति में चन्द्रमा निर्बल हो तो ३० वर्ष की आयु में विवाह होता है।

यदि उपरोक्त स्थिति में शनि का भी कुप्रभाव शामिल हो तो पचास वर्ष की आयु में विवाह होता है, यदि गुलिका भी युक्त हो तो ६० वर्ष में विवाह होता है।

उदाहरण संख्या—२८ की जन्मकुण्डली में उपरोक्त योग के कारण विवाह में अवरोधक देखा जा सकता है। सप्तमेश मंगल स्थिर है तथा सूर्य भी स्थिर राशि में है तथा पंचमेश शनि स्थिर राशि वृश्चिक में स्थित है।

उदाहरण संख्या—१४ में भी लग्न तथा लग्नगत बृहस्पति सप्तमस्थ चन्द्र तथा शुक्र व मंगल स्थिर राशिगत हैं तथा पंचमेश बुध व पंचम भाव पापकर्तरी योगग्रस्त हैं, फलतः विवाह में विलम्ब हो रहा है।

पंचम और सप्तम भाव के संदर्भ में विवाह विलम्ब का विवेचन

अधिकारी विद्वानों द्वारा यह तथ्य पुनः पुनः उद्धृत किया गया है कि विवाह के लिए पंचम भाव का सबल होना अनिवार्य है। पंचम भाव में निर्बल चन्द्रमा की स्थिति भी अश्रेयस्कर बताई गई है।

यदि कोई पंचम भाव का स्वामी सप्तम भाव में संस्थित हो या सप्तम भाव का स्वामी पंचम भाव में संस्थित हो और पापाक्रान्त हो तो विवाह में किंचित अवरोध उपस्थित होता है। यदि सप्तमेश और पंचमेश में विनिमय परिवर्तन योग हो अर्थात् सप्तमेश पंचमस्थ और पंचमेश सप्तमस्थ हो तो विवाह नहीं होता है परन्तु यदि इनमें से एक ग्रह भी अपनी उच्च राशि में स्थित हो या स्वगृही हो तो विवाह सम्पन्न होता है।

इस सन्दर्भ में उदाहरण संख्या–२९ की जन्मकुण्डली विचारणीय है जिसमें सप्तमेश मंगल पंचमस्थ है और पंचमेश बुध सतमस्थ है। जातिका का विवाह नहीं हो सका है। उसकी आयु ३५ वर्ष की हो चुकी है।

उदाहरण संख्या–१४ की जन्मकुण्डली में सप्तमेश सूर्य पंचमेश बुध से पंचम भाव में संयुक्त है और पापकर्तरी योग ग्रस्त है, जो विवाह में घोर बाधा उत्पन्न कर रहा है।

उदाहरण संख्या—३० की जन्मपत्री में सप्तमेश बृहस्पति, पंचमेश शनि से संयुक्त होकर पंचमस्थ है।

वैवाहिक विलम्ब में मंगल और शनि का हस्तक्षेप

शनि और मंगल यदि लग्न में या नवांश लग्न से सप्तमस्थ हों तो विवाह नहीं होता।

यदि शनि और मंगल से सप्तम भावस्थ कोई भी ग्रह हो, उनमें से एक के सामने सूर्य अथवा बृहस्पति में से कोई ग्रह हो तो विवाह में विलम्ब होता है तथा विवाह मध्य आयु में होता है।

यदि मंगल और शनि, शुक्र और चन्द्रमा से सप्तमस्थ हों तब विवाह में विलम्ब होता है।

शनि और मंगल यदि तुला लग्न वालों के लिए क्रमशः द्वितीयस्थ व अष्टमस्थ हों तो विवाह में बहुत विलम्ब होता है और विवाह का सुख नहीं मिलता।

उदाहरण संख्या–२८ की कुण्डली में द्वितीय भाव में शनि व अष्टम भाव में मंगल के होने से विवाह ३४ वर्ष के उपरान्त हुआ और कुल १० माह का वैवाहिक जीवन रहा।

उदाहरण संख्या—२४ की जन्मकुण्डली में भी शनि मंगल की यही स्थिति है। वैवाहिक सुख का योग नहीं है।

अथवा ३४ वर्ष की आयु में परिणय हो परन्तु विवाहोपरान्त सुख प्राप्त नहीं होगा।

उदाहरण संख्या—८ की जन्मकुण्डली में भी मंगल अष्टमस्थ है और शनि एकादशस्थ है, दोनों एक दूसरे से दृष्ट हैं। अतः ३४वें वर्ष में विवाह हुआ।

शनि मंगल की यह स्थिति तुला लग्न वालों के लिए बहुत अहितकर है। यदि अन्य योगों से किसी तरह विवाह हो भी जाय तो वैवाहिक सुख से वंचित रहना पड़ता है।

शनि और मंगल यदि षष्ठ-अष्टम स्थित हों तब भी विवाह में विलम्ब होता है और वैवाहिक-जीवन में भीषण संक्रान्ति होती है और प्रायः विवाह विघटित हो जाता है।

यदि शनि अथवा मंगल में से कोई भी ग्रह द्वितीयेश अथवा सप्तमेश हो और दूसरे से दृष्ट हो तो विवाह में पर्याप्त विलम्ब होता है अर्थात् शनि मंगल परस्पर दर्शित हों अथवा युक्त हों तथा उनमें से एक ग्रह-लग्न या सप्तम भाव का स्वामी हो।

उदाहरण संख्या—२६ की जन्मकुण्डली में शनि राहु चतुर्थ भावगत हैं तथा मंगल केतु दशम भावगत हैं, परस्पर एक दूसरे से दृष्टि संवन्ध है, इसलिए विवाह में लगातार अवरोध उत्पन्न हो रहा है।

यहाँ शनि सप्तम भाव का स्वामी है।

उदाहरण संख्या—३१ की जन्मकुण्डली में शनि और मंगल सप्तम भाव को सामूहिक रूप से देख रहे हैं तथा दोनों क्रमशः अष्टमेश और षष्ठेश हैं जिस कारण जातिका ने विवाह नहीं किया।

बृहस्पति और शनि तथा विवाह में विलम्ब

यदि सप्तमेश या शुक्र किसी कन्या की जन्मकुण्डली में वृहस्पति या शनि से सप्तमस्थ हों अथवा युक्त हों तो विवाह में विलम्ब होता है। इसका कारण यह है कि शनि और वृहस्पति दोनों ही मन्द गति से भ्रमण करने वाले ग्रह हैं। शनि से युति या सप्तमस्थ होने की स्थिति में अधिक विलम्ब होता है। वृहस्पति से युति अथवा सप्तमस्थ होने पर विलम्ब की अवधि कम होती है।

यदि लग्न, शुक्र या सप्तमेश से वृहस्पति और शनि दोनों ही संयुक्त रूप से सप्तम भाव में हों तो विवाह में विलम्ब नहीं होता है।

उदाहरण संख्या—१८ की जन्मकुण्डली में सप्तमेश बुध और शनि से युक्त है।

उदाहरण संख्या—१४ की जन्मकुण्डली में बृहस्पति से शुक्र सप्तमस्थ है।

उदाहरण संख्या—१३ की जन्मकुण्डली में शनि और वृहस्पति से सप्तमस्थ शुक्र है।

कुछ अन्य योग

यदि शुक्र, बुध तथा शनि की गृहस्थिति शत्रु अथवा नीच राशि के नवांश में हो तो विवाह और संतति का सुख नहीं उपलब्ध होता तथा जीवन दुःखमय रहता है।

सूर्य स्पष्ट में ४ राशि १३° २०" अर्थात् १३३° २०" जोड़ने पर जो आये उसे धूम कहते हैं। यदि वही सप्तम भाव का स्पष्ट हो तो विवाह में विलम्ब होता है।

यदि उपरोक्त योगों के साथ वृहस्पति शुक्र और मंगल परस्पर केन्द्रगत हों या बृहस्पति मंगल मुखाभिमुख हों तो विवाह में बाधा आती है और वैवाहिक जीवन में भी भयानक क्रान्ति आती है।

उपरिलिखित विवेचना के अपवाद

यदि वृहस्पति और शनि की सप्तम भाव में सहस्थिति हो तथा दोनों में से एक पंचमेश या सप्तमेश हो।

यदि तुला राशिगत वृहस्पति सप्तमस्थ हो।

मीन राशिगत शनि सप्तमस्थ हो।

एक सबल लग्न और वली सप्तम भाव यदि हों अथवा उन पर वली शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो विवाह में विलम्ब कारक स्थितियाँ नहीं उत्पन्न होतीं।

शनि यदि लग्नस्थ हो तथा सूर्य या चन्द्रमा के अतिरिक्त शुक्र पर दृष्टि निक्षेप करता हो तो विवाह में विलम्ब होता है परन्तु यदि सप्तम भाव में स्वगृही शुक्र संस्थित हो तो उपरोक्त नियमों के लागू होने के उपरान्त भी विवाह में विलम्ब नहीं होता।

सुशील सिद्धार्थ जी की जन्मकुण्डली में लग्नगत शनि चन्द्रमा को, सप्तम को तथा सप्तमस्थ शुक्र को देख रहा है। चन्द्रमा शनि की राशि मकर में ही संस्थित है परन्तु जातक का विवाह २१-२-१९८४ को २५ वर्ष में सम्पन्न हुआ। सप्तमेश शुक्र तथा लग्नेश मंगल पर वृहस्पति की दृष्टि भी है इस कारण जातक स्वयं तथा उसकी पत्नी, बृहस्पति के गुण ज्ञान-विज्ञान, प्रतिभा और प्रज्ञा के अक्षुण्ण कोश हैं। पंचमस्थ मंगल और सप्तमस्थ शुक्र की ऐसी स्थिति बलात् ही समगुण वाले की ओर आकर्षित कर देती है। इसलिए जातक का प्रेम विवाह अतिदुष्कर और असाध्य परीक्षाओं के पश्चात् एक अति विदुषी कन्या से हुआ। जातक का इस पुस्तक की संरचना में महत्वपूर्ण योगदान है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि पंचमेश और सप्तमेश में यदि विनिमय परिवर्तन योग हो तो विवाह में विलम्ब होता है। परन्तु कर्क लग्न के लिए ऐसा नहीं होता।

उदाहरण संख्या–२३ की जन्मकुण्डली में पंचमेश मंगल सप्तम भाव में आकर उच्च राशिस्थ हो गया है अतः विवाह उचित आयु में ही सम्पन्न हो गया था।

उदाहरण संख्या–३६ की जन्मकुण्डली में शनि सप्तमेश है और बृहस्पति सप्तम भावस्थ हैं जिनमें से शनि सप्तमेश है और बृहस्पति नवमेश।

शनि यद्यपि चन्द्रमा को तथा लग्न को भी देख रहा है फिर भी बृहस्पति और शनि की युति के कारण विवाह में विलम्ब नहीं हुआ और २२-४-१९८३ को विवाह सम्पन्न हो गया।

विवाह काल निर्धारण

इस पुस्तक का उद्देश्य विशेष रूप से विवाह काल में विलम्बकारी ग्रह स्थितियों एवं योगों का अध्ययन करना है। परन्तु विवाह काल के निर्धारण की कुछ प्रमुख विधियों और उस पर हो रहे शोध कार्य को यहाँ उद्धृत कर देने में कोई हानि नहीं

प्रतीत होती। [इस विषय को मैंने अपनी आगामी पुस्तक में विस्तार पूर्वक विवेचित किया है]।

सर्वप्रथम जन्मांग तथा नवांश चक्र में ग्रहस्थितियों का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करना चाहिए। विवाह के विलम्बकारी योगों की जन्म कुण्डली में क्या स्थिति है ? इसका समुचित विश्लेषण करने के उपरान्त देखना चाहिए कि विवाह में कम विलम्ब होगा अथवा अधिक, अथवा विवाह होगा ही नहीं। यदि विवाह होने की स्थिति है तो उसका दशाकाल निर्धारण करना चाहिए। इसके पश्चात् गोचर के बृहस्पति आदि से वर्ष आदि का निर्णय कर लेना चाहिए। सूक्ष्मकाल निकालने के लिए गोचर के सूर्य एवं शुक्र की स्थिति को भी गम्भीरतापूर्वक देखना चाहिए।

इसके लिए कुछ विधियाँ जो अतिप्रचलित हैं और जो सत्यफलादेश करने में सक्षम हैं, इस प्रकार हैं—

१. लग्नाधिपति और सप्तमाधिपति के राशि, अंश और कलादि को आपस में जोड़कर बारह से भाग देकर जो भी राशि आये उस पर से जब गोचर का बृहस्पति भ्रमण करेगा तब विवाह होगा। अथवा उससे गोचर का बृहस्पति जब सप्तम भाव में भ्रमण करेगा तब विवाह सम्भव होगा।

२. जन्मराशि के स्वामी की राशि अंश कलादि को अष्टमेश के राशि अंश कलादि में जोड़कर १२ से भाग दिया जाय। जो भी शेष आये उस पर से गोचर का बृहस्पति जब भ्रमण करे तब विवाह होगा।

३. सप्तमेश जिस राशि व नवांश में हो उन दोनों के स्वामियों में जो बली हो उसकी दशा, अन्तर दशा में जब गोचर का बृहस्पति सप्तमेश स्थित राशि में भ्रमण करता है, तब विवाह होता है।

४. शुक्र एवं चन्द्रमा में से बली ग्रह की महादशा में जब गोचर के बृहस्पति की ऊपर अंकित स्थिति हो तब विवाह होता है।

५. जब विवाह काल की दशा, अन्तर दशा का निर्णय हो जाये तब देखना चाहिए कि लग्नेश गोचर के अनुसार सप्तमेश की राशि में कब भ्रमण करेगा ? अथवा जब गोचर का शुक्र व सप्तमेश लग्नेश की राशि में अथवा लग्नेश नवांश त्रिकोण में भ्रमण करेंगे तब अथवा सप्तमस्थ ग्रह व सप्तम पर दृष्टि डालने वाले ग्रह की दशा में विवाह होगा।

६. यदि सप्तमेश शुक्र से संयुक्त हो तो सप्तमेश की दशा, अन्तर दशा में विवाह सम्भव होता है। अथवा द्वितीयेश जिस राशि में स्थित हो उसके स्वामी की दशा, अन्तर दशा में विवाह सम्भव होता है। अथवा दशमेश या नवमेश की दशा, अन्तर दशा में विवाह होता है। अथवा सप्तमेश से संयुक्त अथवा सप्तमस्थ ग्रहों की दशा, अन्तर दशा में विवाह होता है।

७. महादशा के ग्रह को लग्न मानकर सप्तमस्थ या ग्रह से सप्तमेश की दशा काल में भी विवाह सम्भव होता है।

८. नवांश चक्र में शुक्र अथवा सप्तमेश जिस राशि में आएँ उस पर से या उससे सप्तम भाव में जब गोचर का वृहस्पति जाता है तब विवाह होता है।

९. जिस ग्रह की अन्तर दशा चल रही हो उसकी संचालित राशि में जब गोचर का सूर्य भ्रमण करता है तब विवाह सम्भव होता है।

विवाह काल निर्धारण में शोध कार्य

शुद्ध विवाह काल के निर्धारण में ज्योतिष के वैज्ञानिकों का नवीनतम तथा महत्त्वपूर्ण शोध संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है।

विवाह काल निर्धारण में गोचर के शनि की भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका है जितनी गोचर के वृहस्पति की। विवाह के ५$\frac{1}{2}$ वर्ष के भीतर गोचर के शनि की दृष्टि लग्न या लग्नेश में से एक पर रही हो तथा सप्तम भाव या सप्तमेश पर से भी एक पर रही हो। इस तरह विवाह गोचर के शनि के किस राशि में भ्रमण करने पर होगा यह ज्ञात हो जायेगा। पुनः गोचर के वृहस्पति की स्थिति देखनी चाहिए जब गोचर का वृहस्पति लग्न या लग्नेश में से एक पर तथा सप्तम अथवा सप्तमेश में से एक पर दृष्टि डालेगा या वहाँ भ्रमण करेगा तब विवाह होगा।

———

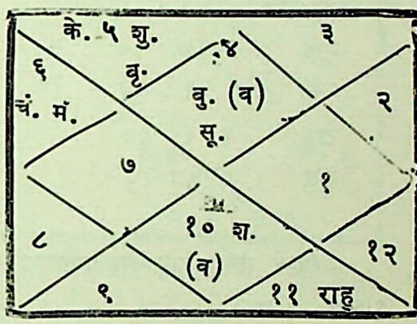
सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रतिफलन : कुछ जन्मांगों के माध्यम से

जन्मांग संख्या १.

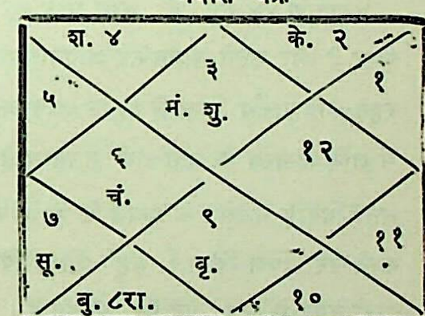
जन्म तिथि - २९-७-१९३३

जन्म समय —४ : ५७ पूर्वाह्न

जन्म स्थान —भोपाल (अक्षांश—२३ : १६ उत्तर, रेखांश—७७ : ३६ पूर्व)



नवांश चक्र



ग्रह स्पष्ट—

लग्न	९० : २७
सूर्य	१०२ : २४
चंद्रमा	१७६ : ५३
मंगल	१६९ : ३२
बुध (व)	१०४ : ५५
बृहस्पति	१४८ : २७
शुक्र	१२८ : २३
शनि (व)	२९० : ४१
राहु	३०६ : ३८
केतु	१२६ : ३८

जन्म के समय मंगल की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—५ व० १ मा० १८ दि० ।

यह ५२ वर्षीया लेडी डाक्टर की जन्मकुण्डली है जिन्होंने अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही सदा कुमारी रहते हुए देश सेवा करने का संकल्प किया था आज भी मरीजों की सेवा में वह रत है ।

शनि सप्तमेश होकर सप्तमस्थ है और लग्नस्थ सूर्य को देखता है । यह योग अपने आप में ही विवाह न होने देने के लिए पर्याप्त है । इसके अतिरिक्त द्वितीय भाव तथा शुक्र शत्रुक्षेत्री होता हुआ पापकर्तरि योग ग्रस्त है तथा राहु द्वारा दृष्ट है । इस कारण जातिका का विवाह नहीं हुआ ।

जन्मांग संख्या २.

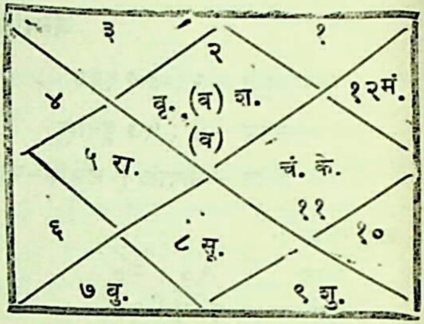
जन्म तिथि—२५-११-१९४१

जन्म समय—१८ : २५

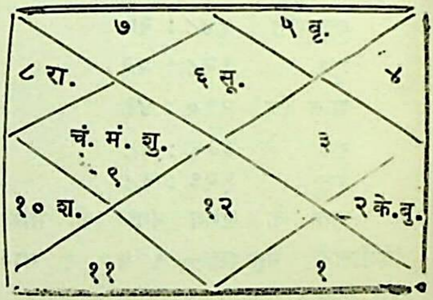
जन्म स्थान—इलाहाबाद (अक्षांश–२५ : २८ उत्तर, रेखांश–८१ : ५४ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	५८ : ११
सूर्य	२१९ : ४९
चंद्रमा	३०७ : १९
मंगल	३४९ : २९
बुध	२०५ : २६
बृहस्पति (व)	५५ : ५
शुक्र	२६७ : ०
शनि (व)	३१ : २३
राहु	१४५ : ३७
केतु	३२५ : ३७



नवांश चक्र



जन्म के समय राहु की भोग्यदशा — १७ व० १ मा० १२ दि०

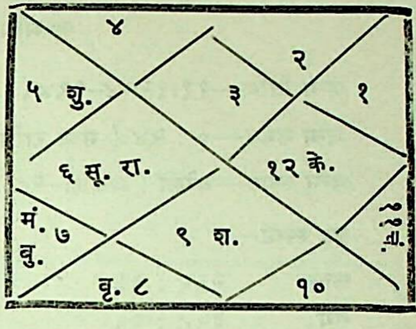
जातक ४४ वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है और उसने जीवन भर अविवाहित रहने का निर्णय किया है। इस जन्मपत्र में शनि लग्नस्थ है तथा सूर्य सप्तमस्थ है अतः विवाह न होने के सन्दर्भ में पर्याप्त बाधक योग है, जिसने जातक को विवाह न करने पर विवश किया। यह जातक पिछले १५ वर्षों से अमेरिका में मेटलर्जिकल इन्जीनियर के उच्च पद पर कार्यरत है।

जन्मांग संख्या ३.

जन्म तिथि—१२–१०–१९५९

जन्म समय—९ : ५४ रात्रि

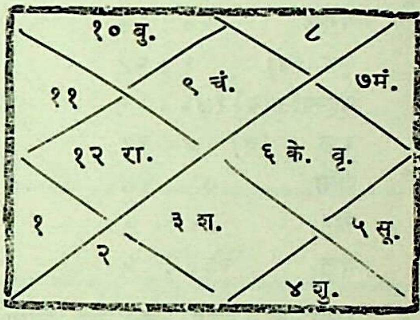
जन्म स्थान—सीतापुर (अक्षांश–२७ : ३२ उत्तर, रेखांश–८० : ४३ पूर्व)



ग्रह स्पष्ट —

लग्न	६६ : ५८
सूर्य	१७५ : १८
चंद्रमा	३०९ : ३
मंगल	१८० : ५१
बुध	१९२ : १
वृहस्पति	२१८ : २
शुक्र	१३३ : १९
शनि	२४८ : १९
राहु	१५९ : ४१
केतु	३३९ : ४१

नवांश चक्र



जन्म के समय राहु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१४ व० ९ मा० १५ दि०

जातिका की जन्मकुण्डली में शनि सप्तमस्थ है एवं चन्द्रमा और सूर्य दोनो को देख रहा है तथा शनि की दृष्टि लग्न पर भी है जिस कारण शनि विवाह में प्रतिबन्धक योग की स्थापना कर रहा है। उल्लेखनीय है कि शनि षडवल में बहुत ही वली है उसे ९.२८ रूपवल प्राप्त है जबकि ५.०० रूपवल पर ही शनि पर्याप्त वली होता है। सप्तमाधिपति वृहस्पति भी पापकर्तरि योग ग्रस्त है। क्योंकि वृहस्पति से बारहवें मंगल और दूसरे शनि है।

नवांश कुण्डली में भी शनि मिथुन राशिगत होकर सप्तम भाव में स्थित है तथा सूर्य और चन्द्रमा दोनों को ही पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। नवांश में शुक्र भी शत्रु राशि कर्क में स्थित है तथा सूर्य और शनि दोनों ही ग्रहों द्वारा पाकर्तरि योग ग्रस्त है। ऐसी स्थिति में जातिका के विवाह में प्रतिबन्धक योग है और बिना उचित उपाय या मंत्र जप के विवाह होना असंभव है। राशि और नवांश चक्र दोनों में ही शनि द्विस्वभाव राशि में स्थित है अतः विवाह किसी ऐसे पुरुष के साथ होगा, जिसकी यह जातिका दूसरी पत्नी हो।

(यहां उल्लेखनीय है कि अवरोधकारक शनि वलहीन होने की स्थिति में साधारण विलम्ब होता।)

जन्मांग संख्या ४.

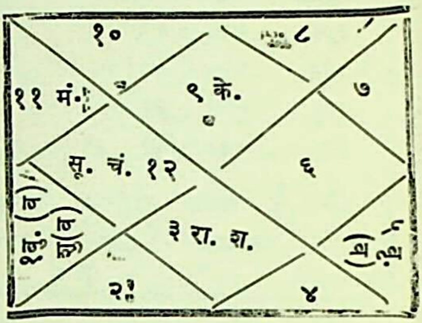
जन्म तिथि—११।१२-४-१९४५

जन्म समय—० : ५४ (मध्य रात्रि)

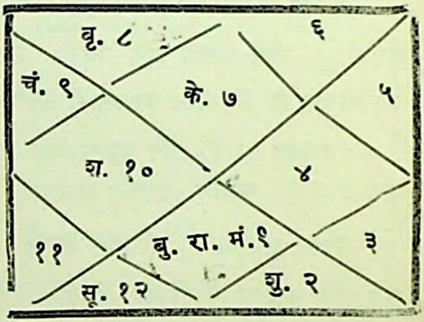
जन्म स्थान—वरेली (अक्षांश-२८ : २२ उत्तर, रेखांश-७९ : २७ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२६२ : ३३
सूर्य	३५८ : २६
चन्द्रमा	३४८ : १२
मंगल	३२० : ३७
वुध (व)	१ : २८
वृहस्पति (व)	१४६ : १
शुक्र (व)	४ : ३८
शनि	७१ : ५७
राहु	८० : ५
केतु	२६० : ५



नवांश चक्र



जन्म के समय वुध की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१५ व० ० मा० १२ दिन

इस जातिका की जन्मकुण्डली में शनि और राहु की सहसप्तमभावस्थिति है, शनि की लग्न, सूर्य व चन्द्रमा पर दृष्टि है, इसलिए जातिका के विवाह में वहुत अवरोध थे परन्तु वृहस्पति की भी सप्तमेश वुध लग्न एवं कारक ग्रह शुक्र पर दृष्टि है जिस कारण अवरोध के उपरान्त भी विवाह का योग है।

शनि और राहु की सप्तम भाव में सहस्थिति सर्वाधिक दोषपूर्ण है अतः इस जातिका को शनि का मन्त्र और सोमवार का व्रत तथा उत्तम विवाह के लिये कुछ वैदिक मन्त्र वताये गये जिनको लगभग ८ मास करने के पश्चात् जातिका का विवाह ३१ वर्ष की अवस्था में सम्पन्न हुआ।

जन्मांग संख्या ५.

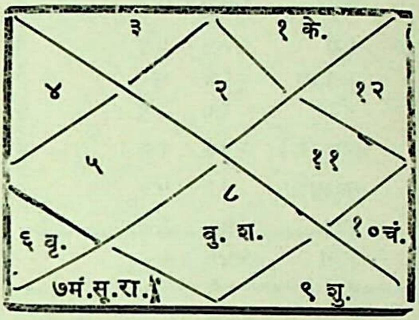
जन्म तिथि—१५-११-१९५७

जन्म समय—१८ : १० घण्टा (सायंकाल)

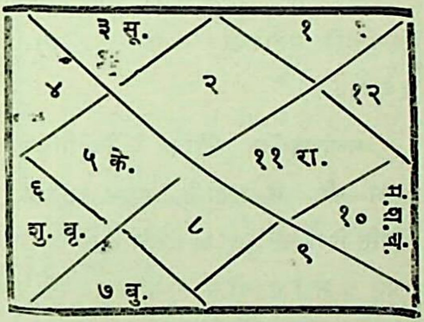
जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश—२६ : ५५ उत्तर, रेखांश —८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	४५ : ३०
सूर्य	२०९ : ३६
चंद्रमा	२७० : ९
मंगल	१९१ : १०
बुध	२२२ : २७
वृहस्पति	१७७ : २९
शुक्र	२५६ : ४४
शनि	२३० : ४४
राहु	१९६ : ३४
केतु	१६ : ३४



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—४ व. ५ मा. ४ दि.

जातिका की अवस्था २८ वर्ष है परन्तु विवाह संपन्न न होने के कारण अत्यन्त उद्विग्न जातिका जूनियर इन्जीनियर के पद पर कार्यरत है तथा यू० पी० टैकिनकल बोर्ड में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है।

इस अवरोध का कारण है शनि का सप्तम भाव में संस्थित होना तथा चन्द्रमा व लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखना। सप्तमाधिपति मंगल छठे स्थान में है।

जातिका को विवाहार्थ एक मन्त्र का सविधि जप साथ ही शनि व मंगल का वैदिक मन्त्रों का जप करने का परामर्श दिया। जातिका का विवाह शीघ्र निश्चित हुआ और नवम्बर १९८५ में संपन्न हुआ।

जन्मांग संख्या ६.

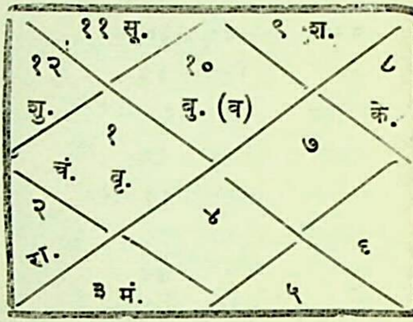
जन्म-तिथि—१६–२–१९२९

जन्म समय—५ : १० पूर्वाह्न

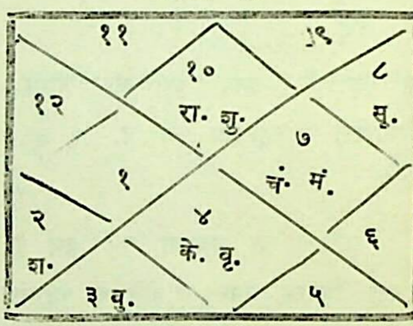
जन्म स्थान—बरेली (अक्षांश—२८ : २२ उत्तर, रेखांश—७९ : २७ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	२७२ : ५[illegible]
सूर्य	३०३ : ५३
चन्द्रमा	२० : ४[illegible]
मंगल	६० : १९
बुध (व)	२८७ : २२
बृहस्पति	११ : ५३
शुक्र	३५० : २४
शनि	२४५ : २७
राहु	३२ : ५५
केतु	२१२ : ५५



नवांश चक्र



जन्म के समय शुक्र की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—८ व० ११ मा० १६ दि०

मध्यमवर्गीय परिवार के सेवानिवृत्त पिता की इस पुत्री ने विषम आर्थिक स्थिति से जूझते हुए अध्यापन कार्य द्वारा अपने ५ भाई बहनों को सुशिक्षित करके उन्हें उनकी सुखद गृहस्थी सौंपी। इस क्रम में वह स्वयं निपट अकेली रह गई।

जातिका की जन्मकुण्डली में शुक्र के दोनों पार्श्व सूर्य एवं चन्द्रमा से आक्रान्त हैं। लग्न से द्वितीय व द्वादश भाव में क्रमशः सूर्य व शनि की स्थिति से पापकर्तरि योग स्थापित है। लग्न पापग्रस्त और बलविहीन है क्योंकि लग्नेश शनि द्वादशस्थ, षष्ठेश बुध लग्नस्थ तथा लग्नेश शनि व लग्न पर मंगल की दृष्टि है, सूर्य शनि की राशि में स्थित एवं उससे दृष्ट है। लग्न सूर्य और शनि के मध्य में होने के कारण पापकर्तरि योग ग्रस्त है। यह एक विवाह प्रतिबन्धक योग है।

शनि एवं मंगल में परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है, इस ग्रहस्थिति में वैवाहिक सुख की आशा निर्मूल है।

जन्मांग संख्या ७.

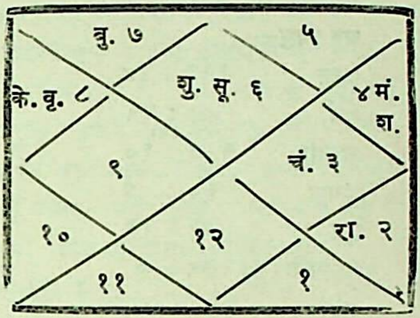
जन्म तिथि—७–१०–१९४७

जन्म समय—६ : ३० पूर्वाह्न

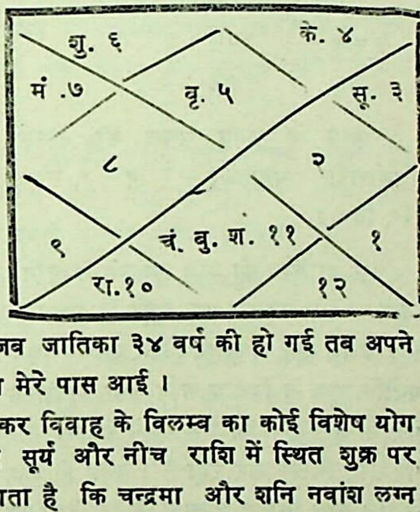
जन्म स्थान—बरेली (अक्षांश —२८ : २२ उत्तर, रेखांश—७९ : २७ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट–

लग्न	१७३ : ५२
सूर्य	१६९ : ४७
चंद्रमा	७४ : ३६
मंगल	१०० : १७
बुध	१९३ : ४९
बृहस्पति	२१३ : २९
शुक्र	१७८ : ४४
शनि	११६ : ३८
राहु	३२ : १५
केतु	२१२ : १५



नवांश चक्र



जन्म के समय राहु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा —७ व० ३ मा० १३ दि०

जातिका अत्यन्त अभिराम सौंदर्य की स्वामिनी है अपने दाँतों के सौन्दर्य के लिए भारत में सर्वप्रथम पुरस्कार पा चुकी है। कला में अति निपुण है परन्तु जब जातिका ३४ वर्ष की हो गई तब अपने विवाह में असाधारण विलम्ब होने के कारण मेरे पास आई।

मुख्य रूप से केवल जन्मांग चक्र देखकर विवाह के विलम्ब का कोई विशेष योग नहीं प्रतीत होता है तथापि शनि की दृष्टि सूर्य और नीच राशि में स्थित शुक्र पर है। परन्तु नवांश चक्र देखने से स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमा और शनि नवांश लग्न से सप्तमस्थ हैं और लग्नेश बुध भी शनि की राशि कुम्भ से संयुक्त होकर स्थित है। सप्तमाधिपति बृहस्पति भी अनुराधा नक्षत्र में स्थित है। अतः जातिका के विवाह में पर्याप्त विलम्ब अपेक्षित है। मैंने जातिका को कुछ मन्त्र प्रयोग निर्दिष्ट किये दीपावली से श्रीसूक्त का पाठ करने का परामर्श दिया और सोमवार का व्रत करने को कहा। जातिका ने सभी कुछ बड़ी संलग्नता के साथ किया। फलस्वरूप ६ मास के भीतर जातिका का विवाह एक वायु सेना के अधिकारी के साथ सुनिश्चित हो गया तथा ८–१२–१९८२ को सम्पन्न हुआ।

जन्मांग संख्या ८.

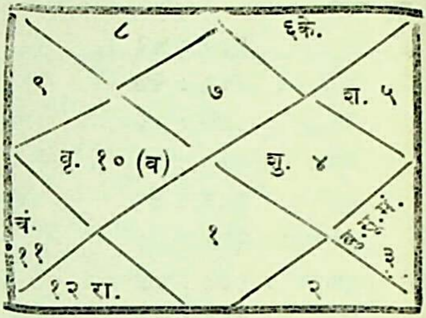
जन्म तिथि—१३–७–१९४९

जन्म समय—१३ : २७ अपराह्न

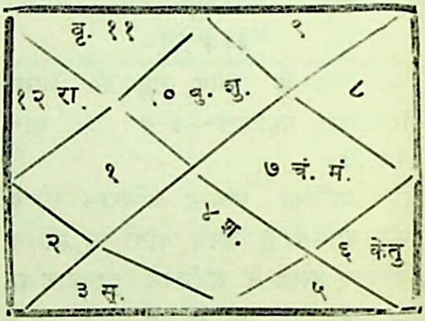
जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५५ उत्तर, रेखांश–८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	१९३ : १८
सूर्य	८७ : २५
चंद्रमा	३०३ : १०
मंगल	६० : ६
बुध	७२ : ३२
बृहस्पति (व)	२७५ : ०
शुक्र	११० : ४०
शनि	१३० : २१
राहु	३५८ : ३
केतु	१७८ : ३



नवांश चक्र



जन्म के समय मंगल की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१ व० ९ मा० २९ दि० ।

इस जातिका की जन्म कुण्डली में शनि और चन्द्रमा परस्पर एक दूसरे के दृष्टिगत हैं। लग्नेश शुक्र शत्रुक्षेत्री होकर दशम भाव में स्थित है । एवं प्रबल पापकर्तरि योगग्रस्त है क्योंकि शुक्र से द्वितीय शनि तथा द्वादशस्थ सूर्य एवं मंगल हैं । शनि की दृष्टि लग्न पर भी है । नवमांश चक्र देखने से स्पष्ट होता है कि शनि सप्तमस्थ है तथा लग्नेश शुक्र पर दृष्टि निक्षेप कर रहा है । साथ ही शुक्र पर मंगल की भी कुदृष्टि है । इन कारणों से यह स्पष्ट विदित होता है कि जातिका का विवाह पर्याप्त विलम्ब से होगा । शनि यदि पापाक्रांत अथवा शत्रुक्षेत्री होकर सप्तम भाव पर दृष्टि डाले तो विवाह ३१वें, ३२वें अथवा ३५वें वर्ष में होता है ।

इनके विषय में एक रुचिकर प्रसंग है । जबकि जातिका की आयु २८ वर्ष थी तब जातिका की माँ मेरे पास आयी थी और जातिका का विवाह कब होगा ? यह जानने की उत्सुकता प्रकट की । जन्मांग के निरीक्षणोपरान्त मैंने निष्कर्ष निकाला कि शुक्र लग्नेश होकर शत्रु राशिगत है । कर्क में १३° पर स्थित होने के कारण पुष्य नक्षत्र में

स्थित है जिसका स्वामी भी शनि है और शुक्र सूर्य और शनि के मध्य में पापकर्तरि योग ग्रस्त है।

बृहस्पति की शुक्र पर दृष्टि है। शनि लग्न एवं चंद्रमा को पूर्ण दृष्टि से देख भी रहा है। ऐसी स्थिति में पर्याप्त विलम्ब होना निश्चित है। मैंने जातिका की माँ को परामर्श दिया कि कुछ मन्त्रोपचार अवश्य होना चाहिए अन्यथा विवाह ३७ वर्ष में ही सम्पन्न होगा। वह सहर्ष तैयार थीं परन्तु उनकी पुत्री कान्वेंट शिक्षिता एक आधुनिक कन्या थी। उसने किसी भी प्रकार की पूजा या मन्त्रादि के लिए मना ही नहीं किया बल्कि मेरा निरादर भी किया। मैंने उन्हें कुछ बताना चाहा तो वह सुनने को तैयार नहीं हुई और बोली कि न जाने कितने आई० ए० एस०, डॉक्टर, इन्जीनियर मुझसे शादी करने के लिए उत्सुक हैं, मैंने ही उन्हें पसन्द नहीं किया। यह बात एक स्तर पर सत्य भी थी क्योंकि मेरी जानकारी में दो आइ०ए०एस० अधिकारियों के साथ ऐसा हो चुका था क्योंकि वह बहुत रूपवान् नहीं थे।

शनैः-शनैः जातिका की आयु ३३ वर्ष हो गई किन्तु विवाह में कोई न कोई अवरोध उत्पन्न होता रहा। इस अत्यन्त रूपवती, उच्चकुलीन कन्या को उसके मनोनुकूल वर न प्राप्त हो सका। स्थिति यह आ गई कि विवाह के प्रस्ताव आने प्रायः बन्द हो गये।

जातिका को उस समय मेरी बात याद आई और उसने बहुत प्रयास के बाद मुझसे सम्पर्क स्थापित किया। वह अपने पूर्वाचरण पर बहुत दुःखी थी। पश्चात्ताप के आँसुओं से उसकी आँखें भर आई पर एक लम्बी अवधि व्यतीत हो चुकी थी।

मैंने उन्हें सौन्दर्य लहरी के पहले श्लोक से लेकर २१वें श्लोकतक नित्य पाठ, शनि का व्रत और शनि, चंद्र और मंगल के वैदिक मन्त्रों का जप तथा सफेद पोखराज पहनने का परामर्श दिया। इसके अतिरिक्त "अम्बे अम्बिके अम्बालिके" मन्त्र से सम्पुटित दुर्गासप्तशती के १८ पाठ किसी योग्य ब्राह्मण द्वारा करा लेने का परामर्श दिया। इसके अतिरिक्त बाधायें अधिक होने के कारण मंत्रोपचार भी कुछ अधिक आवश्यक था।

जातिका ने निष्ठासहित समस्त अनुष्ठान किया और अपरिपक्व सभ्यता की त्रिशंकु छाया में पालित-पोषित-शिक्षित यह कन्या माँ गौरी की अनन्य भक्त हो गई। लगभग एक वर्ष तक सौन्दर्यलहरी का पाठ करने के उपरान्त जातिका का विवाह एक मनोनुकूल सुन्दर और उससे कम आयु वाले एक शिपिंग कम्पनी के मालिक के पुत्र से २५-२-१९८२ को अत्यन्त वैभवपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। जातिका अपने वैवाहिक जीवन से अत्यन्त सन्तुष्ट और आमोदित है तथा एक लड़की की माँ बन चुकी है। उल्लेखनीय है कि जातिका का विवाह ३३वें वर्ष में सम्पन्न हुआ।

जन्मांग संख्या ९.

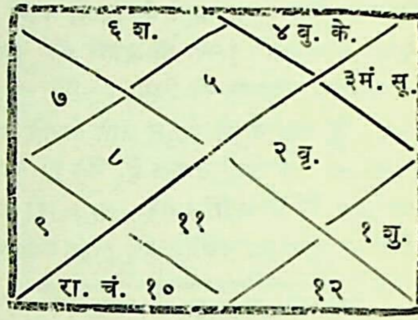
जन्म-तिथि—२९–६–१९५३

जन्म समय —१०: ० पूर्वाह्न

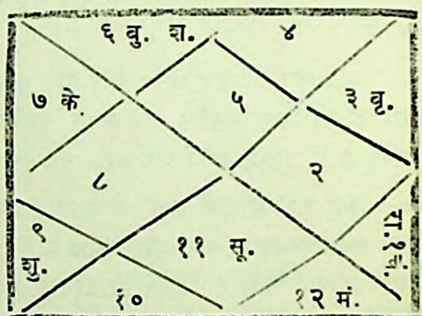
जन्म स्थान— लखनऊ (अक्षांश—२६ : ५५ उत्तर, रेखांश—८० : ५९पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	१३४ : ५६
सूर्य	७३ : ५५
चंद्रमा	२८० : ४४
मंगल	७६ : ४६
वुध	९९ : २०
वृहस्पति	४८ : ३०
शुक्र	२८ : २३
शनि	१७७ : २१
राहु	२८१ : २२
केतु	१०१ : २२



नवांश चक्र



जन्म के समय चन्द्रमा की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—९ व० ५मा० ८ दि० ।

जातिका एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी की पुत्री है जिसके पिता की कम आयु में ही संदेहास्पद स्थिति में मृत्यु हो गई । विवश होकर जातिका को सीतापुर के एक स्कूल में अतिसामान्य नौकरी करनी पड़ी ।

इस जन्मांग में शनि और मंगल एक दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं साथ ही शनि की पूर्ण दृष्टि लग्नेश सूर्य पर भी है । चन्द्रमा भी शनि की राशि में स्थित है । अतः शनि की दुष्ट ग्रह स्थिति के कारण जातिका के विवाह में अनेक वाधायें उपस्थित हैं ।

उसी समय मुझसे सम्पर्क किया । मैंने कनकधारा स्तोत्र का पाठ एवं निम्नलिखित मन्त्र का ७ दिनों तक १०८ वार जप वताया ।

"सिन्धूरपत्रं रतिकामदेहं
दिव्यांवरं सिन्धुसमीहितांगम् ।

सांध्यारुणं धनुः पंकजपुष्पबाणं
पंचायुधं मोहन-मोक्षणार्थम् ॥

पर्लें मन्मथाय । महाविष्णुस्वरूपाय ।
महाविष्णुपुत्राय । महापुरुषाय ।
पतिसंगं मे शीघ्रं देहि देहि ॥

साथ ही शनि एवं चन्द्रमा का वैदिक मंत्र से जप करने को भी कहा तथा एक उत्कृष्ट माणिक पहनने की सलाह दी ।

जातिका का विवाह ३ मास की साधना के पश्चात् ही एक उच्च अधिकारी से ३१वें वर्ष की आयु में सम्पन्न हो गया ।

जन्मांग संख्या १०.

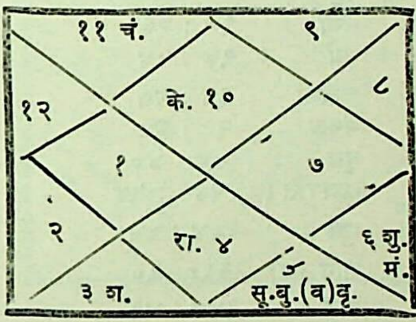
जन्म तिथि—२-९-१९४४

जन्म समय—५ : २० पूर्वाह्न

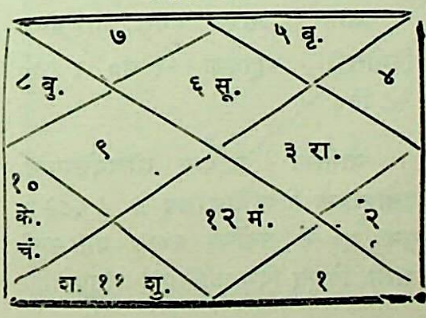
जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५२ उत्तर, रेखाँश–८० : ५८ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२९६ : ४४
सूर्य	१३६ : ४७
चंद्रमा	३११ : ४३
मंगल	१५९ : ४९
बुध (व)	१४५ : १७
बृहस्पति	१३५ : ७
शुक्र	१५५ : १३
शनि	७५ : २९
राहु	९२ : ६
केतु	२७२ : ६



नवांश चक्र



जन्म के समय राहु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—११ व० २ मा० ४ दि० ।

जातक जियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया में एक उच्चाधिकारी के पद पर कार्यरत है । २४वें वर्ष में जातक का

विवाह हुआ। किन्तु इसका स्थायित्व मात्र दो मास रहा। तत्पश्चात विघटन हो गया। अब जातक एक अविवाहित व्यक्ति के सदृश जीवन व्यतीत कर रहा है।

इस जन्मकुण्डली में शनि सूर्य को देख रहा है। चन्द्रमा स्वयं शनि की राशि और नवांश में संस्थित है। सप्तम भाव से द्वितीयस्थ सूर्य और द्वादशस्थ शनि है अतः सप्तम भाव पापकर्तरि योग ग्रस्त है। वक्री बुध सप्तमेश चन्द्रमा तथा द्वितीय भाव पर दृष्टि निक्षेप कर रहा है।

वैवाहिक सुख का कारक ग्रह शुक्र नीच राशि में स्थित है तथा मंगल से युक्त होने के कारण पापाक्रांत है। नवांश में शुक्र शनि से संयुक्त होने के कारण विवाह में विलम्ब का कारक है परन्तु समग्र परिणयात्मक आमोद-प्रमोद का कोई योग आभासित नहीं होता।

जन्मांग संख्या ११.

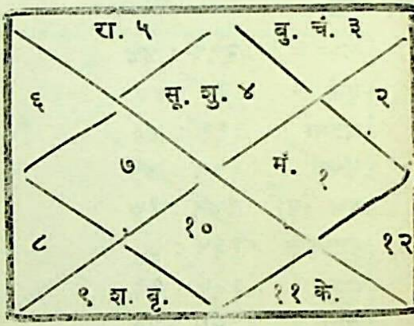
जन्म तिथि—२१–७–१९६०

जन्म समय—५ : ७ पूर्वाह्न

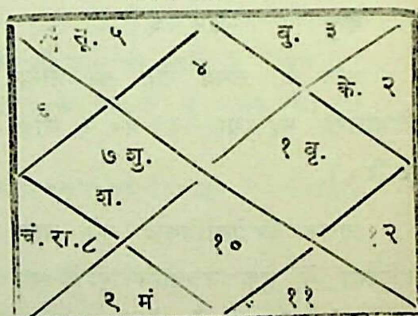
जन्म स्थान—इलाहाबाद (अक्षांश–२५ : २७ उत्तर, रेखांश–८१ : ५३ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	९० : २६
सूर्य	९४ : ५४
चन्द्रमा	६४ : २७
मंगल	२८ : २७
बुध	८८ : ४०
बृहस्पति (व)	२४१ : ५४
शुक्र	१०४ : ४४
शनि (व)	२६० : ५०
राहु	१४४ : ४३
केतु	३२४ : ४३



नवांश चक्र



जन्म के समय मंगल की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१ व० १ मा० २८ दि०

जातिका अत्यन्त सौन्दर्यसम्पन्न, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से १९८३ में एम० ए० में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने वाली, विद्युत विभाग के एक अतिप्रतिष्ठित

मुख्य अभियन्ता एवं जनरल मैनेजर की पुत्री है। सात्विक विचारों और संस्कृत वातावरण में पली बड़ी हुई परन्तु विवाह में विलम्ब के कारण एकाकी हो गई है। लग्नेश चन्द्र और सप्तमेश शनि का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध अवरोध उत्पन्न कर रहा है।

सप्तमेश शनि भाग्येश बृहस्पति से युक्त होकर षष्ठ भावगत है तथा लग्नेश चन्द्रमा को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। शुक्र भी लग्न में शत्रु राशिगत है और अधिशत्रु सूर्य से युक्त तथा शत्रुओं—चन्द्रमा राहु—से घिरा है इसलिये लग्न तथा सप्तम भाव दोनों ही पापकर्तरि योग ग्रस्त हैं। शुक्र पर मंगल की भी दृष्टि है अतः शुक्र बहुत निर्बल हो गया है जिसके कारण विवाह में विलम्ब हो रहा है।

जन्मांग संख्या १२.

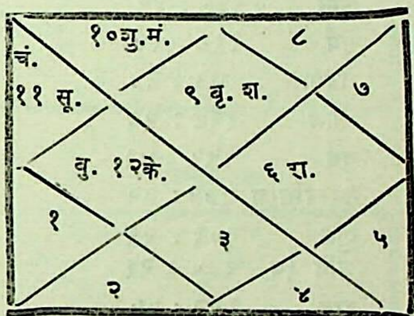
जन्म तिथि—२७-२-१९६०

जन्म समय—२ : ५४ पूर्वाह्न

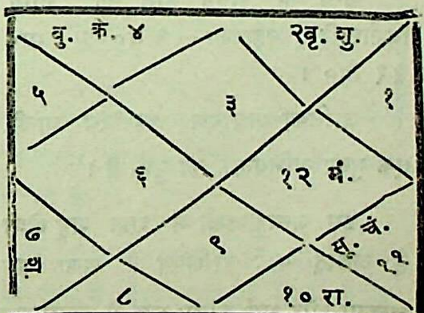
जन्म स्थान—बुलन्दशहर (अक्षांश—२८ : २४ उत्तर, रेखांश-७७ : ५४ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	२४७ : ३२
सूर्य	३१३ : ५९
चंद्रमा	३१५ : ३६
मंगल	२१९ : ३२
बुध	३३१ : २३
बृहस्पति	२४६ : ११
शुक्र	२८४ : १८
शनि	२६२ : १७
राहु	१५२ : १८
केतु	३३२ : १८



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—५ व. ११ मा. ६ दि.

जातिका २६ वें वर्ष में चल रही है पर अभी विवाह की कोई सम्भावना नहीं है। निकट भविष्य में होने की आशा भी नहीं है।

शनि लग्नगत है तथा सप्तम भाव, सूर्य और चन्द्र को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। शुक्र ग्रह भी शनि की राशि मकर में द्वितीय भाव में स्थित है और पापी ग्रह मंगल से युक्त है तथा द्वितीय भाव एवं शुक्र दोनों ही सूर्य और शनि के मध्य में होने के कारण पापकर्तरि योगग्रस्त हैं। अतः जातिका के विवाह में पर्याप्त विलम्ब होगा। ऐसी स्थिति में मंत्रोपचार के साथ-साथ ग्रह दोष शान्ति भी अपेक्षित है, विशेषकर शनि के निमित्त।

जन्मांग संख्या १३.

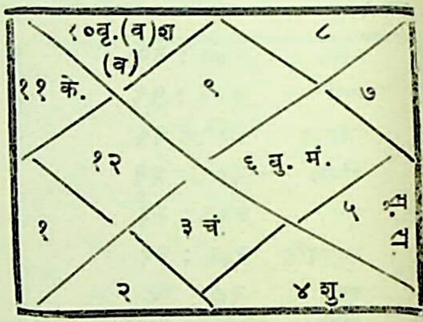
जन्म तिथि--४-९-१९६१

जन्म समय—१३ : ४७ अपराह्न

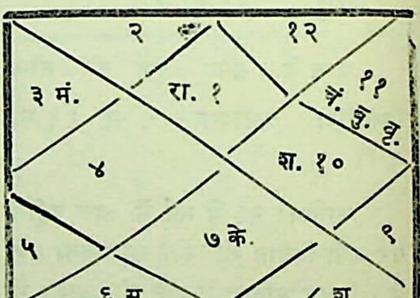
जन्म स्थान– लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५५ उत्तर, रेखांश–८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२४२ : ४५
सूर्य	१३८ : १४
चंद्रमा	७५ : २४
मंगल	१६८ : २६
बुध	१५५ : ४३
वृहस्पति(व)	२७४ : ३५
शुक्र	१०३ : २९
शनि (व)	२७० : २१
राहु	१२२ : ५५
केतु	३०२ : ५५



नवांश चक्र



जन्म के समय राहु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—६ व० २ मा० ११ दि०।

जातिका साधारण रूप रंग वाली, एक मुख्य अभियन्ता की पुत्री है।

इस जन्मकुण्डली में शुक्र शत्रु क्षेत्री है अर्थात् कर्क राशिगत है तथा शत्रु चन्द्रमा और सूर्य क्रमशः शुक्र से द्वादशस्थ व द्वितीयस्थ हैं। जिस कारण वैवाहिक सुख में

प्रवल बाधा है। वक्री शनि और वक्री बृहस्पति द्वितीयस्थ होकर शुक्र पर दृष्टि निक्षेप कर रहे हैं। विवाह में प्रवल अवरोध है।

जन्मांग संख्या १४.

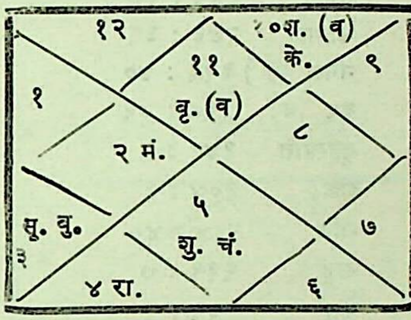
जन्म तिथि—७–७–१९६२

जन्म समय—२२ : ० अपराह्न

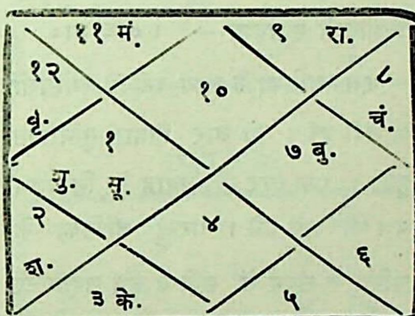
जन्म स्थान—मैनपुरी (अक्षांश–२७ : १४ उत्तर, रेखांश–७९ : ३ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	३११ : ३१
सूर्य	८१ : ४४
चन्द्रमा	१४६ : ३८
मंगल	३५ : ३७
बुध	६१ : २०
बृहस्पति (व)	३१९ : १८
शुक्र	१२० : ३७
शनि (व)	२८६ : २६
राहु	१०६ : ४२
केतु	२८६ : ४२



नवांश चक्र



जन्म के समय शुक्र की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—० व० ० मा० १६ दिन।

इस जन्मांग में चन्द्रमा और शुक्र सप्तम भाव में संस्थित हैं साथ ही सप्तमेश सूर्य पंचमेश से युक्त होकर पंचमस्थ है। यह दोनों ही स्थितियाँ अवरोधक हैं।

जातिका उच्च परिवार से सम्वद्ध अत्यन्त रूपवती गौरवर्ण और एम० ए० तक सदैव अपनी कक्षामें सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती रही है।

इस जन्मकुण्डली में बृहस्पति, मंगल और शुक्र की परस्पर केन्द्रगत स्थिति निश्चय ही अशुभ है जो विवाह में विलम्ब और बाद में विघटनकारी स्थितियों की द्योतक है।

जन्मांग संख्या १५.

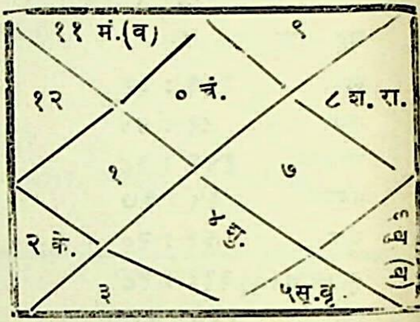
जन्म तिथि—१५-९-१९५६

जन्म समय—१५ : ४७ अपराह्न

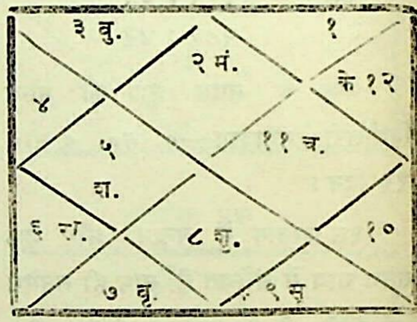
जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५५ उत्तर, रेखाँश–८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२८४ : ८
सूर्य	१४९ : १७
चंद्रमा	२७६ : ३९
मंगल (व)	३२३ : ४०
बुध (व)	१६८ : ४२
वृहस्पति	१४१ : ९
शुक्र	१०४ : १
शनि	२१४ : ४०
राहु	२१९ : ७
केतु	३९ : ९



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—[illegible] व० ६ मा०

इस जातिका के साथ बड़ी ही मर्मस्पर्शी त्रासदी हुई। दो वार विवाह सुनिश्चित हुआ। एक वार तो विवाह के निमन्त्रण पत्र भी छप गये। परन्तु जातिका के चरित्र के संदर्भ में संदिग्ध सूत्र उद्घाटित होने के कारण विवाह संभव न हो सका। जातिका को आभास हुआ कि अव तो जीवन भर अविवाहित रहना पड़ेगा। भग्नहृदय से जातिका मेरे पास आई। मैंने उसे पति वशीकरण मंत्र का पाठ करने की सलाह दी।

जातिका के जन्मांग में चन्द्रमा लग्नगत होकर सप्तमस्थ शुक्र से परस्पर दृष्ट है। चन्द्रमा शनि की राशि में संस्थित है सप्तम भावेश चन्द्र पर सूर्य एवं शनि की दृष्टि है। जातिका के विवाह में निश्चित रूप से प्रवल वाधा है।

जातिका को मैंने श्रद्धा और विश्वास पूर्वक माँ गौरी का पूजन करके सौन्दर्य लहरी के श्लोक संख्या १ से ४८ तक का एक पाठ करने को कहा। इसके अतिरिक्त प्रत्येक शुक्रवार का विधिपूर्वक व्रत और साढ़े नौ रत्ती का मोती धारण करने को बताया। शनि के वैदिक मन्त्र के साथ पार्वती स्वयंवर मन्त्र की एक माला प्रतिदिन जप करने का परामर्श किया। ५ मास की साधना के पश्चात् ही जातिका का विवाह एक चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट से सम्पन्न हुआ और वह सुखी जीवन व्यतीत कर रही है। मैंने परामर्श दिया कि विवाहोपरान्त भी शुक्रवार का व्रत और गौरीपूजन अपेक्षित है ताकि दाम्पत्य जीवन सर्वथा-सर्वदा सहज और आनन्दित रहे।

जन्मांग संख्या १६.

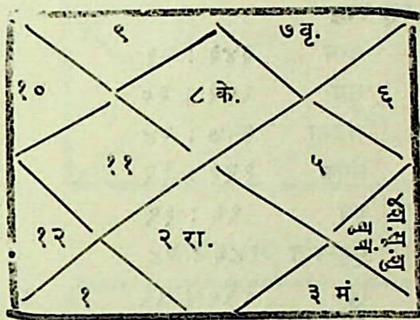
जन्म तिथि—१५–८–१९४७

जन्म समय—१३ : २३ अपराह्न

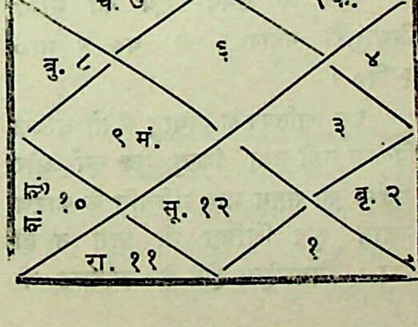
जन्म स्थान—मथुरा (अक्षांश—२७ : २८ उत्तर, रेखांश—७७ : ४१ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२१६ : ५१
सूर्य	११८ : ३१
चंद्रमा	१०२ : २४
मंगल	६७ : ४८
बुध	१०४ : ४१
बृहस्पति	२०५ : ५४
शुक्र	११३ : १४
शनि	११० : ३२
राहु	३४ : ५८
केतु	२१४ : ५८



नवांश चक्र



जन्म के समय शनि की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—६ व० ० मा० २६ दि०

यह जातिका ३९वें वर्ष में चल रही है परन्तु इसका विवाह अभी तक नहीं हुआ।

इस जन्मांग को देखकर स्थूल रूप से कोई ऐसा योग नहीं प्रतीत होता जिससे विवाह में विलम्ब होना पता चलता हो परन्तु सावधानीपूर्वक विचार करने से सप्तमेश शुक्र तथा भाग्येश चन्द्रमा शनि संयुक्त है चन्द्रमा कर्क राशि के १२°वें २४° पर होने के कारण शनि के नक्षत्र पुष्य में है। सूर्य शनि से युक्त एवं नवांश चन्द्रमा सप्तमभावस्थ और शनि-सन्दर्भित है। लग्नेश मंगल शत्रु क्षेत्री होकर अष्टमस्थ और राहु-शनि से आवृत्त होकर पापकर्तरि योग ग्रस्त है। नवांश चक्र में शुक्र संयुक्त शनि सप्तमस्थ सूर्य व द्वितीय भावस्थ चन्द्र पर दृष्टि डाल रहा है। यह दोनों भाव विवाह से सम्वद्ध हैं, अतएव ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जातिका जीवनभर अविवाहित रहेगी।

जन्मांग संख्या १७.

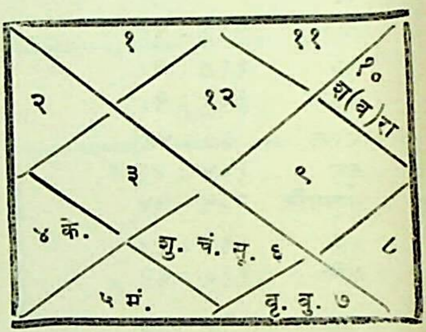
जन्म तिथि—८-१०-१९३४

जन्म समय—१७ : ३० अपराह्न

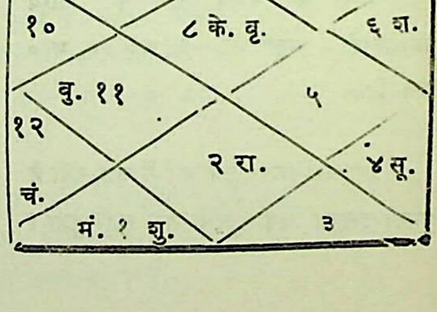
जन्म स्थान—आगरा (अक्षांश-२७ : १० उत्तर, रेखांश-७८ : ५ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	३४३ : २१
सूर्य	१७१ : ३०
चंद्रमा	१५७ : २४
मंगल	१२१ : १२
बुध	१९६ : १९
बृहस्पति	१८६ : २८
शुक्र	१६० : ५६
शनि (व)	२९८ : ४९
राहु	२८३ : ३५
केतु	१०३ : ३५



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विशोत्तरी महादशा—१ व० २ मा० १ दि०।

इस जातिका के विवाह में तो अधिक विलम्ब नहीं हुआ किन्तु शुक्र सूर्य और चन्द्रमा की सप्तम भाव संस्थिति के कारण विवाह सुख किंचित भी प्राप्त न हो सका। विवाहिता होने के उपरान्त भी

अपने ही घर में दासी के समान दैनिक जीवन व्यतीत कर रही है। इस जातिका का पति अधिशासी अभियन्ता के पद पर कार्यरत है। विवाह के बाद शीघ्र ही उसने दूसरा विवाह कर लिया। दूसरी पत्नी जातिका की तुलना में अधिक रूपवती व कम आयु की है। जिसके आने से जातिका का जीवन नरक सदृश बन गया है।

जन्मांग संख्या १८.

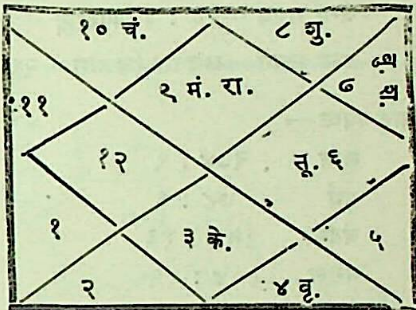
जन्म तिथि—६-१०-१९५४

जन्म समय—१२ : ५२ अपराह्न

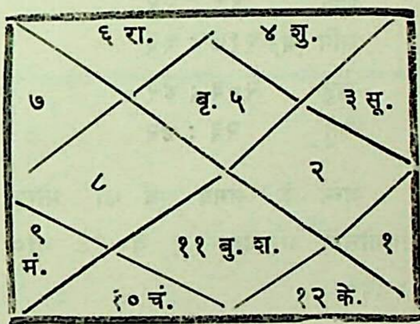
जन्म स्थान—मेरठ (अक्षांश—२९ : १ उत्तर, रेखांश—७७ : ४४ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	२५४ : ५७
सूर्य	१६९ : १७
चन्द्रमा	२७१ : ४५
मंगल	२६७ : १८
बुध	१९४ : ४०
बृहस्पति	९४ : १
शुक्र	२१० : ३१
शनि	१९५ : २४
राहु	२५६ : ४७
केतु	७६ : ४७



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—३ व० ८ मा० १७ दि०

यह जन्मांग अनिंद्य सुन्दरी, भाग्यशाली धनीमानी परिवार युक्त कानपुर मेडिकल कालेज में एम० डी० की परीक्षा में कीर्तिमान स्थापित करने वाली डाक्टर का है। किन्तु आयु के ३०वें वर्ष तक विवाह नहीं हुआ। इस जन्मांग में सतर्कता से देखने पर ज्ञात होता है कि शनि सप्तमेश से युक्त है। लग्न व लग्नेश को देख रहा है। उच्चराशिस्थ बृहस्पति अष्टमस्थ है और शनि मंगल से दृष्ट होकर पापग्रस्त है। शुक्र से द्वितीयस्थ राहु व मंगल तथा द्वादशस्थ शनि हैं, अतः शुक्र पापकर्तरि योगग्रस्त है। चन्द्रमा शनि की राशि व नवांश

में वर्गोत्तम होकर स्थित है। नवांश में शुक्र शत्रुक्षेत्री है और सूर्य शुक्र से द्वादशस्थ है। सप्तम नवांशस्थ शनि बृहस्पति को देख रहा है। शुक्र २१२° ३१'' एवं सूर्य १६९° १७'' पर है। सूर्य से शुक्र यदि ४३° पर हो तो विवाह में अत्यन्त विलम्ब होता है।

इन समस्त कारणों से जातिका का विवाह जब लगभग ३० वर्ष की आयु तक नहीं सम्पन्न हुआ तो उसे मैंने सौन्दर्य लहरी का पाठ शिवरात्रि के दिन से करने का परामर्श दिया और पीला पुखराज पहनने तथा शनि के मन्त्र का पाठ करने को कहा। फलतः १४-१-१९८५ को एक प्रतिष्ठित एम० डी० डॉक्टर के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ।

जन्मांग संख्या १९.

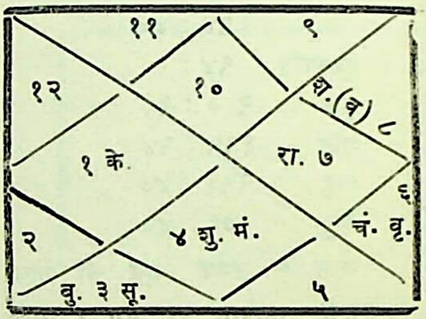
जन्म-तिथि—३-७-१९५७

जन्म समय—२० : ३ अपराह्न

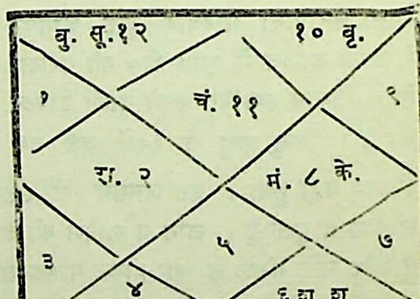
जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश—२६ : ५५ उत्तर, रेखांश—८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२७४ : ९
सूर्य	७८ : ६
चंद्रमा	१५६ : १६
मंगल	१०४ : १९
बुध	७७ : २०
बृहस्पति	१५१ : २९
शुक्र	९९ : २२
शनि (व)	२१७ : ३३
राहु	२०३ : ४२
केतु	२३ : ४२



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१ व० ८ मा० ३ दि०।

जातिका मनोविज्ञान में डाक्टरेट प्राप्त कर चुकी एक विदुषी कन्या है। शुक्र शत्रु राशि गत होकर नीच के मंगल के साथ युक्त होकर सप्तम भाव

को पापग्रस्त कर रहा है और यहाँ ग्रहयुद्ध भी हो रहा है। शनि लग्नेश होकर लग्न को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है।

सप्तमेश चन्द्रमा वृहस्पति से युक्त है इस कारण जातिका के विवाह में विलम्ब हो रहा है। शुक्र मंगल की सप्तमस्थ स्थिति से जातिका का ३०वें वर्ष प्रेम विवाह होगा।

जन्मांग सख्या २०.

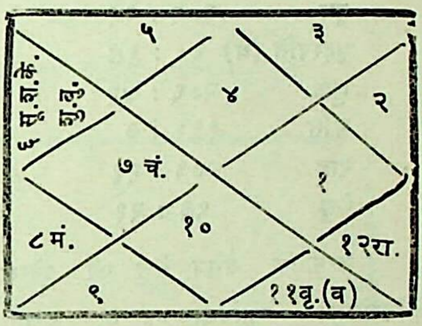
जन्म तिथि--१३-१०-१९५०

जन्म समय—० : ५० पूर्वाह्न

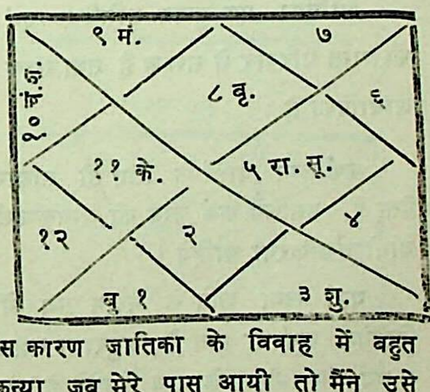
जन्म स्थान—मुरादावाद (अक्षांश–२८ : ५१ उत्तर, रेखांश–७८ : ४९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	१८४ : ३३
सूर्य	१७५ : ४३
चंद्रमा	१९२ : ५६
मंगल	२२८ : ५०
वुध	१६१ : ५८
वृहस्पति(व)	३०४ : ३८
शुक्र	१६७ : ३२
शनि	१५२ : ४९
राहु	३३३ : ५२
केतु	१५३ : ५२



नवांश चक्र



यह जातिका डिग्री कालेज में प्रिंसिपल है और पीएच० डी० प्राप्त कर चुकी है। जातिका की जन्मकुण्डली में द्वितीय भाव पर वक्री वृहस्पति की दृष्टि है। राहु नवमस्थ है तथा सूर्य, शनि और शुक्र द्वारा दृष्ट है। द्वितीयेश सूर्य तथा शुक्र दोनों ही शनि से युक्त हैं। लग्नेश चन्द्रमा शनि सूर्य और मंगल द्वारा पापकर्तरि योगग्रस्त है। जिस कारण जातिका के विवाह में बहुत अवरोध थे। साधारण रूपरंग की यह कन्या जव मेरे पास आयी तो मैंने उसे सोमवार का व्रत और शनि के वैदिक मन्त्रोपचार का परामर्श दिया। जातिका ने

निष्ठापूर्वक मन्त्रोपासना को फलतः १० मास बाद जातिका का विवाह एक कुलीन और धनी परिवार में सम्पन्न हुआ।

जन्मांग संख्या २१.

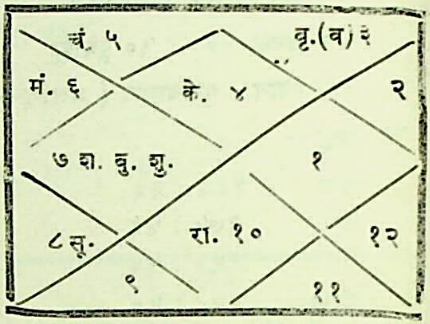
जन्म तिथि—२७-११-१९५३

जन्म समय—९ : ० पूर्वाह्न

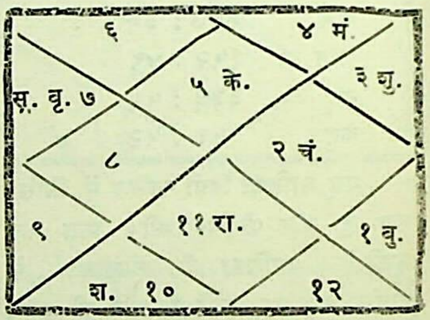
जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५२ उत्तर, रेखांश–८० : ५८ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	९५ : १७
सूर्य	२२१ : ५३
चंद्रमा	१२४ : १०
मंगल	१७२ : ५४
बुध	२०२ : ३१
वृहस्पति (व)	६० : १८
शुक्र	२०६ : ४२
शनि	१९१ : ३
राहु	२७३ : २१
केतु	९३ : २१



नवांश चक्र



जन्म के समय केतु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—४ व. ९ मा. २१ दि.

जातिका एक सुन्दर सुशिक्षित एवं सम्भ्रान्त परिवार से सम्बद्ध है तथा स्कूल अध्यापिका है।

कर्क लग्न वालों के लिए तो साधारण ग्रहयोग भी बड़ी बाधायें उपस्थित कर देता है, इसलिये कर्क लग्न की जन्मकुण्डली का विवाह के सम्बन्ध में विश्लेषण सावधानीपूर्वक करना चाहिये।

यहाँ लग्न शनि के नक्षत्र पुष्य में स्थित है तथा शनि द्वारा दृष्ट भी है। द्वितीयेश सूर्य भी शनि के अनुराधा नक्षत्र में है तथा सप्तमेश शनि शुक्र से युक्त है व सूर्य और मंगल के मध्य में होने के कारण पापकर्तरि योग ग्रस्त है। राहु की शनि की राशि मकर में सप्तमस्थ स्थिति भी अवांछनीय है।

नवमांश में सप्तमेश शनि मंगल से परस्पर दृष्ट है तथा द्वितीयेश सूर्य भी शनि से दृष्ट है।

जातिका विवाह में पर्याप्त विलम्ब देखकर एक बार मेरे पास आयी। मैंने उसे मन्त्र से सम्पुटित करके दुर्गा सप्तशती के ३६ पाठ करने का परामर्श दिया। राहु तथा शनि के वैदिक मन्त्र एवं 'हे गौरि शंकरार्धांगि ....' मन्त्र का स्वयं पाठ करने की प्रेरणा दी।

जातिका के आस्थापूर्वक जप करने तथा १९८३ के चैत्र की नवरात्रि में दुर्गा-सप्तशती का पाठ करने के फलस्वरूप जातिका का विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। वह वहुत प्रसन्न है।

जन्मांग संख्या २२.

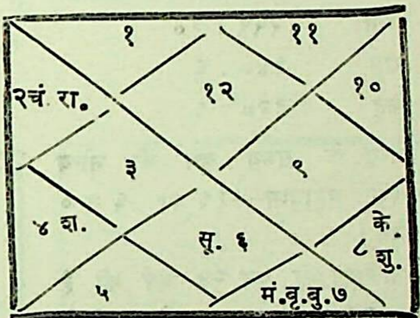
जन्म तिथि—१३–१०–१९४६

जन्म समय—१७ : ३०

जन्म स्थान— लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५५ उत्तर, रेखांश–८० : ५९ पूर्व)

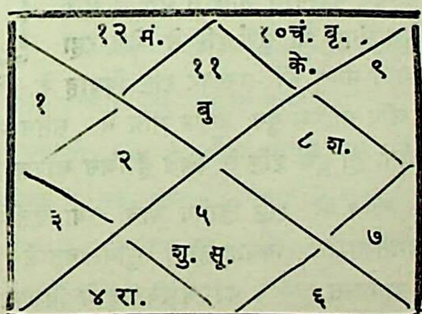
ग्रह स्पष्ट

लग्न	३५४ : ८
सूर्य	१७६ : २६
चंद्रमा	३२ : १४
मंगल	१९९ : ४५
बुध	१९५ : ८
वृहस्पति	१९० : ४०
शुक्र	२१५ : ३४
शनि	१०४ : २७
राहु	५० : ५६
केतु	२३० : ५६



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—३ व० ५ मा० २६ दि०।

नवांश चक्र



यह जातिका ३९ वर्ष की हो चुकी है। और अविवाहित है। पंचम भाव में चन्द्र की राशि कर्क में शनि संस्थित है। षष्ठेश सूर्य सप्तम में है और सप्तमेश बुध, अष्टमेश शुक्र और नवमेश व द्वितीयेश

मंगल तथा लग्नेश वृहस्पति अष्टम भावगत हैं। सभी ग्रहों के पापाक्रान्त होने के कारण जातिका के विवाह की संभावना ४० वर्ष की आयु के पश्चात् है।

जन्मांग संख्या २३.

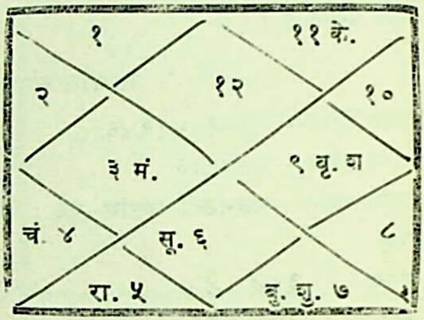
जन्म तिथि—१४-१०-१९६०

जन्म समय—१७ : १० अपराह्न

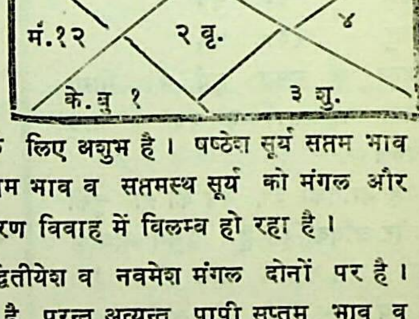
जन्म स्थान—चंदौसी (अक्षांश-२८ : २७ उत्तर, रेखांश-७८ : ४९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	३४६ : २६
सूर्य	१७७ : ४८
चन्द्रमा	१०७ : १
मंगल	७७३ : १९
बुध	२०२ : २७
वृहस्पति	२४४ : ४७
शुक्र	२०७ : ५१
शनि	२५९ : १०
राहु	१४० : ६
केतु	३२० : ६



नवांश चक्र



जन्म के समय बुध की भोग्य विशोत्तरी महादशा—१६ व० ६ मा० १९ दिन।

जातिका की वय २५ वर्ष की है परन्तु विवाह अभी तक न हो सकने के कारण अत्यन्त क्षुब्ध है।

लग्नेश वृहस्पति शनि से युक्त है और द्वितीयेश मंगल को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। शनि मंगल की परस्पर दृष्टि विवाह के लिए अशुभ है। षष्ठेश सूर्य सप्तम भाव में है और सप्तमेश बुध अष्टम भाव में, सप्तम भाव व सप्तमस्थ सूर्य को मंगल और शनि दोनों ही पूर्ण दृष्टि से देखते हैं जिस कारण विवाह में विलम्ब हो रहा है।

वृहस्पति की दृष्टि द्वितीय भाव तथा द्वितीयेश व नवमेश मंगल दोनों पर है। अतः जातिका का विवाह होना सुनिश्चित है परन्तु अत्यन्त पापी सप्तम भाव व भावेश पापग्रस्त होने के कारण विवाह में विलम्ब हो रहा है।

जन्मांग संख्या २४.

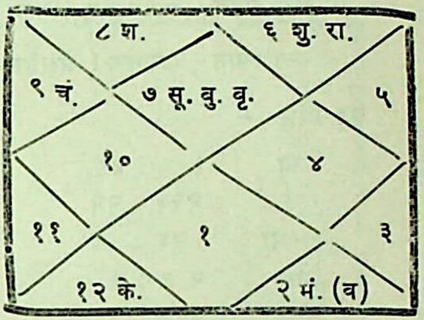
जन्म तिथि—१८-१०-१९५८

जन्म समय—८ : २२ पूर्वाह्न

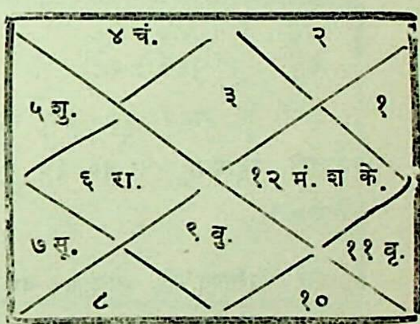
जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५५ उत्तर, रेखाँश–८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२०९ : २६
सूर्य	१८० : ५७
चंद्रमा	२५२ : ४५
मंगल (व)	३८ : ५०
बुध	१८९ : ३३
बृहस्पति	१९४ : ५६
शुक्र	१७४ : ४५
शनि	२२८ : ११
राहु	१७८ : ४४
केतु	३५८ : ४४



नवांश चक्र



जन्म के समय केतु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—० व० ३ मा० २१ दि० ।

जातिका एक विदुषी आकर्षक एवं अति मेधावी कन्या है, बैंक में अफिसर के पद पर कार्य कर रही है परन्तु २७ वर्ष की अवस्था में अभी कुँवारी है।

सप्तमेश मंगल वक्री है और शनि द्वारा परस्पर दृष्टि सम्वन्ध बना रहा है। शनि और राहु के मध्य में लग्न है अतः पापकर्तरि योग ग्रस्त है। सप्तम भाव भी केतु और मंगल के मध्य होने के कारण पापकर्तरि योग ग्रस्त है, साथ ही लग्न में सूर्य, बुध और बृहस्पति के मध्य ग्रह युद्ध हो रहा है। लग्नेश शुक्र द्वादशस्थ होता हुआ शुक्र से युक्त है और सप्तमेश मंगल अष्टमस्थ होकर शनि से दृष्ट है।

इस जातिका की जन्मकुण्डली में विवाह प्रतिवन्धक योग है। विवाह की कोई सम्भावना प्रतीत नहीं होती।

जन्मांग सख्या २५.

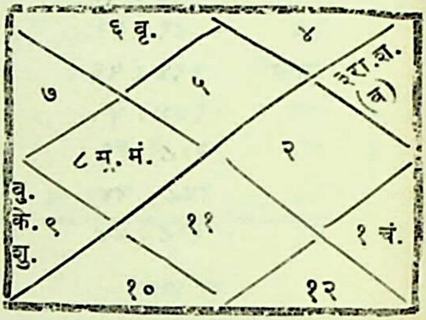
जन्म तिथि --२९-११-१९४४

जन्म समय—० : ५५ (मध्य रात्रि)

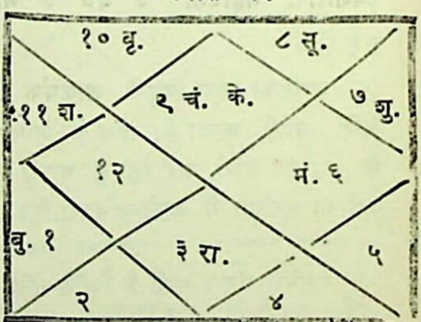
जन्म स्थान – लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५५ उत्तर, रेखांश–८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	१४९ : ४९
सूर्य	२२३ : २२
चंद्रमा	२६ : ५९
मंगल	२१९ : ९
बुध	२४३ : १९
वृहस्पति	१५१ : ५७
शुक्र	२६२ : २
शनि (व)	७६ : २९
राहु	८७ : २८
केतु	२६७ : २८



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा ५ व० १० मा० ७ दिन०।

इस जातिका की आयु ४१ वर्ष है परन्तु सम्प्रति विवाह नहीं सम्पन्न हो सका है।

सप्तमेश शनि वक्री है और राहु से युक्त व मंगल से दृष्ट होने के कारण परम पापी हो गया है वक्री शनि लग्न को, द्वितीयेश बुध को, एवम् कारक शुक्र को पूर्ण दृष्टि से देखता है।

अतः विवाह होने की कोई सम्भावना नहीं है।

जन्मांग संख्या २६.

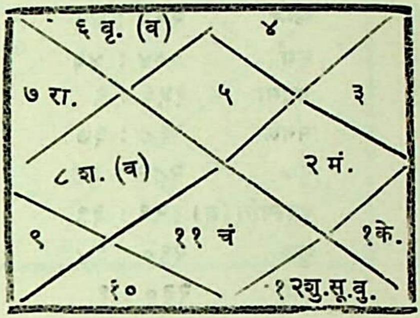
जन्म-तिथि —२९-३-१९५७

जन्म समय —१५ : १२ अपराह्न

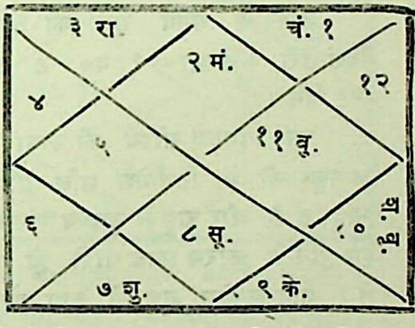
जन्म स्थान – लखनऊ (अक्षांश—२६ : ५५ उत्तर, रेखांश—८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट —

लग्न	१२३ : ५९
सूर्य	३४५ : १०
चंद्रमा	३२३ : २
मंगल	४३ : ५७
बुध	३५४ : ३
बृहस्पति (व)	१५२ : ७
शुक्र	३४१ : १
शनि (व)	२३१ : १
राहु	२०८ : ४६
केतु	२८ : ४६



नवांश चक्र



जन्म के समय बृहस्पति की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१२ व० ४ मा० २ दिन।

शनि चतुर्थ भावस्थ है। और मंगल उससे सप्तमस्थ है अर्थात् दोनों एक दूसरे को सप्तम दृष्टि से देखते हैं। शनि मंगल का परस्पर दृष्टिसंबन्ध विवाह के लिए अहितकर है। इसके विषय में पहले ही बताया गया है। चन्द्रमा भी शनि की राशि में है तथा लग्न पर शनि की दृष्टि है। जातिका के विवाह में अप्रत्याशित रूप से विलम्ब हो रहा है वह २९वें वर्ष में चल रही है। अभी जातिका को कुछ मन्त्र बताये गये हैं। कुम्भ के बृहस्पति में विवाह सम्पन्न हो जायेगा। यहाँ लग्न, सप्तम चन्द्र, मंगल, केतु, राहु सभी तथा शनि स्थिर राशिगत हैं इसलिए विवाह फलदीपिका के मतानुसार ३०वें वर्ष की अवस्था में होगा।

जन्मांग संख्या २७.

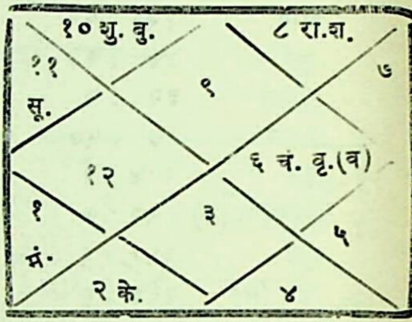
जन्म-तिथि—१७-२-१९५७

जन्म समय—३ : २५ पूर्वाह्न

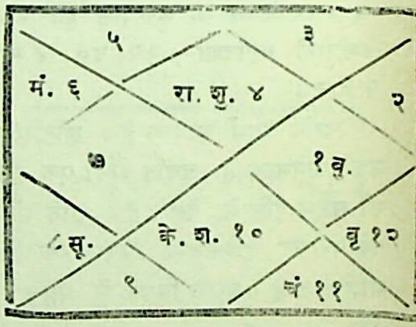
जन्म स्थान—वाराणसी (अक्षांश—२५ : २० उत्तर, रेखांश—८३ : ० पूर्व)

ग्रह स्पष्ट –

लग्न	२५२ : ४५
सूर्य	३०४ : ४३
चंद्रमा	१५६ : ९
मंगल	१८ : ३७
बुध	२८२ : ३८
वृहस्पति (व)	१५६ : ३९
शुक्र	२९० : ३४
शनि	२३० : १
राहु	२१० : ५७
केतु	३० : ५७



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१ व० ८ मा० २१ दिन ।

इस सामान्य सौंदर्य की कन्या की जन्मकुण्डली में द्वितीयेश शनि द्वादश-भावगत है और राहु से युक्त व मंगल से दृष्ट होने के कारण प्रवल पापी हो गया है। शनि सप्तमेश बुध को तथा कारक शुक्र को देख रहा है। बुध शुक्र और सूर्य दोनों ही शनि की राशियों में संस्थित हैं तथा द्वितीय भाव पर वक्री बृहस्पति की दृष्टि है।

इन्हीं कारणों से जातिका का विवाह नहीं हो पा रहा है। शनि का इतना प्रवल दोष है अतः ३१ वें वर्ष में ही जातिका का विवाह होगा। इस जातिका को मन्त्रोपासना स्वीकार नहीं है।

जन्मांग संख्या २८.

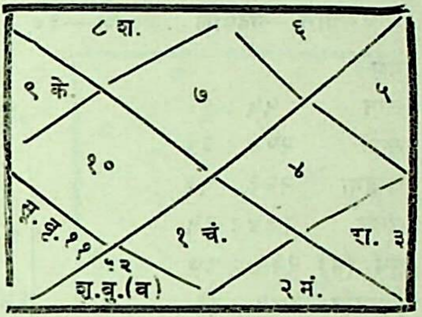
जन्म तिथि—६-३-१९२७

जन्म समय—२१ : १५ अपराह्न

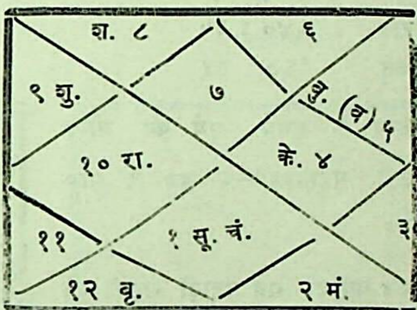
जन्म स्थान—अम्बाला (अक्षांश-३० : २१ उत्तर, रेखांश-७६ : ५२ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	१८० : ३६
सूर्य	३२२ : १०
चंद्रमा	२ : ३६
मंगल	४३ : ४७
बुध (व)	३३४ : १४
बृहस्पति	३१८ : १६
शुक्र	३४७ : ७
शनि	२२४ : ४३
राहु	७० : ३८
केतु	२५० : ३८



नवांश चक्र



जन्म के समय केतु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—५ व. ७ मा. १८ दि.

यह एक प्रसिद्ध आल इण्डिया रेडियो प्रोड्यूसर की जन्मकुण्डली है जो बहुत सुन्दर और होनहार महिला हैं। इनका विवाह ३५वें वर्ष के प्रारम्भ होने पर ११-३-१९६१ को हुआ और मात्र १० माह का वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के बाद इनके पति एक विमान दुर्घटना में अपने प्राण गँवा बैठे। जातिका को वैधव्य का सामना करना पड़ा।

शनि का द्वितीयेश होकर सप्तमेश मंगल से परस्पर दृष्टि सम्बन्ध का होना स्वयं ही एक विघटनकारी योग है। लग्नेश शुक्र षष्ठ भावगत है जब कि सप्तमेश मंगल अष्टमस्थ है। शुक्र स्वयं सूर्य और चन्द्रमा के मध्य में संस्थित है।

प्रारम्भ में बताया गया है कि यदि सप्तमेश से शनि चतुर्थ, सप्तम व एकादश भावगत हो तो विवाह में विलम्ब होता है। प्रायः सभी ग्रह स्थिर राशिगत हैं और

सप्तम व पंचम भाव भी निर्वल हैं जिस कारण जातिका का विवाह विलम्ब से हुआ। शनि मंगल की परस्पर दृष्टि और विघटनकारी संस्थिति के वर्तमान होने से विवाह का सुख कुल १० माह का रहा।

जन्मांग संख्या २९.

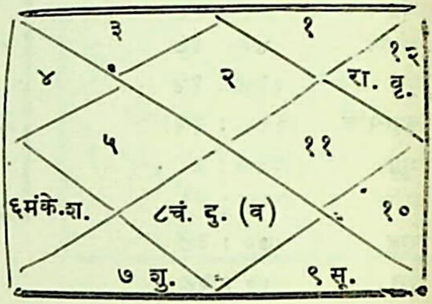
जन्म तिथि—२६-१२-१९५१

जन्म समय—१६ : ८ अपराह्न

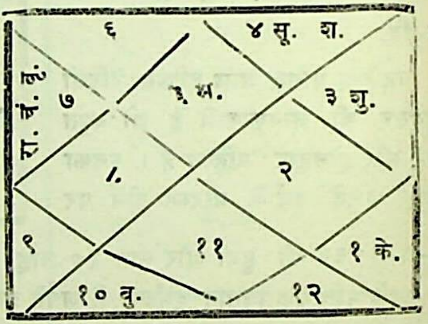
जन्म स्थान—गढ़वाल (अक्षांश—३० : १५ उत्तर, रेखांश–७९ : ३० पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	५५ : ६
सूर्य	२५० : ३९
चन्द्रमा	२२१ : ५३
मंगल	१७४ : ३५
बुध (व)	२३२ : ५७
बृहस्पति	३४२ : १३
शुक्र	२०८ : ७
शनि	१७१ : २
राहु	३४० : ३५
केतु	१६० : ३५



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—६ व० ९ मा० २१ दि०

२४ वर्षीया यह पहाड़ी लड़की जो शिक्षिका है और अत्यन्त शोचनीय स्थिति में जीवन यापन कर रही है, अभी तक कुँवारी है। विवाह की अनेक कोशिशें अव तक व्यर्थ सिद्ध हुई हैं।

इस जन्मकुण्डली में मंगल और पंचमेश बुध में परस्पर परिवर्तनयोग है। चन्द्रमा नीच राशिगत होकर सप्तमस्थ है तथा शनि द्वारा दृष्ट है। जैसा कि प्रारम्भ में वताया गया है कि शनि लग्न से पंचमस्थ हो तो विवाह में बाधा आती है, यद्यपि बृहस्पति की दृष्टि पंचम, पंचमेश, सप्तम व सप्तमेश पर है, अतः जातिका का विवाह होने की आशा नितान्त क्षीण है।

जन्मांग संख्या ३०.

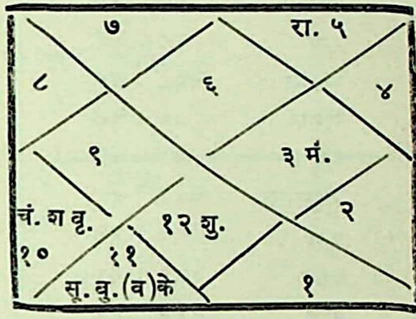
जन्म तिथि—१३–२–१९६१

जन्म समय—८ : ३७ अपराह्न

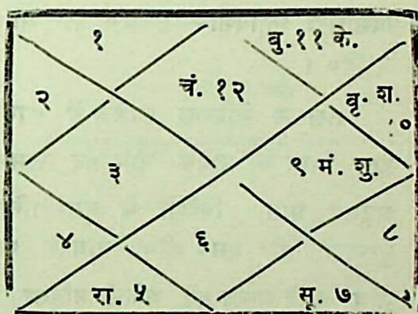
जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५५ उत्तर, रेखांश–८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	१५७ : ४२
सूर्य	३०१ : २३
चंद्रमा	२७७ : १४
मंगल	६७ : २
बुध (व)	३१५ : ५०
बृहस्पति	२७० : ४५
शुक्र	३४७ : २१
शनि	२७१ : १९
राहु	१३३ : ४३
केतु	३१३ : ४३



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा— १ व० २ मा० २८ दि०।

इस जन्मांग में चन्द्रमा और सूर्य दोनों ही शनि राशियों मकर और कुम्भ में क्रमशः संस्थित हैं शुक्र पर शनि की दृष्टि है। सप्तमेश बृहस्पति शनि की राशि में शनि से युक्त है लग्नेश बुध भी शनि की ही राशि में संस्थित है जिस कारण जातिका के विवाह में विलम्ब हो रहा है।

जातिका को कुछ मन्त्र प्रयोग बताये गये, मकर के बृहस्पति में जनवरी ८६ में जातिका का विवाह हो गया सुखी जीवन व्यतीत कर रही है।

जन्मांग संख्या ३१.

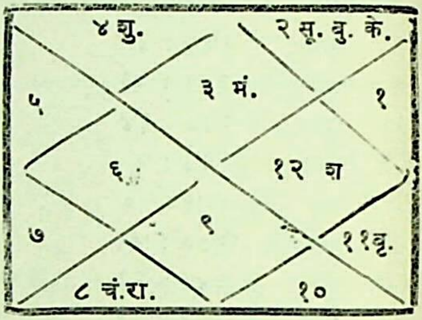
जन्म-तिथि —१३-६-१९३८

जन्म समय —६ : ० पूर्वाह्न

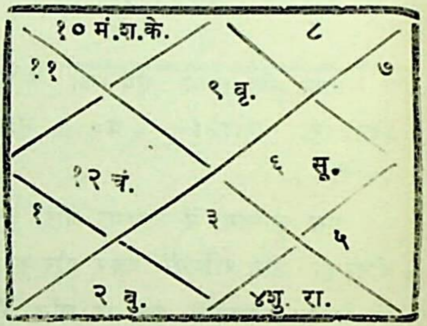
जन्म स्थान— विजनौर (अक्षांश—२९ : २३ उत्तर, रेखांश—७८ : ११ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	६७ : २७
सूर्य	५८ : २१
चंद्रमा	२३८ : ४०
मंगल	७० : ५८
बुध	४६ : ३९
वृहस्पति	३०९ : ८
शुक्र	९० : १५
शनि	३५३ : १०
राहु	२१२ : ३५
केतु	३२ : ३५



नवांश चक्र



जन्म के समय बुध की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१ व० ८ मा० २ दि० ।

लखनऊ मेडिकल कालेज में कार्यरत, विश्व के प्रत्येक भाग का भ्रमण अनुभव प्राप्त, विदेशों में सुसम्मानित पुरस्कृत, डी० एस० सी०, वायरल पर शोध करने भारत की अकेली महिला डॉ० के इस जन्मांग में शनि सूर्य एवं लग्नेश बुध पर दृष्टि निक्षेप कर रहा है। शुक्र ९१° १५ इञ्च पर तथा सूर्य ५८° २१ इञ्च पर स्थित है, शुक्र शत्रु क्षेत्रीय है। सप्तम भाव पर शनि-मंगल की दृष्टि है। नवमेश एवं दशमेश में विनिमय स्थान परिवर्तन योग का प्रत्यक्ष प्रभाव कर्म क्षेत्र में यश के रूप में है।

नवांश में शनि-मंगल शनि के नवांश में द्वितीय भाव में स्थित हैं। शनि चन्द्रमा व शुक्र को देख रहा है। शुक्र शत्रु राशि में स्थित है और वर्गोत्तम नवांश में है तथा

शनि द्वारा भी दृष्ट होने के कारण परम दोषयुक्त है अतः विवाह में प्रतिबन्धक योग बना रहा है। अभी-अभी इसे विज्ञान के क्षेत्र में भारत का नं० २ का पुरस्कार राष्ट्रपति द्वारा प्राप्त हुआ है।

जन्मांग संख्या ३२.

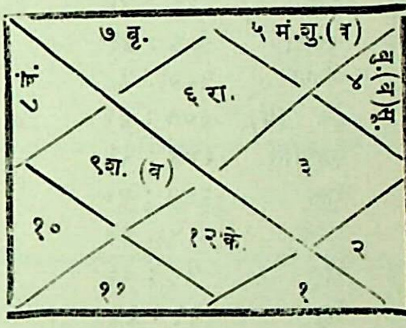
जन्म तिथि—१३-८-१९५९

जन्म समय—९ : ४६ पूर्वाह्न

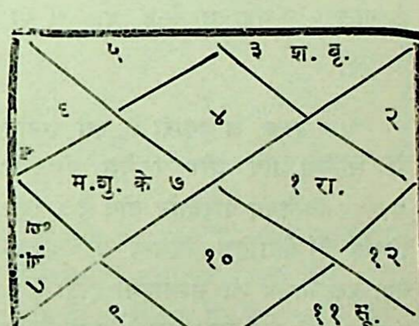
जन्म स्थान—हरदोई (अक्षांश-२७ : २३ उत्तर, रेखांश-८० : १० पूर्व)

ग्रह स्पष्ट —

लग्न	१७० : २
सूर्य	११६ : २३
चन्द्रमा	२२५ : ४८
मंगल	१४१ : ३१
बुध (व)	१०४ : ४९
बृहस्पति	२०९ : ४०
शुक्र (व)	१४२ : ४३
शनि (व)	२४७ : ३४
राहु	१६२ : ४९
केतु	३४२ : ४९



नवांश चक्र



जन्म के समय शनि की भोग्य विंशोत्तरी महादशा— १ व० २ मा० २० दिन।

जातिका एक सामान्य रूप रंग की लड़की है। २७वें वर्ष में है, विवाह में हो रहा विलम्ब अभिभावकों की चिन्ता का मूल कारण है।

इस जन्मांग में वक्री शुक्र द्वादश भाव में शत्रुराशिगत है। चन्द्रमा शनि संचालित नक्षत्र अनुराधा में संस्थित है। वक्री शनि लग्न पर दृष्टिनिक्षेप कर रहा है। वक्री लग्नेश बुध शनि के नक्षत्र पुष्य में स्थित है। सूर्य शनि के नवांश में है। अतएव

विलम्ब हुआ। जब जातिका के अभिभावक मेरे पास आये तो शनि की कुछ साधनायें एवं सौन्दर्यलहरी के एक मन्त्र का परामर्श दिया। जातिका का विवाह ३ महीने की साधना के बाद जनवरी १९८६ में सम्पन्न हुआ।

जन्मांग संख्या ३३.

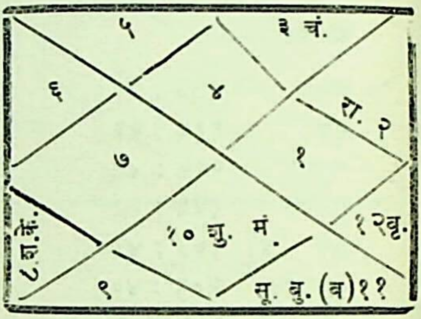
जन्म तिथि—२९-२-१९२८

जन्म समय—१५ : ३० अपराह्न

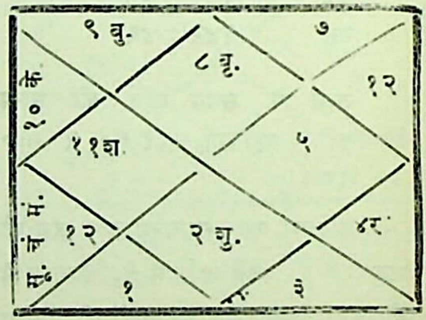
जन्म स्थान—गढ़वाल (अक्षांश–३० : १५ उत्तर, रेखांश–७९ : ३० पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	१०३ : २९
सूर्य	३१६ : ४०
चंद्रमा	७६ : ४३
मंगल	२७७ : ५८
बुध (व)	३०७ : ३३
बृहस्पति	३४४ : ५२
शुक्र	२८५ : २०
शनि	२३५ : ३५
राहु	५१ : ३६
केतु	२३१ : ३६



नवांश चक्र



जन्म के समय राहु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—४ व. ५ मा. ५ दि.

एक उच्च अधिकारी के इस जन्मांग में सप्तमेश शनि और पंचमेश मंगल में परस्पर विनिमय परिवर्तन योग है। ऐसी स्थिति में वैवाहिक विलम्ब की अथवा वैवाहिक निषेध की सम्भावना होती है। किन्तु अपवादपरक नियमों में वर्णित है कि पंचमेश उच्चराशिगत अथवा स्वराशिगत होकर सप्तमस्थ हो तो विलम्ब नहीं होता, अपितु प्रेम विवाह की सम्भावना वर्द्धित होती है। अतः विवाह में विलम्ब तो नहीं हुआ पर अवरोध अनेक आये। पंचम और सप्तम भावेश के सम्बन्ध पर सतर्कता पूर्वक निर्णय लेना चाहिए।

जन्मांग संख्या ३४.

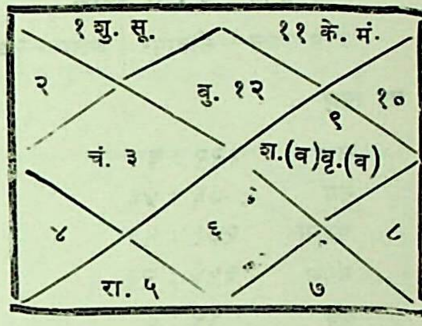
जन्म-तिथि—२९-५-१९६०

जन्म समय —२ : २० पूर्वाह्न

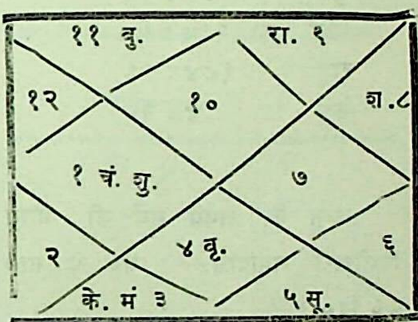
जन्म स्थान—फैजाबाद (अक्षांश—२६ : ४७ उत्तर, रेखांश—८२ : १२ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट–

लग्न	३५२ : ७
सूर्य	१५ : १४
चंद्रमा	८० : ५३
मंगल	३२७ : १०
बुध	३५६ : ११
बृहस्पति (व)	२५० : ११
शुक्र	० : ३५
शनि (व)	२६५ : ७
राहु	१४७ : ३१
केतु	३२७ : ३१



नवांश चक्र



जन्म के समय बृहस्पति की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१४ व० ११ मा० ७ दिन।

२५ वर्षीय यह जातिका असाधारण रूप से विदुषी है और हाईस्कूल से एम० एस० सी० तक सदा सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती आई है। चीफ इन्जीनियर की पुत्री है।

शनि और बृहस्पति दोनों ही वक्री हैं। वक्री शनि चन्द्रमा तथा सप्तम भाव पर दृष्टि डाल रहा है जिसके कारण विवाह में विलम्ब हो रहा था, परन्तु जैसा कि बताया गया है कि शनि और बृहस्पति यदि युक्त हों तो विवाह में विलम्ब का योग निरस्त हो जाता है।

यहाँ सप्तमेश और चन्द्रमा से शनि और बृहस्पति सप्तमस्थ हैं और विलम्ब का कारण वक्री ग्रह हैं। दूसरे भाव तथा शुक्र को वक्री बृहस्पति देखता है तथा

सप्तम व सप्तमेश को शनि। जातिका को एक पुखराज पहनने का परामर्श दिया गया तथा उचित मन्त्र का जप कराया। विवाह १९५८ के अन्त में हुआ।

जन्मांग संख्या ३५.

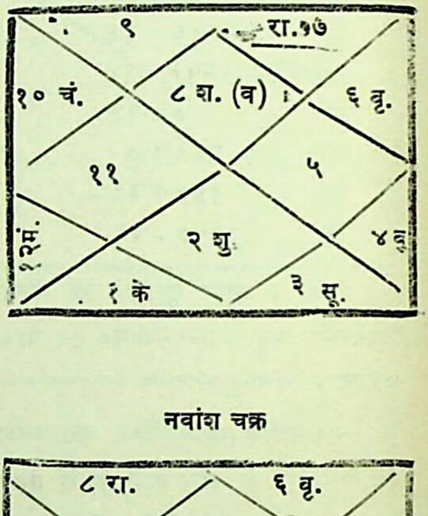
जन्म तिथि—२-७-१९८५

जन्म समय—४ : २८ पूर्वाह्न

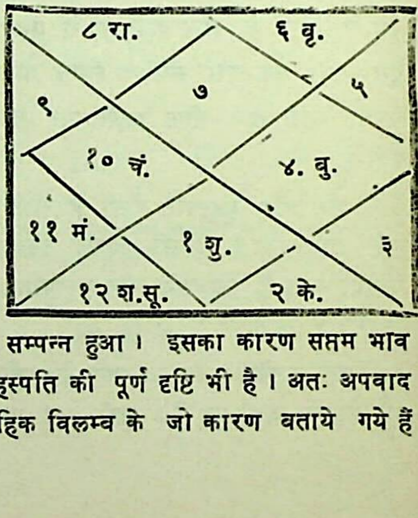
जन्म स्थान—सीतापुर (अक्षांश–२७ : ३३ उत्तर, रेखांश–८० : ४० पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२२२ : ६
सूर्य	७६ : ४६
चंद्रमा	२७१ : ५३
मंगल	३५४ : २१
बुध	९२ : ७
वृहस्पति	१७८ : ४४
शुक्र	४३ : १२
शनि (व)	२३७ : ५०
राहु	१८४ : २६
केतु	४ : २६



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—३ व० ९ मा० २६ दि०।

इस जन्मांग में शुक्र पर तथा चन्द्रमा पर लग्नस्थ शनि की दृष्टि है। चन्द्रमा स्वयं शनि की राशि में संस्थित है परन्तु २५ वर्ष ८ माह की आयु में २१–२–१९८४ को एक प्रज्ञावती कन्या से विवाह सम्पन्न हुआ। इसका कारण सप्तम भाव में स्वराशिगत शुक्र का होना है जिस पर वृहस्पति की पूर्ण दृष्टि भी है। अतः अपवाद रूप में सप्तमेश यदि सप्तमस्थ हो तो वैवाहिक विलम्ब के जो कारण बताये गये हैं

उनके उपस्थित होने पर भी विवाह समय पर होता है परन्तु शनि का प्रभाव होने पर प्रायः वर-वधू की आयु में सामान्य से अधिक अन्तर होता है।

इस अपवाद को उदाहरण संख्या—२ में भी देखा जा सकता है जहाँ सप्तम भावस्थ शनि के स्वगृही होकर सप्तमस्थ होने पर विवाह उचित समय अर्थात् २१वें वर्ष में सम्पन्न हुआ।

जन्मांग संख्या ३६.

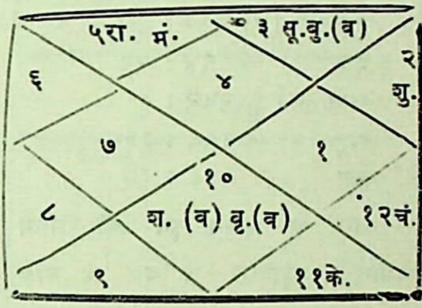
जन्म तिथि—४-७-१९६१

जन्म समय—७ : ८ पूर्वाह्न

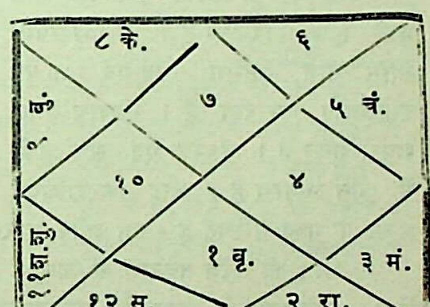
जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश—२६ : ५५ उत्तर, रेखांश—८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न		१०१ : ४५
सूर्य		७८ : ३१
चन्द्रमा		३३४ : ३५
मंगल		१२९ : ४१
बुध	(व)	६८ : ५५
बृहस्पति	(व)	२८१ : ३२
शुक्र		३३ : २६
शनि	(व)	२७४ : २०
राहु		१२६ : १२
केतु		३०६ : १२



नवांश चक्र



जन्म के समय शनि की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१७ व० २ मा० १२ दि०।

यह जन्मांग भी अपवाद स्वरूप है। शनि सप्तमेश होकर सप्तमस्थ है और लग्न तथा लग्नेश चन्द्रमा दोनों को देख रहा है। इसके अतिरिक्त बृहस्पति भी षष्ठेश होकर सप्तम भावगत है परन्तु विवाह २२वें वर्ष में २१-४-१९८३ को सम्पन्न हुआ और वैवाहिक जीवन सुखी है। अतः बृहस्पति यदि शनि से सप्तम भाव में युक्त हो और शनि अथवा बृहस्पति में से कोई ग्रह सप्तमेश या पंचमेश हो तो विवाह में विलम्ब नहीं होता बल्कि उचित आयु में सम्पन्न होता है।

जन्मांग संख्या ३७.

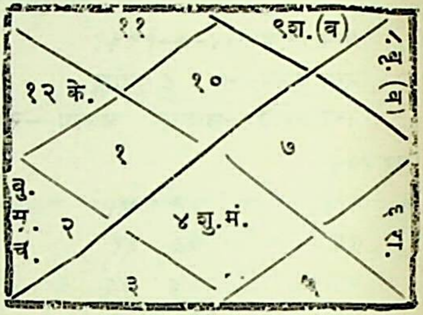
जन्म तिथि--४-६-१९५९

जन्म समय— २३ : ० अपराह्न

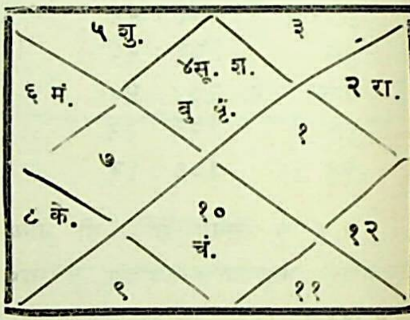
जन्म स्थान– लखनऊ (अक्षांश–२६ : ५५ उत्तर, रेखांश–८० : ५९ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२९१ : ३०
सूर्य	५० : २
चंद्रमा	३० : १२
मंगल	९८ : ५२
बुध	५१ : ५७
बृहस्पति (व)	२११ : ४४
शुक्र	९४ : २२
शनि (व)	२५२ : ०
राहु	१६६ : ३३
केतु	३४६ : ३३



नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा – ४ व० ४ मा० २६ दिन० ।

इस जन्मकुण्डली में द्वितीयेश शनि वक्री होकर द्वादशस्थ है । वक्री बृहस्पति सप्तम भाव, सप्तमेश चन्द्र एवं शुक्र पर दृष्टिनिक्षेप कर रहा है । नीचस्थ मंगल शत्रुराशिगत है । पंचमेश एवं सप्तमेश में विनिमय परिवर्तन योग है । नवांश चक्र में शनि लग्नस्थ है । चन्द्र मकरराशिगत होकर सप्तम भावस्थ है । शुक्र शनि और मंगल के मध्य संस्थित है । इन अनेक कारणों से वैवाहिक विलम्ब का योग है ।

१९८५ की चैत्र नवरात्र के काल में जातिका के भाई ने उसके शीघ्र विवाह के लिए मन्त्रोपासना के विषय में जानना चाहा । जातिका ने संस्कृत से स्नातकोत्तर परीक्षा पास की है । अतः मुझे संकोच न हुआ । जातिका की आस्था देखकर उसे वाल्मीकि रामायण के, पतिसुख एवं शनि की कुछ वैदिक क्रियाओं के विषय में बताकर सविधि जप के लिए कहा । जातिका ने ६ मास साधना की ! फलतः जातिका का विवाह एक उच्च पदस्थ अधिकारी के साथ २३–११–१९८५ को सम्पन्न हुआ ।

जन्मांग संख्या ३८.

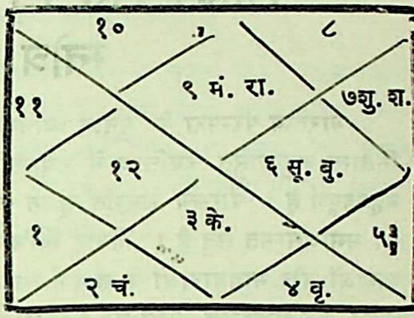
जन्म-तिथि —१८–९–१९५४

जन्म समय —१: ५५ अपराह्न

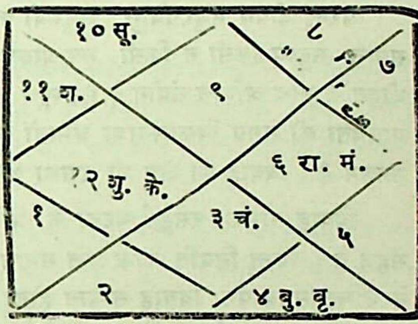
जन्म स्थान – कलकत्ता (अक्षांश—२२ : ३४ उत्तर, रेखांश—८८ : २४ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२६६ : ५२
सूर्य	१५१ :४०
चंद्रमा	४७ : ११
मंगल	२५७ : १७
बुध	१७२ : १५
बृहस्पति	९१ : २९
शुक्र	१९७ : ११
शनि	१९३ : ३०
राहु	२५७ : ४४
केतु	७७ : ४४



नवांश चक्र



जन्म के समय चन्द्रमा की भोग्य विशोत्तरी महादशा—४ व० ७ मा० १३ दि० ।

३२ वर्षीया इस जातिका की जन्म-कुण्डली में शनि लग्न तथा लग्नेश बृहस्पति दोनों को देख रहा है तथा लग्न से एकादशस्थ होता हुआ शुक्र से युक्त है । इस कारण जातिका की ३१ वर्ष की आयु हो जाने के उपरान्त भी विवाह नहीं हो पाया। सूर्य भी शनि के नवांश में संस्थित है ।

द्वादश भाव शनि और मंगल के मध्य होने के कारण पापकर्तरि योग ग्रस्त है । इस कारण जातिका का अपनी बड़ी बहन के पति के साथ अवैध रूप से सम्बन्ध है ।

अपवादस्वरूप शनि यदि सप्तम भाव में स्वगृही हो परन्तु क्रूर ग्रहों के प्रभाव में न हो या राहु अथवा शुक्र से युक्त न हो तथा वक्री न हो तो विवाह उचित अवस्था में ही होता है ।

उदाहरण संख्या –२ की जन्मकुण्डली में शनि सप्तम भाव में मकर राशिगत होकर स्थित है । जातिका का विवाह २१वें वर्ष में २२–४–१९८३ को बिना किसी अवरोध के सम्पन्न हो गया । उल्लेखनीय है कि शनि के सप्तमस्थ होने पर प्रायः पति की आयु अधिक होती है । जैसा कि इस जातिका के साथ भी है । पति की आयु १ वर्ष अधिक है ।

तृतीय अध्याय

वैवाहिक विलम्ब : कुछ अनुभूत मन्त्र, स्तोत्र एवं प्रयोग

भारतीय परम्परा के पुनीत व्याख्याकारों ने मानव जीवन को संस्कारों के जिस नितान्त अनुशासित व्यक्तित्व में रूपान्तरित किया है, उसमें विवाह का स्थान प्रचुर महत्त्वपूर्ण है। पौरस्त्य संस्कृति सृजन का सम्मान करती है। विवाह पीढ़ी-विस्तार का समाजसम्मत सेतु है। विवाह विभिन्न सभ्यताओं, संस्कृतियों, संस्कारों, विचार-धाराओं और भावधाराओं के सम्पर्क का भी सेतु है। वैयक्तिक संदर्भों में विवाह देह की देहरी पर सानुष्ठान रखा वह स्नेह-आपूरित सुदीप है जो पंचकोषमय व्यक्तित्व के नितान्त गोपनीय प्रकोष्ठों को आभासित करता है।

परन्तु जीवन मधुर-विधुर अनुभवों का अप्रतिम आगार है। अभाव के प्रभाव से समस्त मनुष्य किसी न किसी रूप-प्रारूप में प्रभावित होते हैं। अभाव का मानव जीवन के साथ अभिन्न संयोग है। सम्पूर्ण रूप से निरभिलाषी व्यक्ति की प्राप्ति दुर्लभ है। मानवता की समग्र विकासयात्रा अभावों के बहुस्तरीय उद्वेग की परिशान्ति का अनूठा उपक्रम है। विवाह का क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है।

विवाह नामक रसपूर्ण घटना के प्रति व्यक्ति की उत्कंठा, जिज्ञासा और लालसा सहज है। किन्तु नियति सबके प्रति समानरूपेण उदार नहीं होती। समकालीन समाज में उचित समय पर विवाह सम्पन्न होना एक दुस्साध्य प्रक्रिया हो गई है—विशेषतः कन्या पक्ष के सन्दर्भ में। समस्त विश्व में नारी अस्तित्व और वरीयता के लिये पुरा-काल से सक्रिय है, किन्तु सम्प्रति उसकी दशा चिन्तनीय ही है। भारतीय समाज विचित्र विरोधी विचारों का समाहार है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवताः" का स्वर भी इसी राष्ट्र में अनुगुंजित हुआ और सम्मान की एक स्पर्श-किरण के लिये तरसती नारियां भी इसी राष्ट्र में हैं। विवाह जैसी पुनीत वेला की प्रतीक्षा में कन्या को अपमान, कुण्ठा, घृणा, क्रोध और आत्मघात के कितने विषसिक्त दंश सहन करने पड़ते हैं, यह किसी भुक्तभोगी के अनुभव का मर्मस्पर्शी विषय है। विवाह के पूर्व हर कन्या दाम्पत्य जीवन के सुकोमल स्वप्न सँवारती है और उत्कण्ठा से अपनी जीवन-यात्रा के सहभागी का मार्ग निहारती है। किन्तु समस्त स्वप्नों को अभिलाषानुकूल जागरण नहीं मिलता, यहीं पर भाग्य की सत्ता आकार प्राप्त करती है। रोचक विषय यह है कि अनेक सुन्दर, विद्वान्, सुसंस्कृत और समृद्ध परिवार से सम्बद्ध कन्यायें अवि-

धाहित रह जाती हैं अथवा उनके विवाह में अनपेक्षित विलम्ब होता है। दूसरी ओर अत्यन्त सामान्य आकृति-प्रकृति, आर्थिक स्तर और शैक्षणिक अर्हता वाली कन्याओं का विवाह अति उच्च और धनी तथा विख्यात परिवार में हो जाता है। इस विडंबना अथवा विरोधाभास का एकमात्र कारण पूर्वजन्म के कर्मों का फलाफल ही है। जन्मांग में संस्थित ग्रहों की संस्थिति इस तथ्य की सम्यक् व्याख्या करती है।

ग्रहों का प्रभाव मानव जीवन पर निर्विवाद रूप से पड़ता है। इस सन्दर्भ में आस्था अथवा अनास्था से कोई अन्तर नहीं पड़ता। जैसे किसी अर्गलावेष्टित प्रकोष्ठ में बैठकर सूर्य के आलोक और तेज का प्रतिवाद नहीं किया जा सकता उसी प्रकार ज्योतिष. भाग्य और ईश्वर में अश्रद्धा उसके मौलिक प्रभाव को क्षति नहीं पहुँचाती। इस सनातन सत्य को निरन्तर ध्यान में रखना चाहिए।

व्यक्ति के जीवन में जन्म के समय ग्रहों की संस्थिति एक प्रमुख भूमिका रखती है। समस्त जीवन इनकी शुभता-अशुभता, सुसंयोगिता–कुसंयोगिता और प्रभुता-क्षीणता के द्वारा निर्धारित होता है। व्यक्ति आजीवन अपनी नियति से संघर्ष करता है और पराभूत होने का दर्शन सीखता है।

कन्या के विवाह में अनपेक्षित विलम्ब देखकर अभिभावक चिन्ता के महासमुद्र में निमग्न हो जाते हैं। अपनी समस्त शक्ति और सामाजिक परिचय का उपयोग करके भी वे अपनी कन्या के लिए उपयुक्त वर नहीं प्राप्त कर पाते। जीवन ऐसे ही अभावों का क्रूर साक्षात्कार है।

जीवन के अभावों की प्रतिपूर्ति के लिए पुरुषार्थ की चतुर्मुखी शक्ति के साथ मानव ने तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र का भी सम्यक् प्रयोग-उपयोग किया है। अभीष्ट को सयत्न प्राप्त करने की परम्परा भारत के लिए नवीन नहीं है।

मन्त्र सत्य के निकष पर सर्वदा कंचन सिद्ध हुये हैं। यद्यपि आधुनिक काल में मानव जीवन भौतिकता के विद्रूप वात्याचक्र से आक्रान्त है जिसके परिणामस्वरूप अपने परम्परागत धार्मिक-सांस्कृतिक-आध्यात्मिक और शास्त्रीय न्यास के प्रति हमारे अन्तर में अविश्वास और उपहास के पौधे अंकुरित हो रहे हैं, तथापि अतीन्द्रिय विज्ञान इतना अमूल्य है कि उसे भौतिकता कभी क्रय नहीं कर सकती है। आरोह तथा अवरोह की अनेकानेक आवृत्तियाँ सहन करके इस मन्त्र विद्या ने अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण रखा है। भारतीय संस्कृति का यह गौरवपूर्ण अध्याय स्वर्णाक्षरों में उद्धरणीय है।

सर्वप्रथम मन्त्र के अर्थ विस्तार का संक्षिप्त विवेचन अनिवार्य है। वैदिक ऋचाओं से दैवी शक्तियों की स्तुतियों, यज्ञादि के लिए विरचित पदों एवं शब्दप्रतीकों तक मन्त्र की एक सुसंस्कृत परम्परा प्रवहमान है। मन्त्र शब्द की सामर्थ्य का चरमतम केन्द्रीभूत आह्वान है। शब्द ब्रह्म के साक्षात्कार से पूर्व मन्त्र को अपनी परीक्षा

देनी पड़ती है। 'मन्त्र' शब्द 'मत्रि गुप्तभाषणे' धातु से घञ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है जिसका तात्पर्य है रहस्य। वह रहस्य जो देवोपम है किन्तु मानवीय अनुभूति का विषय है। तन्त्र साहित्य के मतानुसार वह प्रत्येक शब्द मन्त्र है जो देवता की स्तुति में निवेदित है। श्रुति, स्मृति, पुराण, उपनिषद, आगम और निगम सभी मन्त्रों के उल्लेख से परिपूर्ण हैं। वैदिक साहित्य मन्त्रों का उत्स है। यह सत्य है कि वैदिक मन्त्र जितने शक्तिसम्पन्न हैं, उनकी साधना उतनी ही दुरूह और दुष्कर है। इसीलिए वेदोक्त मन्त्रों के स्थान पर तन्त्र शास्त्र आज किंचित् सहज करणीय समझा जाता है। इस तथ्य के विस्तार में जाना इसलिए अप्रासंगिक होगा क्योंकि इस लेख की केन्द्रीय वस्तु है कि कन्या के विवाह में विलम्ब होने पर किन मन्त्रों के प्रयोग से आशानुकूल सफलता उपलब्ध होगी। अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि कन्या के विवाह में आने वाली अनेकानेक बाधाओं की परिशान्ति मन्त्रशक्ति से सुनिश्चित है।

इससे पूर्व, कि विलम्ब—विवाह के विभिन्न आयामों के सन्दर्भ में मन्त्रशक्ति का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया जाय, संक्षेप में उन ज्योतिषीय कारणों का उल्लेख समीचीन रहेगा जो विवाह को उसके सटीक समय से परे कर देते हैं।

जन्मांग में शनि की स्थिति, शनि द्वारा प्रचालित संस्थित राशियाँ, नक्षत्र और भाव आदि का सतर्क अध्ययन करना चाहिए। यदि शनि शुक्र से युक्त होकर, सूर्य अथवा चन्द्र किसी एक ग्रह पर दृष्टि निक्षेप करता हो तो विवाह में विलम्ब होता है। यदि सूर्य अथवा चन्द्र या दोनों संयुक्त रूपेण शनि के नवांश में संस्थित हों और शुक्र भी शनि से आक्षिप्त हो तो विवाह में आशा से विपरीत विघ्न समुपस्थित होते हैं। सप्तम भाव अथवा लग्न के पापग्रहाक्रांत होने पर पापकर्तरि योग की स्थापना होती है जिसके परिणामस्वरूप दाम्पत्य अनेकानेक संकटों से घिर जाता है। लग्न, सप्तम भाव अथवा इनके अधिपति ग्रह यदि सूर्य और शनि, शनि और मंगल, शनि और राहु, राहु और सूर्य जैसे अशुभ ग्रहों से आबद्ध होते हैं तो विवाह की दिशा में विलम्ब अथवा निषेध जैसे संकेत प्राप्त होते हैं। विवाह में अप्रत्याशित विलम्ब तब भी होता है जब लग्नाधिपति, सप्तमाधिपति, चन्द्रराशि-अधिपति और स्वयं चन्द्र शनि से दृष्ट, युक्त अथवा द्वादश भावस्थ होते हैं। वक्री ग्रह की सप्तम भाव अथवा सप्तम भावेश पर दृष्टि और इन्हीं स्थितियों में द्वितीय भाव या शुक्र संस्थित हो तो विवाह विलम्बित होता है। पंचमेश और सप्तमेश का परस्पर परिवर्तन योग संस्थापित हो अथवा राहु और शुक्र सप्तम अथवा नवम भावस्थ हों तथा दुष्ट ग्रह की दृष्टि का कुसंयोग हो तो विवाह में ज्योतिषीय दृष्टि से विलम्ब की घोषणा की जा सकती है।

मन्त्रशक्ति के व्यावहारिक प्रतिपालन से पूर्व उपरिलिखित तथ्यों का सटीक विश्लेषण अनिवार्य है। इसके पश्चात् ,मन्त्रसाधना के पूर्व की कुछ आवश्यक सावधानियां उद्धृत हैं—

अनुकूल मन्त्र चयन

मन्त्र द्वारा अभिलाषापूर्ति के पूर्व अनुकूल मन्त्र का चयन एक अपरिहार्य प्रारंभिक सावधानी है। मन्त्र आपकी प्रकृति और आपकी ज्योतिषीय संरचना के उपयुक्त होना चाहिए। प्रतिकूल मन्त्र स्थिति में अपेक्षित सुधार के स्थान पर, अनपेक्षित व्याघात उपस्थित कर सकता है। मन्त्र प्रारम्भ करने वाले जातक और मन्त्र के तत्व का समानधर्मा होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, अग्नि तत्त्व वाले जातक को जल तत्त्व से संबद्ध मन्त्र से पर्याप्त हानि हो सकती है। अनुकूल मन्त्र चयन के लिए अनेकानेक शास्त्रीय, लोकसम्मत पद्धतियाँ प्रचलित हैं जिनमें कुलाकुल चक्र प्रमुख है। यहाँ संक्षेप में कुलाकुल चक्र के विषय में किंचित परिचय प्रस्तुत है—

जातक जिस मन्त्र की साधना करना चाहता हो उसका तथा साधना करने वाले के नाम का पहला अक्षर दोनों यदि एक ही कुल के हों तो यह मन्त्र निश्चित फल देने वाला होता है। मन्त्र और उसके उपासक की प्रकृति में समानता होने से सफलता की संभावनायें अधिक रहती हैं।

यदि इन वर्णों में प्रकृति साम्यता न हो तो फिर प्रकृति मैत्री देखनी चाहिए। इसे जानने के लिए कुलाकुल-चक्र के अनुसार पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्वों में किन-किन तत्त्वों की किस-किस तत्त्व के साथ मित्रता है, यह देख लेना चाहिए। साधक और साध्य मन्त्र के अक्षरों में प्रतिकूलता वाले मन्त्रों की साधना फलदायी नहीं होती।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पाँचों तत्त्वों में वर्णमाला के वर्णों को बाँटकर कुलाकुल चक्र की रचना की गयी है। जिसमें पृथ्वी, जल आदि तत्त्वों की आकाश-तत्त्व के साथ मैत्री है और वायु तत्त्व का पृथ्वी तत्त्व शत्रु है तथा अग्नि तत्त्व के जल तत्त्व और पृथ्वी तत्त्व शत्रु हैं।

जिस प्रकार एक ही औषधि के अनेक विकल्प होते हैं उसी प्रकार एक ही साधना के लिए अनेक मन्त्र हैं, इसलिए मन्त्रों के चयन में विशेष कठिनाई नहीं होती—

कुलाकुल चक्र

तत्व	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
	उ ऊ औ ग	ऋ ॠ औ घ	इ ई ऐ ख	अ आ ए	ऌ ॡ अं
वर्ण	ज ड न	झ ढ ध	छ ठ थ	च ट त	ङ त्र न
	व छ ल	भ व स	फ र क्ष	क प य	म श ह
				ष	

तत्वमैत्री चक्र

तत्त्व	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
मित्र	आकाश जल	आकाश पृथ्वी	आकाश वायु	आकाश अग्नि	अन्य चारों तत्त्व
शत्रु	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी	×

कुलाकुल चक्र के अतिरिक्त राशि चक्र, अकड़म चक्र, नक्षत्र चक्र और अघटक चक्र द्वारा भी अनुकूल मन्त्र का निश्चय किया जा सकता है।

मंत्रोच्चारण

मन्त्र का शुद्ध उच्चारण एवं उचित ध्वनि सहित बलाघात मन्त्र के प्रभाव को प्रभविष्णुता प्रदान करता है। आज तो ध्वनि विज्ञान के विषय में अनेकानेक क्रान्तिकारी और आश्चर्यजनक शोध कार्य सम्पन्न हो चुके हैं। यह एक स्वतन्त्र लेख का विषय है। इसके प्रामाणिक अनुभव के लिए हरिद्वार स्थित आचार्य श्रीराम शर्मा का आश्रम एक आदर्श स्थान है। मंत्रोच्चार के समय वाक्दोष, यति दोष, विराम दोष आदि का पूर्ण विचार आवश्यक है। इस प्रक्रिया में शब्द, ध्वनि और लय का विशेष महत्व है।

महार्थमंजरी के अनुसार :—

मननमयी निजविभवे निजसंकोचमये त्राणमयी।
कवलितविश्वविकल्पा अनुभूतिः कापि मन्त्रशब्दार्थः॥

विनियोगादि

मन्त्रोपासना की प्रारम्भिक बातें विनियोग, न्यास और संकल्प आदि हैं, जिन्हें किसी अधिकारी गुरु या आचार्य से पूछना उचित होगा। इस लेख में इसके निमित्त अवकाश नहीं।

संशयात्मा विनश्यति

गोस्वामी तुलसीदास ने मन्त्र के विषय में मत संस्थापित किया है कि—

मंत्र परमलघु जासु बल, विधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब॥

किन्तु मन्त्र द्वारा सम्यक् लाभ सम्प्राप्ति हेतु उसमें श्रद्धा और विश्वास अत्यन्त आवश्यक है। अनास्थापूर्वक किया गया कोई भी मन्त्र सिद्धि अथवा फल की सीमा तक नहीं पहुँचता। मन्त्र की अपरिसीम शक्ति के प्रति हृदय में अगाध आस्था होनी चाहिए। पिंगलामत के अनुसार—

मननं विश्वविज्ञानं, त्राणं संसारवन्धनात् ।
यतः करोति संसिद्धिं, मन्त्र इत्युच्यते ततः ॥

इस आवश्यक वर्णन विस्तार के अनन्तर अव मन्त्रों का उल्लेख प्रस्तुत है—

पुराकाल से भारतीय जनजीवन वेदजननी गायत्री की अलौकिक शक्ति का श्रद्धालु रहा है; सभी वर्ग और वर्ग के मनुष्य इससे लाभान्वित होते हैं। सौभाग्य संप्राप्ति एवं मनोनुकूल वर के हेतु गायत्री–उपासना एक अमोध उपाय है—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

कुमारी कन्याओं को उत्तम वर शीघ्र प्राप्त हो इसके लिए सर्वाधिक प्रचलित और अनुभव सिद्ध प्रयोग आग्नेय महापुराण के गौरी प्रतिष्ठा विधि नामक ९८वें अध्याय का है। इस अध्याय में दी गई विधि के अनुसार जपादि करने से ७२ दिन से लेकर १८० दिन के भीतर विवाह निश्चित ही हो जाता है।

श्री गौरी प्रतिष्ठा विधि और जपादि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! अव मैं पूजा सहित गौरी की प्रतिष्ठा का वर्णन करूँगा, सुनो। पूर्ववत् मण्डप आदि की रचना करके देवी की स्थापना एवं शय्याधिवासन करें। पूर्वोक्त मन्त्रों और मूर्त्यादिकों का न्यास करके आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व की परमेश्वर में स्थापना करें। तदनन्तर पराशक्ति का न्यास, होम और जप पूर्ववत् करके क्रियाशक्ति–स्वरूपिणा पिण्डी का संधान करें। इस विधि से पिण्डी की स्थापना करके उसके ऊपर देवी को स्थापित करें।

वे देवी परम शक्तिस्वरूपा हैं। उनका अपने ही मन्त्र से सृष्टि-न्यासपूर्वक स्थापन करें। तदनन्तर, पीठ में क्रियाशक्ति का और देवी के विग्रह में ज्ञानशक्ति का न्यास करें। इसके वाद सर्वव्यापिनी शक्ति मां–का आवाहन करके देवी की प्रतिमा में उसका नियोजन करें। फिर 'शिवा' नाम वाली अम्विका देवी का स्पर्शपूर्वक पूजन करें।

पूजा के मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ आं आधार शक्तये नमः ॐ कूर्माय नमः ।
ॐ स्कन्दाय नमः ॐ ह्रीं नारायणाय नमः ॥

ॐ ऐश्वर्याय नमः । ॐ अधश्छदनाय नमः । ॐ पद्मासनाय नमः ।

तदनन्तर केसरों की पूजा करें। तत्पश्चात् ।
'ॐ ह्रां कर्णिकायै नमः । ॐ क्षं पुष्कराक्षेभ्यो नमः ॥

इन मन्त्रों द्वारा कर्णिका एवं कमलाक्षों का पूजन करें। इसके वाद 'ॐ ह्रां पुष्टयै नमः । ॐ ह्रीं ज्ञानायै नमः । ॐ ह्रूं क्रियायै नमः ।'

इन मन्त्रों द्वारा पुष्टि. ज्ञान एवं क्रिया-शक्ति का पूजन करें।

'ॐ नालाय नमः। ॐ रुं धर्माय नमः। ॐ रूं ज्ञानाय वै नमः। ॐ वैराग्याय नमः। ॐ वै अधर्माय नमः। ॐ रूं अज्ञानाय वै नमः। ॐ अवैराग्याय वै नमः। ॐ अनैश्वर्याय नमः।

इन मन्त्रों द्वारा नाल आदि की पूजा करें।

ॐ ह्लूं वाचे नमः। ॐ ह्लूं रागिण्यै नमः। ॐ ह्लूं ज्वालिन्यै नमः। ॐ ह्लीं शमायै नमः। ॐ ह्रूँ ज्येष्ठायै नमः। ॐ ह्लीं रीं क्रीं नवशक्त्यै नमः। ॐ गौं गौर्यासनाय नमः।

इन मन्त्रों द्वारा वाक् आदि शक्तियों की पूजा करें।

ॐ गौं गौर्यासनाय नमः। ॐ गौरीमूर्तये नमः।

अब गौरी का मूल मन्त्र बताया जाता है—

ॐ ह्लीं सः महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः।
ॐ गां हृदयाय नमः, ॐ गीं शिरसे स्वाहा।
ॐ गूं शिखायैः वषट्। ॐ गैं कवचाय हुम्।
ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ गः अस्त्राय फट्।

इन मन्त्रों से शिखा आदि का न्यास करें।

ॐ गौं विज्ञानशक्तये नमः। ॐ गूं क्रियाशक्तये नमः।

इन मन्त्रों से विज्ञान और क्रियाशक्तियों की पूजा करें, पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि देवताओं का पूजन करें।

जैसे कि इनके मन्त्र पहले बताये गये हैं।

"ॐ सुं सुभगायै नमः।" इससे सुभगा का, "ॐ ह्लीं ललितायै नमः।' से ललिता का पूजन करें।

ॐ ह्लीं कामिन्यै नमः, ॐ ह्लुं काममालिन्यै नमः।

इन मन्त्रों से गौरी की प्रतिष्ठा, पूजा और जप करने से उपासक सब कुछ पा लेता है।

इस प्रकार माँ गौरी देवी की सविधि प्रतिष्ठा के पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों में से किसी का जप प्रतिदिन एकाग्रता निष्ठा और विश्वासपूर्वक करें।

ॐ ह्लीं सः महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः।

ॐ ह्लीं गौर्यै नमः

अथवा

[1]हे गौरि शङ्करार्धाङ्गि यथा त्वं शङ्करप्रिया।
तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम् ॥

इन मन्त्रों की बताई गई विधि अनुसार जप करने से शीघ्र ही उत्तम अनुकूल एवं सच्चरित वर की प्राप्ति होती है। यह अनेकों बार का परीक्षित प्रयोग है।

आकाश तत्त्व के मन्त्र समस्त कन्याओं के लिए करणीय हैं। मन्त्र जप से पूर्व माँ गौरी की श्रद्धापूर्वक अर्चना करनी चाहिए।

[2]ॐ अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मानयति कश्चन।
ससत्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥

पृथ्वी तत्त्व प्रमुख यह मन्त्र आकाश और जल तत्त्व प्रधान जातकों के लिए हितकर और वायु तत्व प्रधान जातकों के लिए वर्जित है। दुर्गा सप्तशती से संपुटित करके इस मन्त्र का स्वयं पाठ करना चाहिए या किसी सुयोग्य पंडित से कराना चाहिए।

[3]कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि! पतिं मे कुरु ते नमः ॥

देवी पार्वती की अर्चना करके उनके समक्ष एक माला के नैत्यिक जप द्वारा शीघ्र विवाह की स्थितियाँ उत्पन्न करने वाला यह मंत्र वायु तत्त्व से परिपूर्ण होने के कारण आकाश और अग्नि तत्त्व वालों के लिए विधेय और पृथ्वी तत्त्व प्रधान जातकों के लिए निषिद्ध है। इस मन्त्र से लाभान्वित एक जातिका मेरे परिचय क्षेत्र में है। एक मध्यवर्गीय परिवार से सम्बद्ध, १८ वर्षीय साधारण आकृति प्रकृति वाली, साधारण शिक्षित, किंचित् श्याम वर्णा जातिका एक स्मार्ट, गौर वर्ण, रूपवान्, अत्यन्त धनवान् दीर्घ देहयष्टि वाले पुरुष से जिसकी मासिक आय ३६,००० रुपये प्रतिमास थी, प्रेम करती थी और विवाहेच्छुक थी, यह आसक्ति पुरुष पक्ष की ओर से क्षीण थी। पर्याप्त सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक और सांस्कृतिक असमानताओं के कारण हताश जातिका जब मेरे पास आई तो सविस्तार उसकी समस्या सुनने के बाद मैंने उसे सविधि इस मन्त्र का जप वतलाया। आज यह जातिका अपने मनोवांछित पति के साथ अत्यन्त वैभवशाली जीवन व्यतीत कर रही है।

---

१. हे गौरी, शङ्कर की अर्द्धाङ्गिनी! जिस प्रकार तुम शङ्कर की प्रिया हो, उसी प्रकार हे कल्याणी! मुझ कन्या को दुर्लभ वर प्रदान करो।
२. माँ पार्वती के अनेक नामों की उपासना।
३. हे कात्यायनि, महामाया, महायोगिनियों की अधीश्वरि! मुझे भगवान् कृष्ण सदृश पति प्रदान करो। तुम्हें नमस्कार है।

इस सन्दर्भ में एक अत्यन्त रोचक संस्मरण है। जिस समय मेरा पुत्र के० जी० में अध्ययन करता था; उसकी चार शिक्षिकायें किन्हीं सूत्रों से मेरे विषय में परिचय प्राप्त कर मेरे पास आईं चारों अविवाहित थीं उन चारों के जन्मांग के निरीक्षणोपरांत मैंने उनको पृथक्-पृथक् मन्त्र बतलाये और प्रतिदिन १०८ बार जप करने का निर्देश दिया। उनमें से एक शिक्षिका ने जो उच्च शिक्षिता और संपन्न परिवार की थी, मात्र २८ जप संख्या स्वीकार की। परिणामस्वरूप छः महीने के भीतर उनको छोड़कर शेष तीन का विवाह हो गया। जब वह विक्षुब्ध होकर मेरे पास आई तो मैंने उनसे कहा कि उचित औषधि उचित मात्रा में लेने पर ही लाभ पहुँचाती है। इसके उपरान्त उन्होंने गंभीरतापूर्वक १०८ बार उनके हेतु निर्दिष्ट मंत्र का प्रतिदिन जप आरम्भ किया। फलतः शीघ्र ही उनका विवाह उच्च पदासीन व्यक्ति से हो गया। चारों शिक्षिकाओं को निर्दिष्ट मन्त्र अधोलिखित हैं—

[1]ॐ देवेन्द्राणि नमस्तुभ्यं देवेन्द्रप्रियभामिनि।
विवाहं भाग्यमारोग्यं शीघ्रं लाभं च देहि मे॥

इस मन्त्र का जप करने से पूर्व तुलसी-पादप की १२ परिक्रमायें तदनन्तर दाहिने हाथ से दुग्ध और बाँयें हाथ से जल द्वारा श्री सूर्यनारायण को १२ बार समन्त्र अर्घ्य दें। तदनन्तर जप करें।

[2]ॐ शङ्कराय सकलजन्मार्जितपापविध्वंसनाय।
पुरुषार्थचतुष्टयलाभाय च पतिं मे देहि कुरु कुरु स्वाहा॥

अशुभ ग्रहों से पीड़ित एवं आर्थिक दुश्चिन्ताओं के कारण विघ्नता जातिका को शिव-पार्वती का सविधि अर्चन करना चाहिए। फिर केले के पौधे पर मौली की ११ आवृत्तियाँ लपेट कर इस मंत्र का जप करें। जपसमाप्ति पर पौधे की परिक्रमा करें। इसका शीघ्र एवं सुखद फल प्राप्त होता है।

[3]ॐ ह्रीं ह्रीं सूर्याय सहस्रकिरणाय।
मनोवांछितं देहि देहि स्वाहा॥

---

१. ॐ देवेन्द्राणि ! देव इन्द्र की प्रिय पत्नी ! तुम्हें नमस्कार है। मुझे विवाह, भाग्य, आरोग्य और शीघ्र लाभ प्रदान करें।

२. हे समस्त जन्मों में अर्जित पापों के विध्वंसक भगवान शङ्कर ! पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए पति प्रदान करो। नमस्कार है, नमस्कार है।

३. ॐ ! सहस्ररश्मि सम्पन्न सूर्य के निमित्त स्वाहा ! मुझे अभिलषित प्रदान करें। अपने इष्टदेव के चित्र के अभिमुख होकर शुद्ध मन और तन से इस मंत्र का जप करने से अभिलाषानुकूल प्रति प्राप्ति होती है।

यह अत्यन्त सूक्ष्म मंत्र हैं प्रातःकाल नित्यक्रियाओं के उपरान्त निराहार एवं निर्मल अवस्था में पूर्व दिशा की ओर अभिमुख होकर विधिवत् समंत्र अर्चन करें एवं चार बार अर्घ्य अर्पण करें। तदुपरान्त गुड़ का नैवेद्य समर्पित करके एक पाद पर उत्तिष्ठ रहकर १०८ वार उपरिलिखित मंत्र का जप करें। जपान्त में मनोवांछित वर उपलब्धि के लिए सूर्यदेव से प्रार्थना करें। रविवार के दिन एक समय दूध, चावल एवं चलनी प्रयुक्त भोजन ग्रहण करें। सानुष्ठान इस मंत्र का प्रयोग अद्भुत चमत्कृत करने वाला सिद्ध हुआ है।

[1]ॐ अयमायात्यर्यमा पुरस्ताद्विषितस्तु यः।
अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये॥
अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती।
अङ्गो न्वर्यमन्नसा अन्याः समनमायति॥
धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम्।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम्॥

मन्त्रवत् प्रयोज्य "श्री मंगलचंडिका स्तोत्र" एक अद्भुत शक्ति उत्स है। पंचमुख दीपक के साक्ष्य में पति अभिलाषिणी मंगली जातिका को १०८ आवृत्तियों में अधो-लिखित पंक्तियों का जप करना चाहिए :—

[2]रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके।
हारिके विपदां राशौ हर्षमङ्गलकारिके॥
हर्षमङ्गलदक्षे च हर्षमङ्गलदायिके।
शुभे मङ्गलदक्षे च शुभे मङ्गलचण्डिके॥

---

१. जो सूर्य रश्मियाँ पूर्व दिशा में उग रही हैं, वे सूर्य इस स्त्री रहित पुरुष को स्त्री और कन्या के लिए पति प्रदान करने की इच्छा से उदय हो रहे हैं। प्रतिव्रता स्त्रियों ने जिस शान्ति कर्मों को किया था, उन्हें करती हुई यह पति अभिलाषिणी कन्या, पति के प्राप्त न होने पर दुःखित है। अर्यमा ! अन्य स्त्री भी इसके निमित्त शान्ति कर रही है। अखिल विश्व के धारक विधाता ने पृथ्वी को स्थापित कर द्युलोक और सविता को सूर्यमण्डल में स्थापित किया है। वे संसार के नियन्ता ही इस कन्या के लिए काम्य पति प्रदान करें।

२. जगन्माता–पिता, देवि कल्याणकारी चंडिका, विपत्ति समूह–संहर्तृ, हर्ष-मंगल करने वाली, हर्ष-कल्याण में निपुण, हर्ष व मंगल प्रदान करने वाली शुभ-मंगल-सुदण्डा, शुभ मंगल में चंडिकास्वरूप, मंगल में मंगल के योग्य सर्वविध मंगल में मंगलकारी, सभी को सदैव मंगल प्रदान करने वाली मंगलसदन देवि कृपा करो।

मङ्गले मङ्गलार्हे च सर्वमङ्गलमङ्गले।
सदा मङ्गलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये ।।

प्रत्येक शुक्रवार को संध्याकाल पंचमुख दीपक के समक्ष नियमित रूपेण श्रद्धा-संयुक्त होकर "पार्वती स्वयंवर श्लोक" का उचित अथवा गुरु-निर्दिष्ट विधि से पाठ करने पर जातिका को मनोनुकूल एवं समयानुकूल वर-प्राप्ति होती है :—

[२]बालार्कायुतसत्प्रभां करतले लोलाम्रुमालाकुलां
मालां सन्दधतीं मनोहरतनुं मन्दस्मिताधोमुखीम् ।।
मन्दं मन्दमुपेयुषीं वरयितुं शम्भुं जगन्मोहिनीं
वन्दे देवमुनीन्द्रवन्दितपदामिष्टार्थदां पार्वतीम् ।।

पति सुख प्राप्ति मंत्र अपने शीघ्र प्रभाव के लिए वर्षों से आचार्यानुमोदित है। इस मंत्र का ४८ दिवसों तक नित्य १०८ आवृत्ति में जप करने से फल प्राकट्य होता है। उत्तर अथवा उत्तरपूर्व दिशाभिमुख काष्ठासन पर आसीन होकर इसे सम्पन्न करना चाहिए। मन्त्रानुष्ठान के समय कर्ता को पीतवर्ण अथवा लोहितवर्ण के वस्त्र अवधारित करने चाहिए और ललाट पर तिलक लगाना चाहिए। जप की सम्पूर्ण अवधि में पीतल अथवा चाँदी के पात्र में शुद्ध घी आपूरित दीपक प्रज्ज्वलित करना चाहिए। अर्पित किये जाने वाले पुष्प पीत वर्ण के हों, किशमिश का नैवेद्य निवेदित करें। न्यूनतम १०८ वार मन्त्रोच्चारण के अनंतर अंजलि में जल भरकर एक वार मंत्रोच्चारण करके जल को भूमि पर छोड़ देना चाहिए। मंत्र अधोलिखित हैं :—

[१]सिन्धूरपत्रं रतिकामदेहं
दिव्याम्बरं सिन्धुसमीहिताङ्गम् ।।
सान्ध्यारुणं धनुःपंकजपुष्पवाणं
पंचायुधं भुवनमोहनमोक्षणार्थम् ।।
फ्लैं मन्मथाय। महाविष्णुस्वरूपाय।
महाविष्णुपुत्राय। महापुरुषाय।
पतिसुखं मे शीघ्रं वेहि देहि ।।

---

२. मनोहर तन पर माला धारण करती हुई, मन्द मुस्कराने वाली, शंकर को वरण करने के लिए धीरे-धीरे जसती हुई, जगत मोहक एवं देव-मुनि वंदित माँ पार्वती के चरणों की अभीष्ठ प्राप्ति के लिए वन्दना है।

१. दिव्यवस्त्रों से युक्त, मुग्धकारी अंगों वाले, सिन्धूर पत्र और कामदेव के समान देह वाले रति, लाल कमल के धनुष पर चढ़े, मोहित करने वाले पुष्पवाणों से मुक्ति के लिए, महाविष्णु स्वरूप, महाविष्णु के पुत्र, महापुरुष मन्मथ, मुझे शीघ्र पति-सुख प्रदान करो।

निम्नलिखित मंत्र विवाह सम्पन्न होने के विभिन्न चरणों में नितान्त आशुफलदायक है। यथा सगाई के पश्चात्, धनावरोध-निवारण के निमित्त, आदि, निम्नलिखित पंक्तियों का विधिविहित अनुष्ठान करना चाहिए समग्र सृष्टि में सर्वविध मोह के संचार करने वाले काम को शक्ति प्रदान करने वाली माँ भगवती के अद्वितीय प्रभाव को अभिव्यंजित करने वाला निम्नलिखित श्लोक विधिविहित-अनुष्ठानित होने पर आशुफलप्रदायक सिद्ध हुआ है—

[1]हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत् ॥
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ॥

माँ भगवती अक्षत सौभाग्य सम्पन्न हैं। भगवान् शिव हलाहल पान करके भी अघट आयुष्क्रम परिपूर्ण हैं। भारतीय संस्कृति में अखण्ड अभंग सुहाग की प्राप्ति के लिए नारियाँ अनादि काल से माँ की अर्चना आराधना कर रही हैं। प्रस्तुत श्लोक में माँ के कर्णफूलों का उल्लेख है, जो सुहाग के प्रतीक चिन्ह हैं—

[2]सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरणीं
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः ॥
करालं यत्क्ष्वेलं (डं) कवलितवतः कालकलना।
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ताटंकमहिमा ॥

माँ भगवती की शरण अनुग्रह और आशीष की वत्सलछांह है। तेजस्वी हाथों में इक्षुधनु, पंचविशिख, अंकुश एवं पाश धर्ता अखिल सृष्टि-जननी अनन्यभाव से अपनी शरण में आये जातक की हृदय स्थित वांछाओं को पूर्ण करती हैं। अधोलिखित मन्त्र इस दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है, इसमें भुक्ति-मुक्ति प्रदाता मन्त्र "ऐं क्लीं सौः"— भी संकेतित है—

---

१. वन्दना करने वालों को सौभाग्य प्रदानकरनेवाली हे देवि ! तुम्हारी आराधना करके पूर्वकाल में विष्णु ने नारी (मोहिनी) रूप धारण कर पुररिपु (शिव) को भी क्षुब्ध कर दिया था, कामदेव भी तुम्हें नमस्कार करके ही रति के कटाक्षों द्वारा बड़े-बड़े मुनियों के चित्त को मोहित करने में समर्थ होता है।

२. भय, जरा और मृत्यु को हरने वाले अमृत को पीकर भी ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी देवता विपत्तियों को प्राप्त हुए और कराल हालाहल विष को पीकर भी मृत्युञ्जय हुए शिव सदाशिव बने हैं। हे जननि ! यह शिव की अपनी क्षमता नहीं बल्कि तुम्हारे ताटंक की महिमा है।

[1]त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवरा भीत्यभिनया ॥
भयात्त्रातुं दातुं कमपि च वांछासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥

: शीघ्र विवाहार्थ सिद्ध गन्धर्वराज मन्त्रोपासना :

अब यहाँ एक अति विशिष्ट प्रयोग बताते हैं। यह मन्त्र कन्याओं के उत्तम और शीघ्र विवाह के लिए अति श्रेष्ठ और रामबाण सिद्ध हुआ है। जब अन्य मन्त्रोपासना के उपरान्त विवाह न हो तो निम्नांकित मन्त्र का निष्ठापूर्वक दस हजार जप करना चाहिए। मन्त्रोपासना से पूर्व पूर्वांकित विधि से षोडशोपचार पूजन करना चाहिए। पूजन से पूर्व गन्धर्वराज का ध्यान करना चाहिए और अग्रांकित श्लोक ध्यान की स्थिति में करना चाहिए।

गन्धर्वराज ध्यानम्

कन्यावृक्षसमासीनं उद्यदादित्यसंनिभम्।
अंकस्थकन्या-गधर्व विश्वावसुप्रभुं स्मरेत् ॥

विनियोग :—

"ॐ अस्य श्री गन्धर्वराजमंत्रस्य कामदेव ऋषिः विराट् छन्दः कन्याप्रदः श्री गन्धर्वराजो देवता क्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः अमुकस्य अभिलषित कन्याप्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः"

यह कहकर निम्नलिखित अंगन्यास करें—

ॐ क्लीं विश्वावसुनाम गन्धर्वः हृदयाय नमः।
ॐ क्लीं कन्यानामधिपतिः शिरसे स्वाहा।
ॐ क्लीं लभामि देवदत्तां शिखायै वषट्।
ॐ क्लीं कन्यां सुरूपां कवचाय हुं।
ॐ क्लीं सालंकारां नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ क्लीं तस्मै विश्वावसवे स्वाहा अस्त्राय फट्।

इसके बाद निम्नलिखित अंगुल्यादिन्यास करें—

ॐ क्लीं विश्वावसुर्नाम गन्धर्वः अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ क्लीं कन्यानामधिपतिः तर्जनीभ्यां नमः ॥

---

१. दोनों हाथों से अभय वर प्रदान करने वाली तुम ही एक नहीं हो, तुमसे अतिरिक्त अन्य देव भी हैं, ऐसा कहने पर भी भय से रक्षा और इच्छित फल से अधिक प्राप्ति हेतु लोग तुम्हारे चरणों में ही शरण लेते हैं।

ॐ क्लीं लभामि देवदत्तां मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ क्लीं कन्यां सुरूपाम् अनामिकाभ्यां नमः ॥
ॐ क्लीं सालंकारां कनिष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ क्लीं विश्वावसवे स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥

गन्धर्वराज मन्त्र

ॐ क्लीं विश्वासुर्नाम गन्धर्वः कन्यानामधिपतिः
लभामि देवदत्तां कन्यां सुरूपां सालंकारां तस्मै विश्वावसवे स्वाहा ।''

दस हजार मन्त्रोपासना करने के पश्चात् हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन, मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।

विवाह सिद्धिदायक मन्त्र

भुवनेश्वरीध्यानम् :—

बालार्कद्युतिमिन्दुकिरीटां
तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मरेमुखी वरदाङ्कुशपाशा-
म्भोजकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

मन्त्र :—

''ॐ वल्लिप्रेयसी स्वाहा''

इस मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये । मन्त्रारम्भ किसी शुभ मुहुर्त में प्रारम्भ करना चाहिये और नवरात्रि तक जप करते रहना चाहिये । नवरात्रि में हवन, तर्पण अर्चनादि करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।

स्वयंवर कला मन्त्र :—

इस मन्त्र का दस हजार जपकर हवन करें । मन्त्र जप किसी भी शुभ मुहूर्त में प्रारम्भ कर दें । नवरात्रि तक विवाह कार्य में सफलता मिलती है ।

''ॐ ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगभयंकरि
सकलस्थावरजंगमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षयाकर्षय स्वाहा ।''

विजयसुन्दरी मन्त्र :—

इस मन्त्र का सात दिन तक एक-एक हजार जप नित्य करने से वर कन्या से दूर हो या कन्या वर से दूर हो जो भी इस जप को करेगा उसे वहीं बैठे सिद्धि मिलेगी । जप से आठवें दिन सफलता मिलती है ।

"ॐ विजयसुन्दरी क्लीं"

कुमार मन्त्र :—

इस मन्त्र का एक हजार वार जप करें जिस वर का ध्यान करके कन्या इस मन्त्र का जप करेगी वह उसे शीघ्र प्राप्त होगा ।

"ॐ ह्री कुमाराय नमः स्वाहा"

वशीकरण मन्त्र :—

इस मन्त्र को एक हजार जपें और रोली, चन्दन, गोरोचन तथा कपूर गौ के दूध में घिसकर तिलक लगाकर घर से निकलें । बाहर जाने से काम सिद्ध होता है ।

"ॐ ह्री सः अमुकं मे वशमानय स्वाहा ।"

उपरिलिखित मन्त्रों के अतिरिक्त अनेकानेक मन्त्र ऐसे हैं जो श्रद्धानुसार ५, ११ अथवा २१ मालाओं की संख्या में जप करने पर अपना अपेक्षित फल प्रदान करते हैं, उनमें से कुछ अति विशिष्ट मन्त्र उद्धृत हैं :—

(i) स देवि नित्यं परितप्यमानः त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।
दृढव्रतो राजसुतो महात्मा तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥

(ii) महा महा इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टि टमारंड इव ।
उपयामगृहीतोसि महेन्द्रायत्वेष ते योनिम्महिन्द्राय त्वा ॥

(iii) अपां गम्भन्त्सीदमनत्वा सूर्यामिताप्सीन्नभामिर्वैश्वानरः ।
अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनुवीक्षस्वानुत्वादिव्या वृष्टिः ॥

पुरुषों के विवाह के लिए कुछ साधनाएँ

इस विषम काल में मात्र कन्याओं के विवाह की ही समस्या नहीं है । जातकों के सन्दर्भ में भी अनेकानेक पीड़क परिस्थितियाँ आकार प्राप्त करती हैं । उचित कुल, शील, स्तर एवं सामाजिक प्रतिष्ठा को दृष्टिकोण में रखते हुये जब वधू-चयन किया जाता है तो निश्चितरूपेण स्थिति सहज-सरल नहीं रहती । इसका समाधान करने के लिए मंत्रावलंव एक शुद्ध माध्यम है । इस सन्दर्भ में अनुष्टुप छन्द में निबद्ध और इन्द्र का अधिपतित्व ग्रहण करने वाले निम्नलिखित मन्त्र का सम्यक् अनुष्ठान परिणय-त्वतरिता के लिए प्रसिद्ध है—

[1]आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥

---

१. आते हुये व आये हुये इन्द्र की प्रसन्नता के लिये (मैं) वृत्रसंहारक आदि नाम से सम्बोधन करता हूँ और विवाह की कामना वाला हूँ । मैं शतकर्मा इन्द्र से सुयोग्य पत्नी की याचना करता हूँ ।

[1]येन सूर्या सावित्रीमश्विनोहतुः पथा ।
तेन मामब्रवीद्भगो जायाया वहतादिति ॥

यस्तेऽङ्कुशो वासुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जाया मह्यं धेहि शचीपते ॥

पुरुषों के लिए विशिष्ट प्रयोग

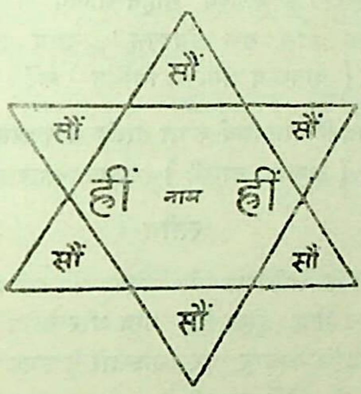
१—प्रातःकाल शुद्ध होकर दुर्गाजी के चित्र पर लाल पुष्प समर्पित करें, दीप प्रज्वलित करके षोडशोपचार पूजन करें तथा निम्नांकित मन्त्र का १०८ बार जप करें । यह प्रयोग विवाह संपन्न होने तक करें—

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥

प्रयोगावधि में उद्दिष्ट का निरन्तर ध्यान रखें । इसी मन्त्र से दुर्गासप्तशती के १८ अथवा ३६ सम्पुट पाठ करने अथवा किसी योग्य ब्राह्मण द्वारा करवाने से शीघ्र ही सुयोग्य, सुन्दर व सुचरित्र पत्नी प्राप्त होती है ।

मनोवांछित भार्या प्राप्ति यन्त्र प्रयोग

ॐपुरकाख्य यन्त्र



१. मुझ विवाह की इच्छा वाले पुरुष को इन्द्र भग प्रदान करें । सविता की अनुकम्पा से अश्विनी कुमारों ने जिस मार्ग से सूर्या, सावित्री आदि को विवाह द्वारा प्राप्त किया, उसी मार्ग से मुझे भी विवाह निमित्त सुन्दर स्त्री प्राप्त होवे । हे शचीपति इन्द्र ! तुम्हारा धन को धारण करने वाला जो हाथ है, उसके द्वारा, मुझ पुत्राभिलाषी को सुयोग्य व सुन्दर पत्नी दो ।

उपर्युक्त यन्त्र को ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कराके अथवा भोजपत्र पर अष्टगन्ध से लिखकर पंचोपचार पूजन करें। तत्पश्चात् सविधि संकल्प लें। संकल्प भाषा अग्रांकित है—नाम के स्थान पर मनोवांछित कन्या का नाम लिखें। तदुपरान्त संकल्प लें…… …………अमुक गोत्रोत्पन्नो अमुक शर्मा ऽहं… …………………(अमुक) कन्या प्राप्त्यर्थे विश्वावसुगंधर्वराजमन्त्रस्य जपमहं करिष्ये।

विनियोग भाषा

"ॐ अस्य श्री राजगन्धर्वमन्त्रस्य, मदनऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, राजगन्धर्वो देवता। ॐ वीजं, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम् ममकृते (अमुक) कन्या शीघ्र प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः।"

न्यास भाषा

"ॐ विश्वावसो अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ राजगन्धर्व तर्जनीभ्यां नमः। ॐ कन्यां सालंकृतां मध्यमाभ्यां नमः। ॐ सहस्रसंवृतां अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ममाभीप्सितां (अमुकी) कन्यां कनिष्ठिकाभ्यां नमः। प्रयच्छ-प्रयच्छ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। इत्थं हृदयादिन्यासं कृत्वा।

इसके पश्चात् कामरति के त्रैलोक्य मोहन सौन्दर्य का निरन्तर ध्यान करते हुए निम्नांकित मन्त्र का एक मास तक सायंकाल ५ माला नित्य जप करें। जप के अनन्तर दशांश का हवन (चावल व शमीपत्र मिश्रित) करें।

"ॐ विश्वावसो राजगंधर्व कन्यां सालंकृतां सहस्रसंवृतां ममा—
भीप्सितां (अमुक नाम्नीं) प्रयच्छ-प्रयच्छ स्वाहा।"

स्तोत्र

उपरिलिखित मन्त्रों के अतिरिक्त ऐसे अनेकानेक स्तोत्र भी हैं जिनका सास्था—सविधि पाठ सिद्धि-सदन सिद्ध होता है। मन्त्र और स्तोत्र की आधारभूत समानता होते हुये भी **जप व पाठ** के आधार पर शास्त्रज्ञों ने उनका किंचित् पार्थक्य स्पष्ट किया है। तन्त्रविशारद पं० गोविन्दशास्त्री के अनुसार—"**मन्त्र परागमय कोश होता है और स्तोत्र पुष्प का संपूर्ण परिकर।**" क्षेत्र की दृष्टि से मन्त्र और वर्णन की दृष्टि से स्तोत्र वरिष्ठ होते हैं। मन्त्र के लिए सूक्ष्मता और संक्षिप्तता का अनुशासन है। परन्तु स्तोत्र में संदर्भित देवता का विभिन्न प्रसंगों में विस्तृत व्याख्यान किया जाता है। आचार्यों द्वारा नियत विधान है कि मन्त्र का जप किया जाय और स्तोत्र का पाठ। इस तथ्य को ध्यान में रखकर साधकों को मंत्रसाधना में जप करना चाहिए स्तोत्र का सस्वर संगीतमय पाठ इष्ट की प्रीति की प्राप्ति और सुगम बनाता है। अत-

एव स्वभावतः ध्वनि का सूक्ष्म और स्थूल स्वरूप इस प्रक्रिया में सक्रिय रहता है। स्तोत्र में ध्वनि बहिर्मुखी और मन्त्र में अन्तर्मुखी होती है।

स्तोत्र के शब्द-विस्तार में उसका प्राण तत्त्व प्रदीप्त रहता है। स्तोत्र पाठ करने से मन प्रफुल्लित हो जाता है। सम्पूर्ण मानसिक जगत् स्तोत्रस्थ इष्ट की स्मरण-सुरभि से गन्धमय हो जाता है। मनन की सघनता यद्यपि मन्त्र और स्तोत्र दोनों में अनिवार्य है। तथापि मन्त्र में मानसिक एकाग्रता और सीमाबद्धता की आवश्यकता स्तोत्र की अपेक्षा अधिक रहती हैं।

इस वर्णन के अनन्तर विद्वान आचार्यों द्वारा आशु परिणय की दृष्टि से हितावह स्तोत्र उद्धृत हैं :—

कनकधारा स्तोत्र

आदि शंकराचार्य प्रणीत यह स्तोत्र साधकों द्वारा अनुभूत एवं बहुप्रशंसित है। विष्णुप्रिया भगवती लक्ष्मी के प्रति अगाध-अकूत श्रद्धा से आपूरित इस स्तोत्र का सविश्वास पाठ अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ है—

वन्दे वन्दारु-मन्दारमिन्दिरानन्द-कन्दलम्।
अमन्दानन्द-सन्दोह-बन्धुरं सिन्धुराननम्॥

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्।
अङ्गीकृताखिल-विभूतिरपाङ्गलीला
माङ्गल्यदाऽस्तु मम मङ्गलदेवतायाः॥ १॥

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः
प्रेमत्रपा-प्रणिहितानि गतागतानि।
माला-दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या
सा मे श्रियं दिशतु सागर-सम्भवायाः॥ २॥

विश्वामरेन्द्रपद-विभ्रम-दानदक्ष-
मानन्दहेतुरधिकं मुर-विद्विषोऽपि।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्द्ध-
मिन्दीवरोदर-सहोदरमिन्दिरायाः॥ ३॥

आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्द-
मानन्द-कन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम्।

आकेकर-स्थित-कनीनिक-पक्ष्मनेत्रं
भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः ॥ ४ ॥

बाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या
हारावलीव हरिनीलमयी विभाति ।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला
कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥ ५ ॥

कालाम्बुदालि-ललितोरसि कैटभारे-
र्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव ।
मातुः समस्त-जगतां महनीय-मूर्ति-
र्भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः ॥ ६ ॥

प्राप्तं पदं प्रथमतः किल यत्प्रभावात्
माङ्गल्यभाजि मधु-माथिनि मन्मथेन ।
मय्यापतेत् तदिह मन्थरमीक्षणार्द्ध-
मन्दालसं च मकरालयकन्यकायाः ॥ ७ ॥

दद्याद् दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारा-
मस्मिन्न किंचन-विहङ्गशिशौ विषण्णे ।
दुष्कर्म-घर्ममपनीय चिराय दूरं
नारायण-प्रणयिनी-नयनाम्बुवाहः ॥ ८ ॥

इष्टा-विशिष्ट-मतयोऽपि यया दयार्द्र-
दृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते ।
दृष्टिः प्रहृष्ट-कमलोदर-दीप्तिरिष्टां
पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः ॥ ९ ॥

गीर्देवतेति गरुडध्वज-सुन्दरीति
शाकम्भरीति शशिशेखरवल्लभेति ।
सृष्टि-स्थिति-प्रलय-केलिषु संस्थिता या
तस्यै नमस्त्रिभुवनैक-गुरोस्तरुण्यै ॥ १० ॥

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै-
रत्यै नमोऽस्तु रमणीय-गुणार्णवायै ।

शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै
पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै ॥ ११ ॥

नमोऽस्तु नालीकनिभाननायै
नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूत्यै ।
नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै
नमोऽस्तु नारायणवल्लभायै ॥ १२ ॥

नमोऽस्तु हेमाम्बुज-पीठिकायै
नमोऽस्तु भूमण्डल-नायिकायै ।
नमोऽस्तु देवादि-दयापरायै
नमोऽस्तु शार्ङ्गायुध-वल्लभायै । १३ ॥

नमोऽस्तु देव्यै भृगुनन्दनायै
नमोऽस्तु विष्णोरुरसि स्थितायै ।
नमोऽस्तु लक्ष्म्यै कमलालयायै
नमोऽस्तु दामोदरवल्लभायै ॥ १४ ॥

नमोऽस्तु कान्त्यै कमलेक्षणायै
नमोऽस्तु भूत्यै भुवनप्रसूत्यै ।
नमोऽस्तु देवादिभिरर्चितायै
नमोऽस्तु नन्दात्मजवल्लभायै ॥ १५ ॥

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रिय-नन्दनानि
साम्राज्यदान-विभवानि सरोरुहाक्षि ।
त्वद्-वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये ॥ १६ ॥

यत्कटाक्ष-समुपासनाविधिः सेवकस्य सकलार्थ-सम्पदः ।
सन्तनोति वचनाङ्गमानसैस्त्वां मुरारि-हृदयेश्वरीं भजे ॥ १७ ॥

सरसिज-निलये ! सरोजहस्ते !
धवतलमांशुक-गन्ध-माल्यशोभे !
भगवति हरिवल्लभे ! मनोज्ञे !
त्रिभुवन-भूतिकरि ! प्रसीद मह्यम् ॥ १८ ॥

दिग्घस्तिभिः कनक-कुम्भ-सुखावसृष्टि-
स्वर्वाहिनी-विमल-चारु-जलप्लुताङ्गीम् ।
प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष-
लोकाधिनाथ-गृहिणीममृताब्धिपुत्रीम् ॥ १९ ॥

कमले ! कमलाक्षवल्लभे ! त्वं करुणापूर-तरङ्गितैरपाङ्गैः ।
अवलोकय मामकिंचनानां प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥ २० ॥

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं
त्रयीमयीं त्रिभुवन-मातरं रमाम् ।
गुणाधिका गुरुतरभाग्य-भागिनो
भवन्ति ते भुवि वुधभाविताशयाः ॥ २१ ॥

सुवर्णधारास्तोत्रं यच्छङ्कराचार्यनिर्मितम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स कुयरसमो भवेत् ॥ २२ ॥

सौन्दर्य लहरी

इस पुनीत ग्रन्थ की रचना श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १००८ शंकर भगवत्पाद ने की है। सौन्दर्यलहरी में श्री ललिता त्रिपुराम्वा से सम्वन्धित तत्त्वार्थ, योगार्थ और मन्त्रार्थ गूढ़ रीति और काव्यालंकारों से आवृत है। तत्त्वज्ञ आचार्यों के चरणकमलों के प्रति प्रतीति ही उपासना और योग साधनों के श्रेष्ठ, गंभीर तथा उन्नत किन्तु गूढ़ रहस्यों की विवेचना संभव करती है। यह स्तोत्र शीघ्र परिणय के संदर्भ में विवेचित समस्त स्तोत्रों में सर्वोत्कृष्ट है। श्री जगज्जननी, आदिशक्ति, महात्रिपुरसुंदरी के आशीषालोक से विभासित इस अनुभव-आस्वाद्य मंत्रपूत ग्रंथ के निम्नांकित २१ मंत्रों का पाठ आशुविवाह के संदर्भ में अत्यन्त हितावह है :—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरंचादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥ १ ॥

तनीयांसं पांसुं तव चरणपङ्केरुहभवं
विरिंचिः संचिन्वन्विरचयति लोकानविकलम् ।
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां
हरः संक्षुद्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम् ॥ २ ॥

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरोद्दीपनकरी
जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दस्रुतिझरी ।

दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती ॥ ३ ॥

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण -
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया ।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वांछासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥ ४ ॥

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत् ।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ॥ ५ ॥

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पंचविशिखा
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः ।
तथाऽप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते ! कामपि कृपा-
मपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते ॥ ६ ॥

क्वणत्कांचीदामा करिकलभकुम्भस्तनभरा
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना ।
धनुर्बाणान् पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहोपुरुषिका ॥ ७ ॥

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाऽऽकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥ ८ ॥

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि ॥ ९ ॥

सुधाधाराऽऽसारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपंचं सिंचन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा ।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी ॥ १० ॥

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पंचभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः ।

त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाक्ष-त्रिवलय-
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरण (भवन) कोणाः परिणताः ॥ १२ ॥

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरंचिप्रभृतयः।
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम् ॥ १३ ॥

नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं
तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतशः।
गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचया
हठात्त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतयः ॥ १३ ॥

क्षितौ षट्पंचाशद्द्विसमधिकपंचाशदुदके
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपंचाशदनिले।
दिवि द्विषट्त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरिति ये
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम् ॥ १४ ॥

शरज्ज्योत्स्नाशुभ्रां शशियुतजटाजूटमुकुटां
वरत्रासत्राणस्फटिकघुटि(णि)कापुस्तककराम् ।
सकृन्न त्वां नत्वा कथमिव सतां सन्निदधते
मधुक्षीरद्राक्षामधुरमधुरिम्णा भणितयः ॥ १५ ॥

कवीन्द्राणां चेतः कमलवनबालातपरुचिम्
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम्।
विरिंचिप्रेयस्यास्तरुणतरश्रृङ्गारलहरी-
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां (भां) रंजनमयी ॥ १६ ॥

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभि-
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि संचिन्तयति यः।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गि सुभगै-
र्वचोभिर्वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः ॥ १७ ॥

तनुच्छायाभिस्ते तरुणतरणिश्रीध(स)रणिभि -
र्दिवे सर्वामुर्वीमरुणिमनिमग्नां स्मरति यः।
भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयनाः
सहोर्वश्या वश्याः कति कति न गीर्वाणगणिकाः ॥ १८ ॥

मुखं विन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम् ।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिताम् इत्यतिलघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥ १९ ॥

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरम्बामृतरसं
हृदि त्वामध्यास्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः ।
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव
ज्वरप्लुष्टान् दृष्टया सुखयति सुधाऽऽधा (सा) रसिरया ॥ २० ॥

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम् ।
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम् ॥ २१ ॥

श्रीसूक्त

विष्णुवल्लभा, समृद्धिप्रदात्री एवं आसृष्टि श्री की मूल भगवती लक्ष्मी का यह स्तोत्र समस्त मांत्रिकों, तांत्रिकों, योगियों, भक्तों एवं जिज्ञासुओं द्वारा प्रभूत स्तुत है। सौन्दर्य लहरी में इसकी प्रशंसा इन शब्दों में हैं :—

"पशुपति शंकर ने ६४ तंत्रों से सारे भुवन को भर दिया और उसके बाद समस्त पुरुषार्थों की सिद्धि देने वाले इस श्रीसूक्त या श्रीतंत्र को स्वतंत्र रूप से पृथ्वी पर अवतरित किया।" सिद्धाचार्यों के अनुसार श्रीसूक्त समस्त मंत्रों एवं तन्त्रों में सर्वोत्कृष्ट है। श्रीसूक्त के अग्रांकित १६ श्लोकों का सविधि-सश्रद्धा-सानुष्ठान पाठ करने से परिणय के मार्ग में उपस्थित होने वाले समस्त विघ्नों का परिशमन निश्चितरूपेण संभव है :—

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥ १ ॥

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ २ ॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥ ३ ॥

कांसोऽस्मि तां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्म्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥
आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ ६ ॥

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतो सुराष्ट्रेऽस्मिन्कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ ८ ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ९ ॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ १० ॥

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ ११ ॥

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ १२ ॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥ १३ ॥

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥ १४ ॥

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ॥ १५ ॥

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
श्रियः पंचदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ १६ ॥

रामचरितमानस की स्तोत्र साधनायें

गोस्वामी तुलसीदास सृजित "रामचरितमानस" भारतीय चेतना का अविभाज्य अंग वन चुका है । इस अद्भुत मन्त्र-काव्य से आस्थावान् जातकों ने अभीष्ट की अनिवार्य प्राप्ति की है । इस ग्रंथ से दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं अनुभव सिद्ध उद्धरण प्रस्तुत हैं, जिनका सम्यक् प्रयोग अभिलाषाओं की पूर्ति करता है—

(अ) श्री सीताराम का विधिवत् सांगोपांग अर्चन करने के अनन्तर निम्नलिखित दोहे का ११ अथवा २१ वार जप करना चाहिए :—

तब जनक पाइ वशिष्ठ आयसु ब्याह साज संवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुँअरि लई हँकारि कै॥

(ब) अधोलिखित अंश का जप गौरी देवी के पूजनोपरांत ११ अथवा २१ की संख्या में करना चाहिए—

जय जय जय गिरिराज किसोरी। जय महेस मुख चन्द चकोरी।
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि द्युति गाता।
नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना।
भव भव विभव पराभव कारिणि। बिश्व बिमोहनि स्वबस विहारिणि।

दोहा—पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायिनी पुरारि पिआरी।
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होंहिं सुखारे।
मोर मनोरथु जानहु नीकें। बहसु सदा उर पुर सबहीं के।
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेही।
विनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी।
सादर सिय प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषि हियं भरेऊ।
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मन कामना तुम्हारी।
नारद बचन सदा सुचि सांचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राजा।

छन्द—मनु जाहिं रांचेउ मिलिहि सो वरु सहज सुन्दर सांवरो।
करुना निधान सुजान सील सनेहु जानत रावरो।
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियं हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मन्दिर चली।

सोरठा—जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥

(स) वराभिलाषिणी कन्या को, रामचरितमानस के निम्नांकित अंश के नित्य ११ पाठ करने चाहिए :—

सिय रघुवीर विवाह, जो सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कर सदा उछाहु, मंगलायतनु रामु जसु॥

कोमल चित अति दीन दयाला।
कारण बिनु रघुनाथ कृपाला॥

जानहु ब्रह्मचर्य हनुमन्ता।
शिव स्वरूप सो श्री भगवन्ता॥
जो रघुपति चरनन चित लावै।
तेहि सम धन्य न आन कहावै॥
राम कथा सुन्दर करतारी।
संशय विहंग उड़ावन हारी॥
उमा रमा ब्रह्माणि बन्दिता।
जगदम्बा संतत अनिन्दिता॥
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा।
निज अनुरूप सुभग वर मांगा॥
सादर हिय प्रसाद उर धरेऊ।
बोलीं गौरि हर्ष उर भरेऊ॥
जाको जापर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलहिं न कछु सन्देहू॥
सुनि सिय सत्य असीस हमारी।
पूजहिं मन कामना तुम्हारी॥
पति अनुकूल सदा रह सीता।
शोभा खान सुशील विनीता॥
रंगभूमि जब सिय पगधारी।
देखि रूप मोहे नर नारी॥
भुवन चारु दश भरेऊ उछाहू।
जनक सुता रघुवीर विवाहू॥
शकुन विचार धरी मन धीरा।
अब मिलिहहिं कृपालु रघुवीरा॥
तौ जानकिहिं मिलिहिं वर एहू।
नाहिन आलि यहाँ सन्देहू॥
सो तुम जानहु अन्तरयामी।
पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
मन्त्र महामनि विषय व्याल के।
मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
अशरण शरण विरदि सम्भारी।
मोहि जनि तजहु भक्त हितकारी॥

मन जाहि रांचेउ मिलहि सो वर सहज सुन्दर सांवरो।
करुणानिधान सुजान शील सनेहु जानत रावरो॥

भगवती महागौरी के निम्नांकित स्तोत्र का नियमित रूप से १०८ आवृत्ति में पाठ करके परिणय की आशु-संभावना को प्रचुर किया जा सकता है :—

सुन्दरीं स्वर्ण-वर्णाभां सुख-सौभाग्य-दायिनीम्।
सन्तोषजननीं देवीं सुभद्रां प्रणमाम्यहम्॥

महर्षि वाल्मीकि विरचित "रामायण" हिन्दू संस्कृति का पावन ग्रन्थ है। इसके अनेक स्थल सिद्ध-काव्य की सीमाओं का संस्पर्श करते हैं शीघ्र विवाह के संदर्भ में बालकाण्ड का ७३ वाँ सर्ग एवं सुन्दरकाण्ड का खण्ड ३२ से ३७ अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। इन स्थलों में किसी एक स्थल का श्रद्धा-सहित चालीस दिन तक नियमित पाठ करना चाहिए।

उपर्युक्त स्तोत्रों के अतिरिक्त कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण स्तोत्र हैं जो नितान्त आशु प्रभावी एवं अनुभव-आस्वाद्य हैं। इनमें मनु सूक्तम् का स्थान सर्वोपरि है। यह प्रयोग और प्रभविष्णुता की दृष्टि से शास्त्रानुमोदित सूक्त है। नवरात्रि में चंडीनवार्ण मंत्र का २४ दिन तक जप करना चाहिए। इसके अतिरिक्त पावमान सूक्त (ऋग्वेद), ललिता त्रिशती स्तोत्र अथवा ललिता सहस्रनाम स्तोत्र, रुक्मिणी कल्याण सूक्तम् (भागवत पुराण) का आचार्यानुसार जप अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। स्थानाभाव के कारण इन सूक्तों को उद्धृत करना संभव नहीं है, किन्तु ये समस्त सूक्त नितान्त अनुभव सिद्ध हैं।

कुछ विशिष्ट प्रासंगिक प्रयोग

वांछाओं की प्रतिपूर्ति हेतु विभिन्न शास्त्र एवं लोकसम्मत साधनों में प्रयोगों का परम रेखांकित स्थान है। प्रयोग अपनी प्रभाववत्ता एवं प्रभविष्णुता में अति लाभदायक हैं। पात्रों की विभिन्न स्तरीय पात्रताओं को दृष्टिकोण में रखकर इन माध्यमों को प्रारुपित किया गया है। जबतब इनमें से कुछ प्रयोग किसी सुयोग्य व्यक्ति से संपादित कराये जा सकते हैं। किन्हीं विशिष्ट संदर्भों में इनका प्रभाव कोणीय एवं तीव्रानुगामी सिद्ध हुआ है। इनके प्रायोगिक पक्ष को सम्पूर्ण निष्ठा एवं विधिशुद्धता सहित सम्पन्न करना चाहिए। कुछ अतिविशिष्ट प्रयोग अग्रांकित हैं—

१—**श्री दुर्गा सप्तशती के प्रयोग**—विशिष्ट अवसरों के निमित्त समस्त दुर्गा-सप्तशती एक अनुपम कृति है। जिसका सामान्यभावेन पाठ अत्यन्त हितकर सिद्ध होता है। शीघ्र परिणय के सन्दर्भ में निम्नलिखित तीन श्लोक उल्लेखनीय हैं, जिनमें से किसी एक से संपुटित करके श्री दुर्गा सप्तशती का पाठ स्वयं करें या किसी सात्विक चरित्रवान् ब्राह्मण से करावें—

ॐ अम्वे अम्बिके अम्बालिके न मानयति कश्चन ।
स सस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तुते ॥

पाठ की संख्या ३६ है ।

दुर्गा देवी प्रयोग

अपने सम्मुख माँ भगवती का सुन्दर चित्र रखकर, शुद्धता-शुचिता पूर्वक अर्चना करें और पुष्प अर्पित करें संकल्प ग्रहण करने के अनन्तर १०८ आवृत्ति निम्नांकित मन्त्र का जप करें। जपावधि के मध्य शुद्ध घी का प्रदीप अथवा अगरवत्ती निरन्तर सक्रिय रहे । प्रयोग ४५ दिनों तक करना यथेष्ट होता है ।

स देवि नित्यं परितप्यमानस्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।
दृढ़व्रतो राजसुतो महात्मा तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥

शीघ्र विवाह यन्त्र प्रयोग

८	१५	२	७
६	३	१२	११
१४	९	८	१
४	५	१०	१३

सोमवार के दिन भोजपत्र पर अष्टगन्ध की स्याही और अनार की कलम से उपरिलिखित यन्त्र अंकित करें। अभीष्ट कार्य यन्त्र के पृष्ठ पर लिख दें। तदुपरान्त तिल के तेल से प्रज्ज्वलित दीपक की साक्षी में हल्दी की माला से निम्नलिखित मन्त्र का ११०० जप करें—

यह अत्यन्त श्रेष्ठ अनुभूत प्रयोग है ।

"ॐ ह्रीं हं सः"

समकालीन समाज दो विपरीत ध्रुवों की ओर उन्मुख सभ्यताओं के संघर्षण का क्षोभ सहन कर रहा है। परम्परा और आधुनिकता की उच्छिष्ट व्याख्या के परिणाम-

स्वरूप जीवन अपनी आधारभूत विश्वसनीयता से रहित हो गया है। यह प्रभाव व्यष्टि से समष्टि अथवा व्यक्ति से समाज तक समानरूपेण दृष्टिशक्य है। समाज की प्रारंभिक संस्था परिवार व्यामोह की इन वक्रवर्तुल रेखाओं से आच्छन्न हो गई है। व्यक्ति और परिवार के मध्य सतत प्रवहमान अन्तस्सम्बन्धों की अन्तः सलिला सूख कर एकाकीपन का अछोर-विराट मरुस्थल बन गई है। इसी मरुस्थल में भावनात्मक परितोष की एक बूंद के लिए पिपासित खड़ी है विवाह नामक संस्था। दाम्पत्य जीवन के सुरभि-पूर्ण मार्ग पर अनिश्चय के असंख्य कैक्टस आकार प्राप्त कर रहे हैं। आज पुरुष जातक और स्त्री जातक दोनों पक्षों में उचित दाम्पत्यसहचर की उपलब्धि एक विषम समस्या बन गई है। पुरुषों का परिवर्तित दृष्टिकोण, संवर्द्धित महत्त्वाकांक्षायें और आवर्तित व्यक्तित्व जीवन सहचर-चयन की प्रक्रिया में सर्वाधिक अवरोध उत्पन्न करता है। उत्थान की वैश्विक चेतना से ओतप्रोत नारी वर्ग अपने अस्तित्व के परिपोषण में रत है। पुरुष परम्परा प्रसूत अहं एवं एकाधिकार इस स्थिति में विस्फोटक हो उठता है। परिणामस्वरूप परिणय के प्रीतिपूर्ण समीकरण विध्वंस का आलिंगन करने को आतुर हो उठते हैं। पुरुषों के विवाह में होने वाला विलम्ब आज की परिस्थितियों में और भी महत्त्वपूर्ण हो गया है। अपनी प्रवृत्तियों की समानधर्मा जीवन-सहचरी का निश्चय करते-करते उम्र वर्ष के कितने ही चरण पूर्ण कर लेता है। जातक के साथ अभिभावक भी परिवार के लिए ऐसी वधू की कामना करते हैं जो उसकी समृद्धि-शान्ति को संबन्धों के अभिनव आयाम दे सके। अतएव शीघ्र एवं जातकानुकूल परिणय के संदर्भ में सतर्कता अपेक्षित हो जाती है। यहाँ पुरुषों के लिए दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग उद्धृत हैं—

शनि प्रयोग

वैवाहिक संपन्नता के मार्ग में शनि की अवरोधात्मक भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विवाह-विलम्ब की अवधि यदि अत्यधिक बढ़ने लगे तो निश्चितरूपेण शनि का कुप्रभाव समझना चाहिए। इस स्थिति में शीघ्रविवाह के संदर्भ में निर्दिष्ट किसी भी मन्त्र के जप से पूर्व शनि के मन्त्र का जप अवश्य करें। इन मन्त्रों के अतिरिक्त शनि के वैदिक मन्त्र का २३००० जप भी अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध होता है। यह मन्त्र "ग्रहशान्ति" वाले अध्याय में उद्धृत है यदि शनि की विषमता हो तो प्रति शनिवार को निम्नलिखित श्लोकों का ३६ वार जप करना चाहिए—

कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलाश्रयसंस्थितः॥
एतानि शनि-नामानि जपेदश्वत्थसन्निधौ।
शनैश्चरकृता पीडा न कदापि भविष्यति॥

अपने अभीष्ट मनःसंकल्प से परिपूर्ण होकर इष्ट का अर्चन करके निम्नलिखित

श्लोक का नित्य १०८ बार जप करना चाहिए। २१ दिनों तक जप के उपरान्त दशांश-हवन करना चाहिए।

"अभित्वा मनुजातेन दधामि मम वासना।
यशसो मम केवलो नान्यसा कीतिपाश्चन ॥"

शुक्रवार प्रयोग

शुक्रवार का यथाविधि व्रत रहें। सायंकाल पंचमुख दीपक प्रज्ज्वलित करके माँ गौरी का पंचोपचार पूजन करें। तत्पश्चात संकल्पित होकर निम्नलिखित "पार्वती स्वयंवर मन्त्र" का १०८ बार जप करें। यह नितान्त सिद्ध प्रयोग है। आस्था सहित करने पर अवश्य अपना प्रभाव विस्तीर्ण करता है। इस प्रयोग के सन्दर्भ में दो तथ्य और उल्लेखनीय हैं। जिन जातकों का परिणय किन्हीं अवरोधों के परिणाम-स्वरूप सम्पन्न नहीं हो रहा है, वे इसकी साधना नित्य संध्या काल में करें। जिन जातकों का दांपत्य कटुता-कलह-विघटन की अग्नि से आवृत्त हो गया हो वे दांपत्य की शान्ति-माधुरी-प्रीति प्राप्त करने के निमित्त प्रत्येक शुक्रवार की संध्या को इसकी साधना करें :—

"बालार्कायुतसत्प्रभां करतले लोलाम्बमालाकुलां
मालां सन्दधतीं मनोहरतनुं मन्दस्मिताधोमुखीम्
मन्दं मन्दमुपेयुषीं वरयितुं शम्भुं जगन्मोहिनीं
बन्दे देवमुनीन्द्रवन्दितपदाम् इष्टार्थदां पार्वतीम् ।"

उपरिविवेचित सामग्री का प्रयोग किसी सुसिद्ध आचार्य के निर्देशानुसार करना चाहिए। श्रद्धा सिद्धि का मेरुदंड है इसका निरन्तर ध्यान रखें। यद्यपि मन्त्र, स्तोत्र और प्रयोग जातकानुसार प्रभाव-विस्तार करते हैं तथापि इनमें मन्त्रों को शीर्षस्थ स्थान उपलब्ध है।

मन्त्र-साहित्य एक अम्बुधि के समान है। उपर्युक्त विवेचन में इसका संक्षिप्त निदर्शन संभव हुआ है। वस्तुतः मन्त्र ऐसा सूक्ष्म परन्तु महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो स्थूल को अनुशासित करता है। यह विराट में लघु के लय का अनुष्ठान है। पिंड में ब्रह्मांड दर्शन की सतर्क सामर्थ्य है। इस बहुमूल्य परंपरित रीति से आस्था का अवलंब लेकर आशातीत परिणाम अर्जित किया जा सकता है। प्रख्यात ज्योतिर्विद् पं० गोविन्द शास्त्री के अनुसार :—

मन्त्र एक अभौतिक जगत का साक्षात्कार है। अपने आपको पाने का माध्यम है। जितना सत्य व्यक्ति का अस्तित्व है उतना ही सत्य मन्त्र है।"

अतएव विवाह के मार्ग में अनपेक्षित अवरोधों की परिशान्ति मन्त्रों के सम्यक् प्रयोग द्वारा सुनिश्चित है। मन्त्र की महत्ता के संदर्भ में एक श्लोक उद्धृत करके हम विषय का समाहार करते हैं :—

"इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरा संसारान्न दीप्यते ॥"

चतुर्थ अध्याय

वैवाहिक विलंब और मंगली दोष का संदर्भ

भारतीय संस्कृति की अनुपमेय उपलब्धि "आश्रम-चतुष्टय" की द्वितीय इकाई गृहस्थाश्रम संपूर्ण सामाजिक गत्यात्मकता की केन्द्रीय सत्ता है। गृहस्थाश्रम में रहकर व्यक्ति पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति करता हुआ अपने सामाजिक ऋणों और कर्तव्यों का निर्वाह करता है। शेष तीनों आश्रमों में अवस्थित नागरिकों का उत्तर-दायित्व भी गृहस्थाश्रम पर होता है। इस वृहत्‌आयामी दायित्व-संभार का परिपालन तभी संभव है जब दांपत्य जीवन अकुंठित, अद्वेषित, अनाहत और अनुकूल हो। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर परिणय से पूर्व जातक और जातिका के जन्मांगों का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है। इस प्रक्रिया को ज्योतिष की भाषा में "ग्रह-मेलापक" कहा जाता है।

परिणय के सन्दर्भ में जन्मांगों का "ग्रह-मेलापक" कराते समय जातक जातिका के अभिभावक जिस एक तथ्य से सर्वाधिक आक्रान्त रहते हैं वह है मंगल दोष अथवा कुज दोष। इस दोष के विषय में जो अर्द्धविकसित, अतार्किक, अशास्त्रीय और अनर्गल विवरण प्रचारित किये गये हैं उनके परिणामस्वरूप जनसामान्य के चेतना-संसार में भय के विकराल सिन्धु का तरंगित होना स्वाभाविक है। उल्लेखनीय है कि ज्योतिष के पाँच प्राचीन एवं आधारभूत ग्रन्थों—(१) **वृहद् होरा पाराशर (२) जातक पारिजात (३) सारावली (४) फलदीपिका (५) प्रश्न मार्ग** में मंगल दोष का कोई व्यवस्थित एवं पारिभाषिक स्वरूप नहीं प्राप्त होता। दक्षिण भारतीय "देवकेरलम्" नामक पुस्तक में सर्वप्रथम मंगल दोष का सैद्धांतिक विवरण प्राप्त होता है। इसीलिए बहुधा अमंगली जातक भी मंगली घोषित कर दिये जाते हैं एवं उनके लिए मंगली जीवन साथी का शोध प्रारंभ हो जाता है। यह स्थिति नितान्त अमांलिक है। विशेषकर कन्या वर्ग के अभिभावकों के लिए तो यह परिस्थिति भयानक समस्या सिद्ध होती है। जिससे पराभूत होकर वे कन्या का कृत्रिम जन्मांग निर्मित करवा लेते हैं, यद्यपि इसके परिणाम प्रायः घातक सिद्ध होते हैं। अतएव **ज्योतिष से सम्बन्धित समस्त व्यक्तियों को मंगल दोष के विषय में कुछ निर्भ्रान्त निश्चय निश्चित कर लेने चाहिए। सर्वप्रथम यही इस विवेचन का प्रधान बिन्दु है।**

मंगल दोष : अभिज्ञान के सूत्र

जन्मांग में मंगल के लग्नस्थ, द्वितीयस्थ, चतुर्थस्थ, सप्तमस्थ, अष्टमस्थ अथवा द्वादशस्थ होने पर मंगल दोष परिगणित होता है। इस सन्दर्भ में दो श्लोक उल्लेखनीय हैं। अगस्त्यसंहिता के अनुसार—

धने व्यये च पाताले
जामित्रे चाष्टमे कुजे।
भार्या भर्तृविनाशाय
भर्तुश्च स्त्रीविनाशनम् ॥

केरल की भावदीपिका में उल्लिखित है—

लग्ने व्यये च पाताले
जामित्रे चाष्टमे कुजे
स्त्रीणां भर्तृविनाशः स्यात्
पुंसां भार्या विनश्यति ॥

कुछ विद्वानों के अनुसार लग्न के अतिरिक्त चंद्रलग्न अथवा शुक्र से प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश स्थान में मंगल स्थित होने पर भी मंगल दोष होता है। किन्तु यह महत्त्वपूर्ण मान्यता नहीं सिद्ध होती है। इसी प्रकार केरल सूत्र की इस अवधारणा को भी अधिक महत्ता नहीं प्राप्त है कि मंगली होने पर जीवन साथी की मृत्यु हो जाती है। इसे विद्वानों ने सर्वथा अप्रामाणिक माना है एवं अनुभव भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। अब भावानुसार मंगल का विवेचन प्रस्तुत है।

लग्नस्थ मंगल :—

लग्न से व्यक्ति के व्यक्तित्व, शारीरिक संरचना, चरित्र, बचपन, स्वास्थ्य, जीवन-शक्ति का विचार होता है। लग्नस्थ मंगल क्रोधी प्रकृति, शारीरिक उष्णता, रुधिर विकार, दुर्घटना, मानसिक उष्णता, विचार-अस्तव्यस्तता को प्रदर्शित करता है। स्वास्थ्य निश्चित रूप से प्रभावित होता है और व्यक्ति अपनी हठवादिता एवं उग्रता पर नियन्त्रण नहीं रख पाता। लग्नस्थ मंगल की दृष्टि चतुर्थ, सप्तम एवं अष्टम भाव पर भी पड़ती है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य, घर, संपत्ति एवं आयु आदि अनेक महत्त्वपूर्ण पक्ष कुप्रभावित होते हैं। इसीलिए लग्नस्थ मंगल व्यक्ति को मंगल दोष से पूर्ण करता है। एक उक्ति के अनुसार—

"विलग्ने कुजे दंडलोहाग्निभीतिस्तपेन्मानसं केसरी किं द्वितीयः।"

मंगल यदि क्षीण चन्द्रमा अथवा निर्बल शुक्र के साथ संस्थित हो, उस स्थिति में भी इसी प्रकार की विषमतायें उत्पन्न होती हैं।

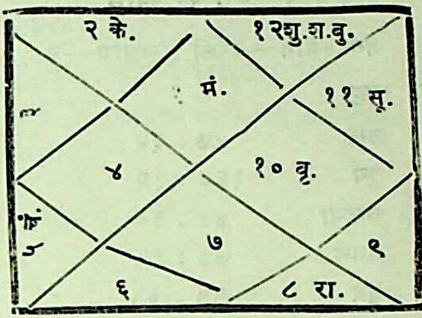
उदाहरण संख्या १.

जन्म-तिथि —१४-३-१९३८
जन्म समय—८: ३० पूर्वाह्न

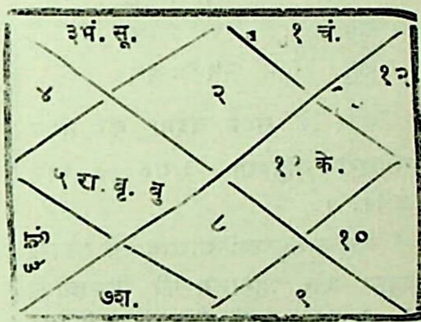
जन्म स्थान —कलकत्ता (अक्षांश—२२ : ३७ उत्तर, रेखांश—७३ : ६ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट —

लग्न	५ : ४५
सूर्य	३२९ : ४९
चंद्रमा	१२२ : ४९
मंगल	८ : १५
बुध	३३५ : ९
वृहस्पति	२९६ : २३
शुक्र	३३९ : ६
शनि	३४३ : ४
राहु	२१६ : २२
केतु	३६ : २२



नवांश चक्र



लग्न जन्म के समय केतु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—५ व० ६ मा० ७ दि० ।

लग्नस्थ स्वराशिगत मंगल ने जातिका को विरोधों के समानान्तर संसार प्रदान किया । मंगल की इस स्थिति ने जातिका को मंगली बनाया और उसे अत्यन्त सौंदर्यपूर्ण व्यक्तित्व प्रदान किया । परिणय योग्य होते ही अनेकानेक प्रस्ताव आने प्रारम्भ हो गये । जातिका का परिवार पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुयायी होने के कारण ज्योतिष इत्यादि भारतीय संस्कृति-परक विश्वासों पर कोई आस्था नहीं रखता था । अतः व्यावहारिक दृष्टिकोण से समीचीन वर देखकर जातिका का विवाह कर दिया गया । ५–१२–१९६? को जातिका ने दाम्पत्य जीवन में प्रवेश किया और मात्र ७ वर्ष इस अवधि का उपभोग करने का अवसर उसे प्राप्त हुआ । जातिका के पति की मृत्यु एक दीर्घकालिक असाध्य रोग के परिणामस्वरूप १९६९ के प्रथम दिन तब हुई जब उनके शुभचिंतक उन्हें नव वर्ष की मंगलाशायें अर्पित करने आये थे । उस समय जातिका की जन्मकुण्डली के अनुसार शुक्र की महादशा में केतु की अन्तरदशा चल रही थी । लग्नस्थ मंगल की इस विघटनात्मक स्थिति में जातिका को ३१ वर्ष की आयु से पूर्व ही वैधव्य का अपार दुख प्राप्त हुआ ।

उदाहरण संख्या २.

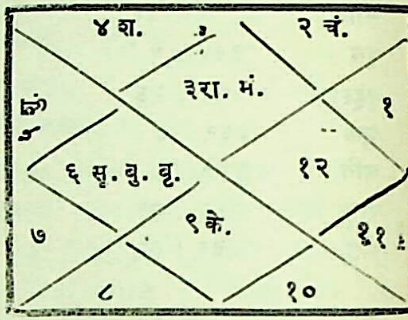
जन्म तिथि—२७-९-१९४५

जन्म समय—० : ३० पूर्वाह्न

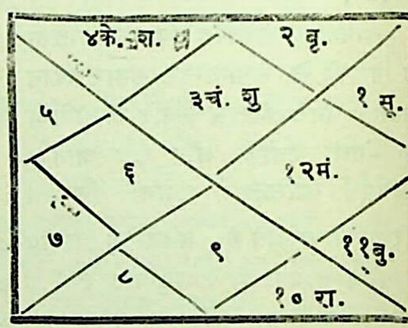
जन्म स्थान—बरेली (अक्षांश—२८ : २२ उत्तर, रेखांश—७९ : २७ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	८७ : ३२
सूर्य	१६० : १२
चन्द्रमा	४८ : ३०
मंगल	७७ : ३५
बुध	१५५ : ३५
वृहस्पति	१६३ : ४५
शुक्र	१२९ : २८
शनि	९० : १८
राहु	७१ : ३५
केतु	२५१ : ३५



नवांश चक्र



जन्म के समय चंद्रमा की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—३ व० ७ मा० १३ दि० ।

यह जन्मकुण्डली भारतवर्ष के प्रकाण्ड विद्वान और हिमालय की शिलाओं के शोध से राष्ट्र की नियमित आय में वृद्धि करने वाले एक महान भूगर्भ वैज्ञानिक की धर्मपत्नी की है। जातिका के पति की हृदय गति अवरुद्ध हो जाने के कारण १९.७.१९८२ को मृत्यु हो गई। यह जन्मांग कुज दोष पूर्ण है। इस जन्मकुण्डली में लग्नस्थ मंगल ने जातिका को ३६ वर्ष की आयु में ही वैधव्य का दारुण दुःख दिया। जातिका के पति मंगली नहीं थे, यह उल्लेखनीय है। मंगल वर्गोत्तम नवांश में होकर लग्नस्थ है तथा शनि और चन्द्रमा से नवांश चक्र में संयुक्त होने के कारण और भी पापाक्रान्त है। जातिका का अपने पति के साथ विचार विनिमय अत्यन्त असंतोष एवं क्लेशप्रद था।

द्वितीय भावस्थ मंगल—कुटुम्ब, मुखाकृति, दक्षिण नेत्र, वाक् चातुरी एवं मृत्यु के कारण आदि का विवेचन द्वितीय भाव से किया जाता है। द्वितीय भावस्थ मंगल

की पंचमभाव पर पूर्ण दृष्टि के कारण धन एवं संतति की क्षति होती है। अष्टम भाव एवं नवम भाव पर दृष्टि निक्षेप के फलस्वरूप क्रमशः स्वास्थ्य हानि एवं भाग्यावरोध होता है। संस्कृत की एक उक्ति है कि—

भवेत्तस्य किं विद्यमाने कुटुम्बे धने वा कुजे तस्य लब्धे धने किम् ।
यथा त्रोटयेत् मर्कटः कण्ठहारं पुनः सम्मुखं को भवेद्वादमग्नः ॥

द्वितीयभावस्थ मंगल प्रायः जीवन साथी के स्वास्थ्य को अव्यवस्थित करता है और कुटुम्ब में अनपेक्षित विषमताओं को जन्म देता है।

उदाहरण संख्या ३.

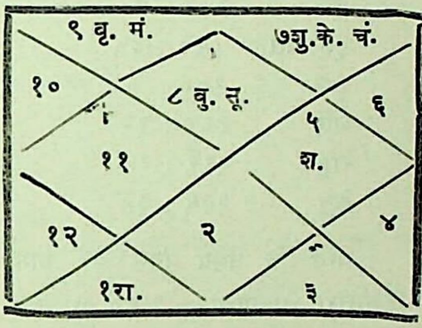
जन्म तिथि—२९-११-१९४८

जन्म समय— ६ : १५ पूर्वाह्न

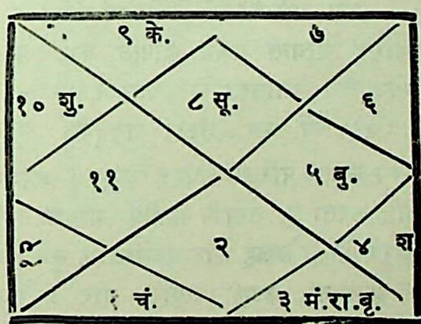
जन्म स्थान— कलकत्ता (अक्षांश—२२ : ३४ उत्तर, रेखांश—८८ : २४ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२२६ : १८
सूर्य	२२३ : ३४
चंद्रमा	२०१ : १०
मंगल	२४८ : २७
बुध	२१५ : ५४
बृहस्पति	२४९ : ४३
शुक्र	१९० : ३१
शनि	१३२ : ४६
राहु	९ : ५९
केतु	१८९ : ५९



नवांश चक्र



जन्म के समय बृहस्पति की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१४ व० ७ मा० ५ दिन०।

मंगल की यह स्थिति भी विचारणीय है। इस दोष के कारण जातक ने अपनी पाणिगृहीता पत्नी को अपने जीवन से बहिष्कृत कर दिया। वह जातक को संतुष्ट न कर सकी। जातक ने अपनी साली से अवैध यौन संबन्ध स्थापित किये। संप्रति वह उसी के साथ दाम्पत्य जीवन

का सुख प्राप्त कर रहा है, यद्यपि जातक की वैध पत्नी एवं उसके बच्चे नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। द्वितीयस्थ मंगल ने जातक के पारिवारिक सुख को विघटित कर डाला।

उदाहरण संख्या ४.

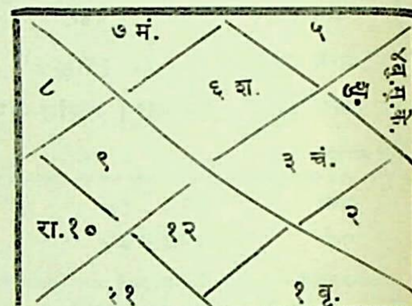
जन्म तिथि—१९-७-१९५२

जन्म समय—११ : २३ पूर्वाह्न

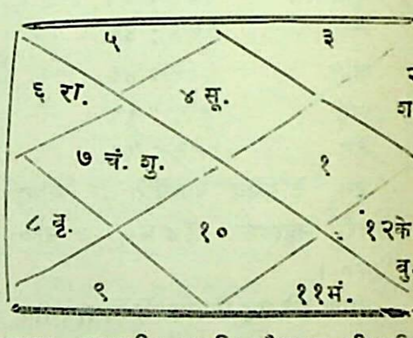
जन्म स्थान— हरदोई (अक्षांश-२७ : २३ उत्तर, रेखांश-८० : १० पूर्व)

ग्रह स्पष्ट

लग्न	१७० : २७
सूर्य	९३ : १७
चंद्रमा	६३ : ९
मंगल	१९६ : ३८
वुध	११९ : ३७
वृहस्पति	२३ : ३५
शुक्र	१०० : १
शनि	१६६ : १२
राहु	२९९ : ३८
केतु	११९ : ३८



नवांश चक्र



जन्म के समय मंगल की भोग्य विंशोत्तरी महादशा— १ व० ७ मा० ३२ दि०।

इस जातिका ने द्वितीयस्थ मंगल के कारण अत्यन्त करुण दांपत्य का कष्ट भोगा है। जातिका के पिता ने ७-३-१९७९ को एक डॉक्टर नवयुवक के साथ उसका परिणय संपन्न किया। अष्टमभावस्थ वृहस्पति यद्यपि सौभाग्य की परिवृद्धि करता है, तथापि द्वितीय भावस्थ मंगल के कारण जातिका का दांपत्य जीवन प्रारंभ से ही कलह और वैमनस्य के सूत्र लेकर आगे बढ़ा। जातिका अपने सास-ससुर की प्रताड़ना, कटाक्ष प्रवृत्ति और प्रवंचना से अत्यन्त क्लेशित रहती थी। दांपत्य जीवन इसी क्लेशपूर्ण वातावरण में ६ वर्ष तक चलता रहा। वृहस्पति की महादशा

के अन्तर्गत मंगल की अन्तरदशा के प्रारम्भ होते ही विवाह के सातवें वर्ष एक सामान्य गृह विवाद से दुखी होकर जातिका के पति ने १९-३-१९८५ को आत्महत्या कर ली।

द्वितीय भावस्थ मंगल के पापाक्रान्त न होने पर प्रायः इतना अनिष्टकर नहीं होता, पर पापाक्रान्त होने पर, शनि से दृष्ट अथवा युक्त होने पर, बृहस्पति के मंगल से विपरीत स्थिति में होकर परस्पर दृष्टि संबंध रखने पर, शुक्र और बृहस्पति के द्वितीयस्थ मंगल से केन्द्रवर्ती होने पर अनेक विध्वंसात्मक स्थितियाँ उत्पन्न करता है।

चतुर्थ भावस्थ मंगल—वैवाहिक विचार में इस भाव को सुख स्थान भी कहते हैं। भोगोपभोग की सामग्री, गृह भूमि, वाहन, गृहपरक उपकरण (बर्तन, फर्नीचर) सुख, मनोनुकूलताका विचार इस भाव के माध्यम से करते हैं। यद्यपि अचल संपत्ति के लिए चतुर्थ भावस्थ मंगल एक अच्छी संस्थिति है। तथापि सुख-शान्ति के स्थायित्व के लिए यह स्थिति अशुभ है। यहाँ से मंगल की सप्तम भाव पर पूर्ण दृष्टि है। जिसके कारण जीवन साथी से उचित तारतम्य नहीं हो पाता। आचार्यों ने चतुर्थ भावस्थ मंगल से उत्पन्न मंगल दोष को अत्यन्त क्षीण बतलाया है।

उदाहरण संख्या ५.

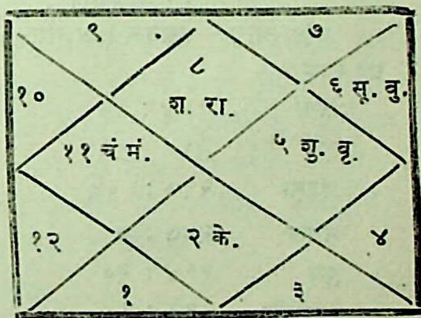
जन्म तिथि—१६-१०-१९५६

जन्म समय—९ : १० पूर्वाह्न

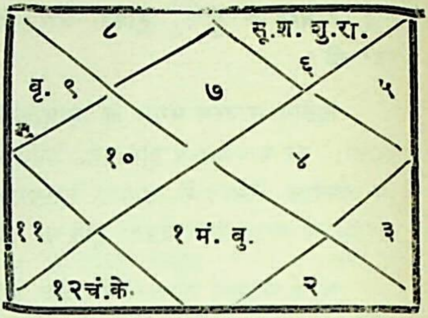
जन्म स्थान—वाराणसी (अक्षांश—२५ : २० उत्तर, रेखांश—८३ : ० पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	२२० : ५४
सूर्य	१७९ : ३०
चंद्रमा	३१७ : ३३
मंगल	३२० : ७
बुध	१६२ : २३
बृहस्पति	१४७ : ३५
शुक्र	१३८ : १६
शनि	२१७ : १९
राहु	२१७ : ३१
केतु	३७ : ३१



नवांश चक्र



जन्म के समय राहु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—३ व० ३ मा० २० दि० ।

यह जातिका पति-पार्थक्य और मानसिक असंतुलन का दारुण जीवन व्यतीत कर रही है। चतुर्थ भावस्थ मंगल ने जातिका को कुज दोष का भागी बनाया। शनि राहु के लग्नस्थ होने एवं सप्तमेश शुक्र पर शनि के दृष्टि निक्षेप के कारण विवाह में अनपेक्षित विलम्ब हुआ। अन्ततः ६–४–१९८३ को २७ वर्ष की वय में जातिका का विवाह संपन्न हुआ। इतने परिश्रम के उपरान्त उपलब्ध दांपत्य मात्र ६ मास तक ही स्थायी रहा। ससुराल से प्राप्त निरंतरित प्रताड़ना ने जातिका को मानसिक तनाव से ग्रस्त करना प्रारम्भ कर दिया। मानसिक संसार की विकृतियाँ इतनी मुखर हुई कि मानसिक रोग के लक्षण स्पष्ट होने लगे। तब उसे नितांत एकान्त का अभिशाप मिला। जातिका की सास ने जातिका के पति को दिग्भ्रमित करना प्रारम्भ किया कि इसके मनोरोग का प्रभाव आने वाले संतति-वर्ग पर भी पड़ेगा। इस भ्रम पर विश्वास करके जातिका के पति ने जातिका को २२–१०–१९८३ को त्याग दिया। स्थाई पार्थक्य के लिए न्यायालय में मुकदमा चल रहा है। चतुर्थ भावस्थ मंगल ने जातिका को यंत्रणा के इस मारक युग में स्थापित किया है।

उदाहरण संख्या ६.

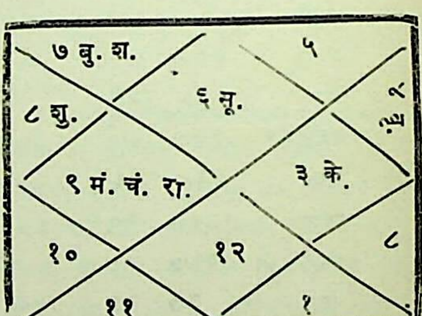
जन्म-तिथि—६–१०–१९५४

जन्म समय—५ : ० पूर्वाह्न

जन्म स्थान—लखनऊ (अक्षांश—२६ : ५५ उत्तर, रेखांश—८० : ५९ पूर्व)

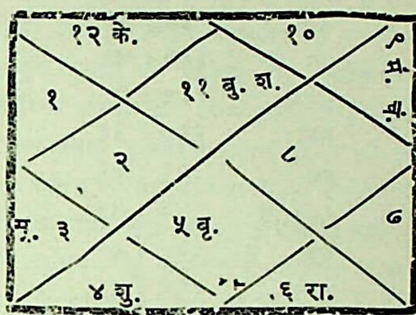
ग्रह स्पष्ट—

लग्न	१५४ : ३७
सूर्य	१६८ : ५६
चंद्रमा	२६७ : ३५
मंगल	२६७ : ७
बुध	१९४ : २०
बृहस्पति	९३ : ५८
शुक्र	२१० : १९
शनि	१९५ : १९



राहु २५६ : ४२
केतु ७६ : ४२

नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—५ व० ७ मा०

इस जन्मांग में मंगल अष्टमेश होकर चतुर्थ भावस्थ है। शनि की उस पर दृष्टि है। राहु मंगल के साथ संस्थित है। जातिका का विवाह बैंक के एक क्लर्क के साथ संपन्न हुआ। किन्तु परिणय वाले दिन ही विवाह-विच्छेद हो गया। वर पक्ष को संदेह है कि जातिका किसी प्रेतात्मा से अभिशप्त है। यद्यपि सप्तम भाव पर बृहस्पति की दृष्टि है। तथापि यह ग्रह योग वैवाहिक विध्वंस का परिहार न कर सका। सुखद संबन्धों के स्थान पर विवाह में हुए व्यय की क्षति पूर्ति के लिए दोनों पक्ष न्यायालय में युद्ध कर रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि जातिका का विवाह केतु में बृहस्पति की अन्तरदशा में हुआ। बृहस्पति सप्तमेश है और तुरन्त ही विघटनकारी स्थिति भी उत्पन्न हुई। उल्लेख्य है कि बृहस्पति यद्यपि उच्च राशि में स्थित है परन्तु अष्टमेश मंगल द्वारा दृष्ट है।

सप्तम भावस्थ मंगल—सप्तमभाव वैवाहिक विचार का प्रमुख भाव है! इस से वैवाहिक सुख, विचार-सामंजस्य, जीवन–सहचर की आकृति–प्रकृति, सुरत–संबंध आदि का विचार किया जाता है। मंगल दोष के संदर्भ में सप्तमभावस्थ मंगल विशेषतः विचारणीय है। संस्थिति के परिणामस्वरूप जीवन–सहचर की स्वास्थ्य क्षति, दांपत्य सुखावरोध, व्यावसायिक अनिश्चय आदि तथ्य प्रकट होते हैं। यहाँ स्थित मंगल लग्न और धन भाव को पूर्ण दृष्टि से प्रभावित करता है। जिससे धन-हानि, कौटुम्बिक सृजन की विकृतियाँ, दुर्घटना, फोड़ा–फुंसी, चारित्रिक स्खलन आदि अनपेक्षिततायें होती हैं। जीवन–सहचर श्रेष्ठ आकृति किन्तु युयुत्सु-प्रकृति का होता है। मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर, कुंभ राशि का मंगल द्वितीय विवाह की संभावना प्रवल करता है। प्रकृतितः मिथुन, कन्या, धनु, मकर, वृश्चिक, सिंह राशि मंगल जातक को बुद्धि–दंभी, दुराग्रही, व्यभिचारी (बहुधा जीवन–सहचर की सम्मति से) अमित्र बनाता है। उपर्युक्त विवेचन कुछ उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है—

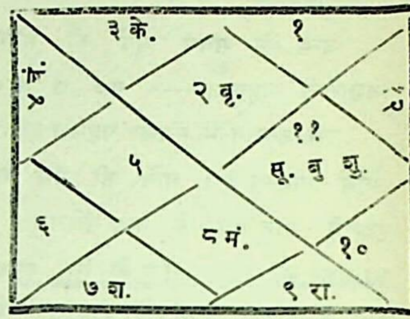
उदाहरण संख्या ७.

जन्म तिथि—१६–२–१९५४
जन्म समय—११ : ३६ पूर्वाह्न

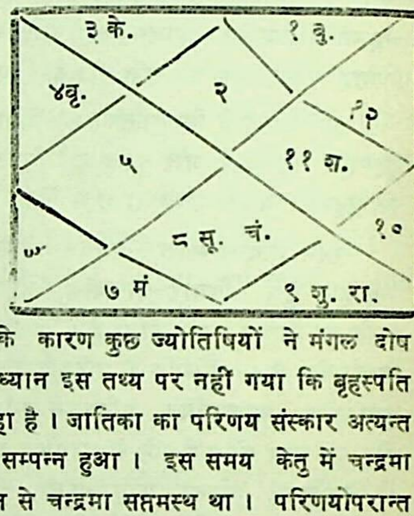
जन्म स्थान—कलकत्ता (अक्षांश–२२ : ३४ उत्तर, रेखांश–८८ : २४ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	४३ : ३७
सूर्य	३०३ : ४९
चंद्रमा	१०६ : २
मंगल	२२० : २१
बुध	३२१ : ३२
वृहस्पति	५३ : ५१
शुक्र	३०८ : ०
शनि	१९६ : ९
राहु	२६९ : ५
केतु	८९ : ५



नवांश चक्र



जन्म के समय शनि की भोग्य विंशोत्तरी महादशा— ०'१० मा. २२ दि ।

यह अत्यन्त सौन्दर्य सम्पन्न, उच्च पद प्रतिष्ठित पिता की पुत्री एवं सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी की पौत्री का जन्मांग है। इस जन्मांग में स्वगृही मंगल के कारण कुछ ज्योतिषियों ने मंगल दोष को निराधार घोषित किया। किन्तु उनका ध्यान इस तथ्य पर नहीं गया कि बृहस्पति की दृष्टि के कारण मंगल दोष प्रवर्द्धित हो रहा है। जातिका का परिणय संस्कार अत्यन्त वैभवपूर्ण वातावरण में ९–२–१९७४ को सम्पन्न हुआ। इस समय केतु में चन्द्रमा की अन्तरदशा थी तथा वर्गोत्तम नवांश लग्न से चन्द्रमा सप्तमस्थ था। परिणयोपरान्त दम्पत्ति सुखमय प्रवास पर विदेश चले गये। किन्तु विधि की विडम्बना ! दो वर्ष के पश्चात् एक हृदयविदारक दुर्घटना में जातिका के पति की अकाल मृत्यु हो गई। वृहस्पति (२६–१२–१९७३ से २–१२–१९७६) में जातिका वैधव्य की विभीषिका से आक्रान्त हो गई। १६–३–१९७६ की तिथि ने जातिका के प्रकाशपूर्ण जीवन में अन्धकार की धूमकेतु रेखा खींच दी। इस समय शनि की साढ़े साती का दूसरा ढैय्या चल रहा था। सप्तम भावस्थ मंगल पर वृहस्पति की दृष्टि ने मंगल दोष के प्रभाव को इतना विकृत कर दिया कि दाम्पत्य सुख मात्र दो वर्षों की परिधि में निःशेष हो गया।

अष्टम भावस्थ मंगल :—अष्टम भाव से विघ्न, बाधा, अनिष्ट, आयुष्क्रम, विषाद, मृत्यु, मृत्यु का कारण एवं स्थान आदि का परिबोध होता है। स्त्री जन्मांग में यह भाव सौभाग्य भाव होता है। अतएव मंगल की यह स्थिति मंगलदोष की पराकाष्ठा या चरम सीमा है। वैवाहिक सुख के सम्पूर्ण विनाश की घोषणा इस भावस्थिति से समझनी चाहिए। आधियाँ-व्याधियाँ शारीरिक सौन्दर्य का क्षरण करती हैं। वैधव्य की प्रबल कुसम्भावना होती है। अष्टमभावस्थ मंगल के कारण जीवन सहचर की मृत्यु अथवा हत्या के प्रयास के परिणामस्वरूप जातक को मानसिक सन्ताप, पारिवारिक कोप एवं सामाजिक तिरस्कार सहन करना पड़ सकता है। यदि इस भाव में शुक्र एवं बृहस्पति की सहस्थिति हो या दृष्टि हो तो समस्या और भयावह हो जाती है। यहाँ स्थित मंगल कुटुम्ब भाव पर पूर्ण दृष्टि डालता है, परिणामस्वरूप कौटुम्बिक एवं आर्थिक क्षति वहन करनी पड़ती है। पराशर के मत से—

"मृत्यौ धननाशं पराभवं" (धनहानि एवं पराजय होती है) :—प्रायः समस्त शास्त्रकारों ने इस स्थिति को अशुभ कहा है। ऐसा जातक अवैध धन संग्रही, भक्ष्याभक्ष्यप्रिय, एवं एनिमिया, ब्लड प्रेशर रोगों से उत्पीड़ित होता है।

उदाहरण संख्या ८.

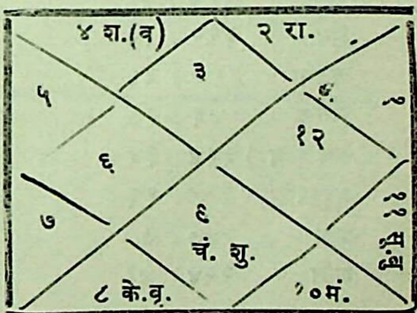
जन्म तिथि—१६-२-१९४७

जन्म समय—२ : २६

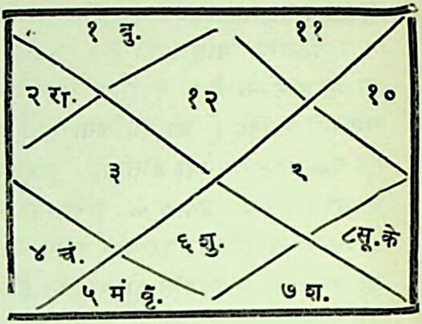
जन्म स्थान—मिर्जापुर (अक्षांश-२५ : ९ उत्तर, रेखांश-८२ : ३५ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	७९ : १९
सूर्य	३०३ : ४४
चन्द्रमा	२५१ : १०
मंगल	२९४ : २
बुध	३२० : ४०
बृहस्पति	२१३ : २४
शुक्र	२५७ : ५३
शनि (व)	१०० : ४१
राहु	४४ : ३४
केतु	२२४ : ३४



नवांश चक्र



जन्म के समय केतु की भोग्य विशोत्तरी महादशा— १ व० १ मा० १९ दिन।

यह जन्मांग दाम्पत्य-वैषम्य के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। इस जन्मांग में मंगल उच्च राशिस्थ है। जातक की पत्नी लावण्य की मूर्ति है, किन्तु जातक ने अत्यन्त सामान्य आकृति-प्रकृति, दो बच्चों की माँ और पति परित्यक्ता क्रिश्चियन महिला से अपना यौन सम्बन्ध स्थापित किया। जातक को सामाजिक प्रतिष्ठा एवं पारिवारिक गरिमा का किंचित् ध्यान नहीं है। वह दुस्साहसपूर्ण ढंग से उस महिला से सम्पर्क स्थापित किये हुये है।

उदाहरण संख्या ९.

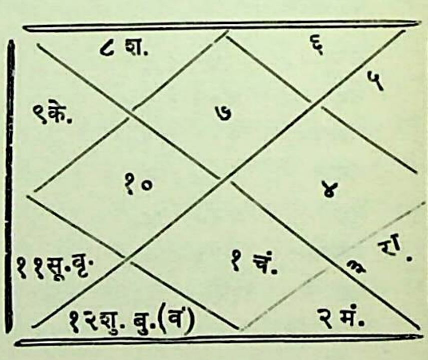
जन्म तिथि—६-३-१९२७।

जन्म समय—२१ : १५ अपराह्न।

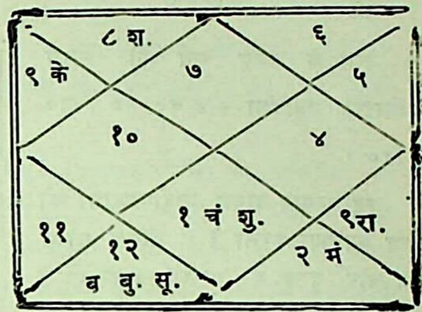
जन्म स्थान—अम्बाला (अक्षांश ३० : २१ उत्तर, रेखांश ७६ : ५२ पूर्व)।

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	१८० : ३६
सूर्य	३२२ : १०
चंद्रमा	२ : ३६
मंगल	४३ : १७
बुध (व)	३३४ : १४
वृहस्पति	३१८ : १६
शुक्र	३४७ : ७
शनि	२२४ : ४३
राहु	७० : ३८
केतु	२५० : ३८



नवांश चक्र



जन्म के समय केतु की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—५ व. ७ मा० १८ दिन०।

इस जन्मांग में अष्टमभावस्थ मंगल पर शनि की दृष्टि है। इसके परिणाम स्वरूप विलम्ब-विवाह एवं वैवाहिक -विध्वंस का योग निर्मित होता है। इस जातिका का विवाह सूर्य में बृहस्पति की अन्तरदशा (१२-११-१९६० से ३०-८-१९६१) में सम्पन्न हुआ। विवाह के समय ११-३-१९६१ को जातिका ३४ वर्ष की थी। इतनी दीर्घ प्रतीक्षा के अनन्तर उपलब्ध दाम्पत्य मात्र दस माह का जीवन जी सका। सूर्य में शनि की अन्तर्दशा (३०-८-१९६१ से १२-८-१९६२ तक) में १७-१-१९६२ को एक विमान दुर्घटना में पति अकाल कालकवलित हो गये। शनि के मंगल की राशि में संस्थित होने तथा मंगल द्वारा दृष्ट होने, शनि के १४° ४३" पर होने तथा अनुराधा नक्षत्र में स्थित होकर वर्गोत्तम मंगल तथा वर्गोत्तम लग्न होने के कारण तुरन्त वैधव्य की पुष्टि होती है। अष्टमस्थ मंगल की विडम्बना के फलस्वरूप यह प्रसिद्ध आकाशवाणी प्रोड्यूसर जातिका एकांकी जीवन व्यतीत करने को बाध्य है।

उदाहरण संख्या १०.

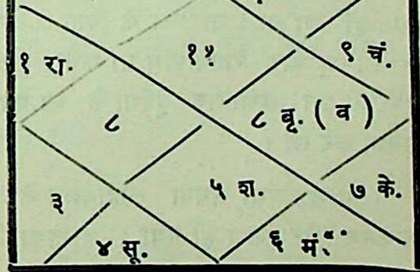
जन्म तिथि—२०–७–१९४८।

जन्म समय—८ : २९ पूर्वाह्न।

जन्म स्थान—फैजाबाद (अक्षांश–२६ : २४ उत्तर, रेखांश–८२ : ८ पूर्व)।

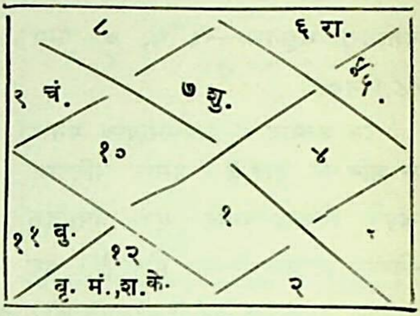
ग्रह स्पष्ट—

लग्न	३०३ : १६
सूर्य	९४ : ३८
चंद्रमा	२६९ : १५
मंगल	१५८ : ५१
बुध	७४ : ५२
बृहस्पति (व)	२३७ : १
शुक्र	६१ : ५२
शनि	११९ : २१



राहु १७ : ०
केतु १९७ : ०

नवांश चक्र



जन्म के समय सूर्य की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—४ व० १० मा० १ दि० ।

यह जन्मांग दारुण विरोधाभासों की करुण व्याख्या करता है । जीवन यात्रा सुख और दुःख के अलंध्य अन्तरालों से होकर प्रसारित हुई है । जातिका संप्रति एक सम्पन्न प्रोफेसर की धर्मपत्नी के रूप में जीवन यापन कर रही है । इस प्रसादपूर्ण स्थिति तक आने के पूर्व विषाद के अनेकानेक दुर्गम कटीले पथ उत्तीर्ण करने पड़े हैं । इस जन्मांग में सप्तमस्थ शनि लग्नाधिपति है । अतएव विवाह में विलम्ब समुपस्थित नहीं हुआ । मंगल की महादशा में शुक्र की अन्तरदशाकाल में जब (१५–४–१९६८ से १५–६–१९६९) गोचर का वृहस्पति सप्तम भाव में आया और लग्नेश शनि के ऊपर भ्रमण करने लगा तभी विवाह २० वर्ष की वय में १४–११–१९६८ को अत्यन्त प्रसादपूर्ण परिस्थितियों में संपन्न हुआ । जातिका के पिता ने लाखों रुपये परिणय की वेला में व्यय किये । किन्तु पतिगृह पहुँचते ही जातिका के जीवन में दुख का सूत्रपात हो गया । वैभवशाली घर के समस्त नौकरों को स्थायी अवकाश देकर नव-परिणीता–नवागंतुका जातिका के मार्दव स्वप्नों के विश्व में विष के तीक्ष्ण विशिख संधानित कर दिये गये । जातिका के गार्हस्थिक अनुभवन का उन्मेष गृहकार्य की अतिशयता से हुआ, घर का छोटा और बड़ा सारा कार्य जातिका को करना पड़ता । शारीरिक परिश्रांति और मानसिक क्लेश की व्यथा का कोई सहृदय श्रोता भी नहीं था । गृह में वैभव और सुविधा के समस्त साधन थे पर जातिका क्षणार्ध के लिए स्टूल पर भी नहीं बैठ सकती थी । अन्यथा प्रताड़ना का नवीन अध्याय प्रारम्भ होता था । घरवालों को वधू के रूप में एक प्राणविहीन अनुचर प्राप्त हो गया था । जातिका के पिता से अनेक रूपों में धन की माँग की जाती । कभी कभी फ्रिज़ और रेडियोग्राम या कभी कुछ और । जातिका के पिता ने अपनी प्रिय पुत्री की इस मरणान्तक दुर्दशा से व्यथित होकर असमय ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली ।

इस छत्रछाया अथवा स्नेहावलंब के अदृश्य होते ही जातिका पर प्रताड़ना का आक्रमण और तीक्ष्ण हो गया । जातिका किसी प्रकार पितृगृह आ सकी । इस घटना

के पश्चात् पतिगृह के किसी सदस्य ने उसकी कुशलक्षेम लेना भी उचित नहीं समझा, संपर्क तो असंभव ही रहा। इस प्राणान्तक कष्ट को जीवन की दुर्धर्ष नियति अंगीकार कर जातिका ने जीवन के ७ वर्ष व्यतीत किये। इस हृदय विदारक अवधि में जातिका को मंगल दोष निवारणार्थ कुछ अनुभूत प्रयोग और अनुष्ठान बतलाये गये जो उसने श्रद्धापूर्वक सम्पन्न किये।

समय का प्रवर्त्तन हुआ। अक्तूबर १९७६ ने सुलगती साँसों को प्राणोष्मा की प्रारंभिक ऊर्जा दी। (राहु में द्वितीयेश वृहस्पति की अन्तर्दशाकाल में) जातिका के पति ने जातिका से अनेक प्रकार से अनुनय-विनय की। तदुपरान्त जातिका अपने पतिगृह चली गई। पति ने अपने पैतृक गृह से सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिये। संप्रति दोनों अत्यन्त समृद्ध दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके परिवार में २ पुत्रियाँ और एक पुत्र भी हैं। यह समस्त दुर्योग अष्टमभावस्थ मंगल की शत्रुराशिस्थिति के कारण हुआ।

द्वादशभावस्थ मंगलः—इस भाव से व्यय, यात्रा, शैय्या सुख, क्रयशक्ति, भोग, त्याग, निद्रा आदि का विचार होता है। द्वादश भावस्थ मंगल सप्तम भाव पर पूर्ण दृष्टि के फलस्वरूप दाम्पत्य सुख को प्रत्यक्षतः बाधित करता है। जीवन सहचर के स्वास्थ्य का हनन, दुर्व्यसन, बन्धु विरोध की प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं। यौन जीवन पर से अनुशासन के बंधन क्षीण हो जाते हैं। जातक क्रूरता, परिछिद्रान्वेषिता, अधमता, दृष्टि-कष्ट की ओर उन्मुख होता है। इस योग के जातक बहुभक्षी, कामुक, वनस्पतिशास्त्र एवं प्राणिविज्ञान का अध्येता, क्रोधी, विद्रोही, न्यूनसंतति, क्षयवंशी, व्यभिचारी होते हैं। धन का जीवन में विशेष क्षय एवं अभाव होता है। दुर्घटना, विष बाधा, अपघात, सिर दर्द, आधा सीसी, रक्त विकृति, गुप्त रोग, अपच जैसी आधियों व्याधियों का प्रकोप रहता है। कल्याणवर्मा के अनुसार जातक नेत्ररोगी, पतित, अपमानित, पत्नीघाती एवं अपराधी होता है:—

"नयनविकारी पतितो जायाघ्नः सूचकश्चैव।
द्वादशगे परिभूतो बन्धनभाक् भवति भूपुत्रे॥"

अशुभ फलों की मात्रा वृश्चिक और मकर में सर्वाधिक होती है। मेष, सिंह, धनु, कर्क, मीन में अशुभता मध्यम एवं मिथुन, तुला, कुंभ में अशुभ फल न्यून होते हैं।

उदाहरण संख्या ११.

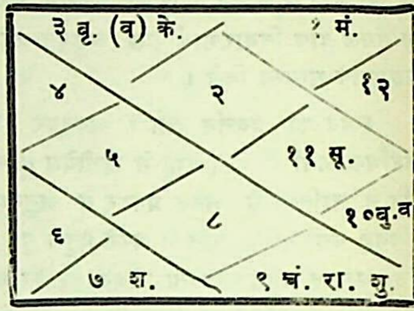
जन्म तिथि—१९-२-१९५५

जन्म समय—:२ : २२ अपराह्न

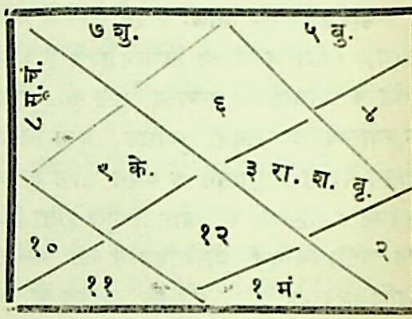
जन्म स्थान —आसनसोल (अक्षांश २३ : ४२ उत्तर, रेखांश–८७ : १ पूर्व)

ग्रह स्पष्ट—

लग्न	५६ : ५२
सूर्य	३०६ : ३६
चंद्रमा	२६५ : ५४
मंगल	१ : ४४
बुध (व)	२९३ : २६
वृहस्पति (व)	८७ : ४१
शुक्र	२६१ : १९
शनि	२०७ : ५१
राहु	२४९ : ३८
केतु	६९ : ३८



नवांश चक्र



जन्म के समय शुक्र की भोग्य विंशोत्तरी महादशा—१ वर्ष १ मा० २४ दि० ।

प्रस्तुत जन्मांग एक अनिंद्य सुंदरी जातिका का है। द्वादशभावस्थ मंगल एवं उस पर शनि की दृष्टि के कारण दाम्पत्य सुख का विध्वंस हुआ। एक विजातीय उच्चपदस्थ अधिकारी ने जातिका के सौन्दर्य पर लुब्ध होकर उससे विवाह कर लिया। किन्तु परिणय-पर्व के १० मास बाद एक जीप दुर्घटना में जातिका के पति ने प्राण त्याग दिये। ७ वर्ष तक जातिका एकाकी जीवन व्यतीत करती रही। इस बीच जातिका का देवर युवा हो गया। जातिका का उससे अवैध सम्बन्ध हुआ, यद्यपि जातिका के सास-ससुर ने उसके समक्ष करबद्ध प्रार्थनायें कीं। किन्तु समस्त कुल-शील-मर्यादा त्याग कर जातिका अपने देवर के साथ अवैध पत्नी के रूप में रह रही है।

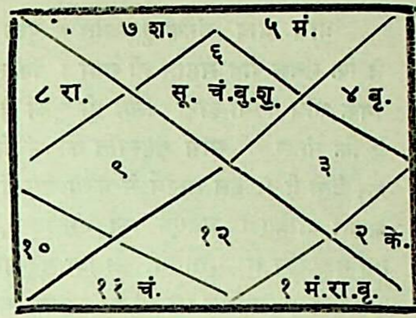
उदाहरण संख्या १२.

जन्म तिथि—१८–९–१९५५

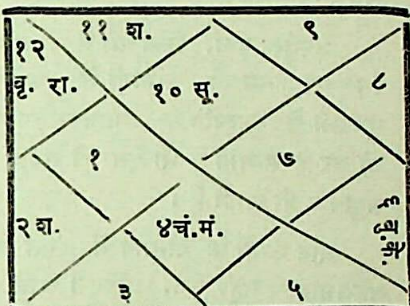
जन्म समय—६–० पूर्वाह्न

जन्म स्थान—नैनीताल (अक्षांश–२९ : २२ उत्तर, रेखांश–७९ : २६ पूर्व)

लग्न	१५० : ४२
सूर्य	१५१ : ५
चंद्रमा	१७२ : ३२
मंगल	१४० : ३१
बुध	१७७ : ३१
बृहस्पति	११७ : २५
शुक्र	१५५ : ३७
शनि	२०४ : ६
राहु	२३८ : २५
केतु	५८ : २५



नवांश चक्र



जन्म के समय चंद्रमा की भोग्य विंशोत्तरी महादशा--० व० ७ मा० ४ दिन।

इस जन्मांग में द्वादशभावस्थ मंगल अष्टमेश भी है। जातिका का विवाह ७-५-१९७५ को सम्पन्न हुआ। किन्तु पहली पुत्री के जन्म (१६–८–१९७७ के साथ) ही जातिका के जीवनाकाश पर निराशा का अभेद्य कुहासा छाना प्रारम्भ हो गया। और दो पुत्रियों के जन्म के अनंतर तो जातिका का जीवन नारकीय हो गया। जातिका अनेक भीषण रोगों से ग्रस्त हो गई। परिवार की प्रताड़ना का एकमात्र लक्ष्य बनकर जातिका अपने जीवन का शव ढो रही है।

मंगल-दोष से संबद्ध कुछ भ्रामक तथ्यों की पुनर्व्याख्या :—

महर्षि पराशर द्वारा निम्नलिखित शब्दों में वर्णित मंगल कुज-दोष के संदर्भ में आचार्यों के विवाद का आस्पद रहा है—

क्रूरो रक्तारुणो भौमश्चपलोदारमूर्तिकः।
पित्तप्रकृतिकः क्रोधी कृशमध्यतनुर्द्विजः॥

[अर्थात् (भौम) क्रूर, अरुणवर्ण, चपल, उदार, पित्त प्रकृति, क्रोधी और कृश कटि वाला होता है।]

कुज दोष के सम्बन्ध में अनेक अन्तर्विरोधपूर्ण वक्तव्य प्राप्त होते हैं। अधोलिखित पंक्तियों में ऐसे ही कुछ परम्परा–प्राप्त तथ्यों का पुनर्निरीक्षण प्रस्तुत है :—

प्रायः यदि मंगल बृहस्पति से युक्त अथवा दृष्ट हो तो यह घोषणा कर दी जाती है कि मंगल-दोष समाप्त हो गया। किन्तु यह विचार सत्य से नितान्त परे है। आधुनिक शोध कार्यों द्वारा सिद्ध हो चुका है एवं मेरे अनुभव द्वारा भी प्रमाणित हो चुका है कि मंगल के साथ बृहस्पति की संयुति कुज-दोष को अनेक आयामों में परिवर्द्धित कर देती है। इस सन्दर्भ में कल्याणवर्मा की सारावली का गम्भीरतापूर्वक अनुशीलन करना चाहिए। अतएव यदि मंगल १, २, ४, ७, ८ एवं १२वें भाव में संस्थित हो एवं बृहस्पति से युक्त हो, अथवा बृहस्पति और मंगल एक दूसरे से सप्तमस्थ हों तो कुज-दोष सहस्राधिक परिवर्द्धित मानना चाहिए।

यदि शुक्र, मंगल और बृहस्पति सहसंस्थित हों, परस्पर सप्तमस्थ हों, परस्पर केन्द्रगत हों तो कुज-दोष अत्यन्त तीक्ष्ण हो जाता है।

उपर्युक्त दानों स्थितियों में न्यायोचित होगा कि मंगल-दोष के निरस्तीकरण के लिए वर-कन्या के जन्मांगों में एक ही प्रवृत्ति का कुज-दोष हो। यदि कन्या की कुण्डली में बृहस्पति के प्रभाव-स्वरूप कुज दोष की तीक्ष्णता परिवर्द्धित हो रही हो तो वर के जन्मांग में भी ऐसा ही संयोग होना चाहिए। अन्यथा विघटनात्मक स्थितियाँ समुत्पन्न हो जाती हैं।

यदि कन्या के जन्मांग में मंगल अष्टमभावस्थ हो तो वर के जन्मांग में मंगल सप्तमभावस्थ नहीं होना चाहिए। प्रायः इस स्थिति में ज्योतिषी मंगल दोष विनष्ट होने का अनुमान कर लेते हैं। किन्तु दोनों जन्मांगों में कुज दोष उपस्थित होने का सिद्धान्त यहाँ व्यवहार्य नहीं है। वर की कुण्डली का सप्तमभावस्थ मंगल पत्नी के स्वास्थ्य के निमित्त विपरीत है एवं कन्या की कुण्डली का अष्टमभावस्थ मंगल उसके अपने स्वास्थ्य के लिए विध्वंसक है। इस प्रवृत्ति के जन्मांगों की तुलना करते समय विवाह की अनुमति नहीं प्रदान करनी चाहिए। अन्यथा पाणिगृहीता पत्नी असाध्य व्याधि से ग्रस्त रहती है अथवा अकाल-काल-कवलित होती है।

यदि जन्मांग में दोषयुक्त मंगल शनि से युक्त अथवा दृष्ट हो तो मंगल-दोष परिवर्द्धित हो जाता है।

बृहस्पति की राशि में संस्थित मंगल दोष की दृष्टि से अत्यन्त घातक होता है। इस पर विशिष्ट शोध हुई है। सारावली में कल्याणबर्मा ने मंगल की इस स्थिति को अशुभ बताया है।

परस्पर सप्तमस्थ शनि-मंगल मंगलदोष को वर्द्धित करते हैं।

यद्यपि स्वगृही मंगल अपेक्षाकृत न्यून घातक होता है किन्तु मेष राशि संस्थित मंगल प्रबल घातक होता है।

पापाक्रान्त मंगल अत्यन्त दोषपूर्ण सिद्ध होता है।

उपर्युक्त स्थितियों के सतर्क परीक्षण-निरीक्षण के उपरान्त ही किसी निष्कर्ष की घोषणा करनी उचित होगी।

मंगल की अपवाद परक दोष स्थितियाँ

मंगल दोष के विषय में अन्तिम अथवा अन्यतम निर्णय देने के पूर्व स्थितियों और योगों का भली-भाँति अध्ययन करना चाहिए। किंचित् असावधानी अत्यन्त घातक निष्कर्ष प्रदान कर सकती है। मंगल-दोष के संदर्भ में निम्नलिखित अपवादों को सर्वदा चिन्तन-पटल पर चेतन रखना चाहिए। इन स्थितियों में मंगल-दोष नहीं होता :—

यदि मंगल चतुर्थ अथवा सप्तम भावस्थ हो तथा किसी क्रूर ग्रह से युक्त या दृष्ट न हो एवं इन भावों में मेष, कर्क, वृश्चिक अथवा मकर राशियाँ विनियोजित हों।

यदि लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम अथवा द्वादश भाव में सबल चन्द्र, बृहस्पति अथवा बुध की मंगल के साथ सहसंस्थिति हो।

यदि वृष या तुला राशि परक मंगल चतुर्थ अथवा सप्तम भावस्थ हो।

यदि मिथुन अथवा कन्या परक मंगल द्वितीय भावस्थ हो।

यदि बृहस्पति की राशि में अष्टमभावस्थ मंगल हो। परन्तु मंगल बृहस्पति की शोध के पश्चात् यह स्थिति मंगल दोष में वृद्धि का कारण है न कि निरस्तीकरण का।

यदि मंगल कर्क अथवा मकर राशिगत हो।

यदि मंगल अश्विनी, मघा अथवा मूल नक्षत्र में संस्थित हो।

यदि शुक्र की राशि में द्वादशभावस्थ मंगल हो।

यदि अष्टमभावस्थ मंगल से युक्त जन्मांग की लग्न कर्क या सिंह हो।

यदि वृष अथवा सिंह लग्न संयुक्त जन्मांग में मंगल द्वितीय भावस्थ हो।

यदि मंगल सूर्य की राशि अथवा चन्द्र की राशि अथवा आत्मोच्च राशि में अथवा स्वगृही हो।

यदि स्वराशिगत मङ्गल चतुर्थ, सप्तम, अष्टम अथवा द्वादश भावस्थ हो।

यदि चतुर्थ भावस्थ मङ्गल तुला अथवा वृष राशिगत हो।

यदि द्वादशभावस्थ मङ्गल कन्या, मिथुन, वृष अथवा तुला राशिगत हो।

दम्पत्योर्जन्मकाले व्ययधनहिबुके सप्तमे लग्नरन्ध्रे
लग्नाच्चन्द्राच्च शुक्रादपि भवति यदा भूमिपुत्रो द्वयोर्वै।
तत्साम्यात्पुत्रमित्रप्रचुरधनपती दम्पती दीर्घकालं
जीवेतामेकहा न भवति मृतिरिति प्राहुरत्रात्रिमुख्याः।[1]

अर्थात् यदि वर और कन्या के जन्मांग में मंगल द्वितीय, द्वादश, चतुर्थ, सप्तम, अथवा अष्टम भाव में लग्न, चन्द्र अथवा शुक्र से समभाव में स्थित हो तो समता का मंगलदोष होने के कारण वह प्रभावहीन हो जाता है। परस्पर सुख, धनधान्य, संतति, स्वास्थ्य एवं मित्रादि की उपलब्धि रहती है।

जामित्रे च यदा सौरिर्लग्ने वा हिबुकेऽथवा।
अष्टमे द्वादशे वाऽपि भौमदोषविनाशकृत्॥

अर्थात् यदि एक जन्मांग में मंगल १, २. ३, ४, ७, ८, १२ में संस्थित हो तथा द्वितीय जन्मांग में शनि इन्हीं भावों में से किसी में संस्थित हो तो मंगल दोष निरस्त हो जाता है।

सबले गुरौ भृगौ वा लग्ने द्यूनेऽपि वाऽथवा भौमे।
वक्रिणि नीचगृहे वार्कस्थे वा न कुजदोषः॥

अर्थात् यदि लग्न अथवा सप्तम भाव में शुक्र अथवा बृहस्पति संस्थित हो एवं मंगल दुर्बल हो। ऐसा कहा गया है परन्तु शोध से सिद्ध हुआ कि मंगल पर बृहस्पति के प्रभाव से मंगल दोष में वृद्धि होती है।

यदि मंगल शनि द्वारा संचालित राशि में हो।

उपर्युक्त योग-संयोगों के परिणामस्वरूप मंगल-दोष नहीं होता। अतएव इन्हें कंठाग्र कर लेना चाहिए।

मंगल दोष के परिहार :—

मंगल-दोष ने जनमानस में आतंक के इतने सशक्त सूत्र प्रारोपित कर लिये हैं कि मंगली जातक अथवा जातिका का विवाह एक दुर्धर्ष समस्या बन जाती है। किन्तु सुविधानित माध्यमों से विचार करने पर इसके परिहार के अनेकानेक बिन्दु स्पष्ट हो जाते हैं। मंगल-दोष को सुनिश्चित करने के अनन्तर निम्नांकित निदानों का आचार्यानुमोदित उपयोग-प्रयोग करना चाहिए।

मंगल दोष दूषित जातिका को एक पंचमुखी दीप प्रज्ज्वलित करके मंगल ग्रह एवं अपने इष्ट का सविधि षोडशोपचार अथवा पंचोपचार पूजन करना चाहिए। पूजनोपरान्त श्री मंगल-चण्डिका स्तोत्र का १०८ दिवस तक नित्यप्रति ७ अथवा २१ जप करना चाहिए।

"रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मंगलचंडिके।
हारिके विपदां राशे हर्षमंगलकारिके॥
हर्षमंगलदक्षे च हर्षमंगलदायिके।
शुभे मंगलदक्षे च शुभे मंगलचंडिके॥

मंगले मंगलार्हे च सर्वमंगलमंगले ।
सदा मंगलदे देवि सर्वेषां मंगलालये ॥"

माँ गौरी का पंचमुखी दीप प्रज्ज्वलित करके पंचोपचार अथवा षोडशोपचार पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् १०८ दिन तक ७ अथवा २१ बार पार्वती स्वयंवर का पाठ करना चाहिए।

"बालार्कायुतसत्प्रभां करतले लोलम्बमालाकुलां
मालां सन्दधतीं मनोहरतनुं मन्दस्मितोद्यन्मुखीम् ।
मन्दं मन्दमुपेयुषीं वरयितुं शंभुं जगन्मोहिनीं
बन्दे देवमुनीन्द्रवन्दितपदां इष्टार्थदां पार्वतीम् ॥"

मंगल असमराशि—संस्थित होने पर भगवान् सुब्रह्मण्यम् की आराधना करनी हितकर होती है।

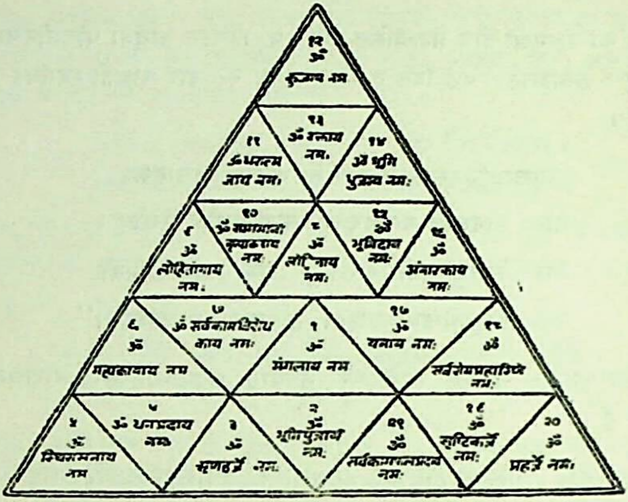
मंगल समराशि – संस्थित होने पर अम्बाला की उपासना करनी चाहिए।

मंगल के वैदिक मंत्र का १०८ दिवस तक ७ अथवा २१ माला जप करना चाहिए। आशु प्रभाव के लिए १०,००० आवृत्ति में जप का एक पुरश्चरण करना चाहिए।

यदि कन्या भीषण मंगल-दोष दूषित हो तो भावी सौभाग्य को समयोचित करने के लिए कुम्भ, पीपल अथवा विष्णु वर की प्राणप्रतिष्ठित प्रतिमा के साथ परिक्रमा करके चिरंजीव वर के साथ परिणय सम्पन्न हो तो दोष प्रभावी नहीं होता, पुनर्विवाह का दोष भी आक्षेपित होने से मुक्ति मिलती है। यह क्रिया अत्यन्त गुप्त रूप से सम्पन्न होनी चाहिए। उल्लेखनीय है कि कन्या स्वयं आस्पद (कुम्भ, पीपल, विष्णु) का वरण करे। पिता इसमें निष्क्रिय रहे क्योंकि शास्त्रानुसार कन्या का दान एक बार ही किया जाता है। यदि वर से पूर्व आस्पद को कन्या दान दे दिया जायेगा तो पुनः दान का महापाप आरोपित होगा। अतएव पूर्व परिणय में कन्या स्वयं वरण करे। किन्तु यह परिणय सुपर्ण विधि विधान के साथ निष्पन्न हो, अन्यथा दोष का प्रामाणिक परिहार नहीं होगा। गोपनीयता इस विधि की प्राथमिक और अंतिम प्रतिज्ञा होनी चाहिए। परिणय के निमित्त प्रेषणीय लग्न-पत्रिका से पूर्व वह परिहार-प्रक्रिया संपन्न होनी चाहिए।

अमंगल व अशुभ की निवृत्ति व शुभ की सिद्धि के लिए मंगल यंत्र प्रयोग एक अमोघ उपाय सिद्ध हुआ है इसका विधान इस प्रकार है।

मङ्गल यन्त्र



१. इसका षडक्षर मंत्र इस प्रकार है—

"ॐ ह्रां ह्रां सः खं खः ।"

विनियोग—

अस्य मंगलमंत्रस्य विरूपाक्षऋषिः गायत्री छन्दः मंगलो देवता, सर्वेष्टसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास—

ॐ विरूपाक्षऋषये नमः शिरसि
ॐ गायत्रीछन्दसे नमो मुखे
ॐ मंगल देवतायै नमो हृदये

करन्यास

ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः
ॐ ह्रां तर्जनीभ्यां नमः
ॐ ह्रां मध्यमाभ्यां नमः
ॐ सः अनामिकाभ्यां नमः
ॐ खं कनिष्ठिकाभ्यां नमः
ॐ खः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

अंगन्यास

ॐ हृदयाय नमः
ॐ हां शिरसे स्वाहा
ॐ हां शिखायै वषट्
ॐ सः कवचाय हुम्
ॐ खं नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ खः अस्त्राय फट्

ध्यान

मन्त्र–१

जपाभं शिवस्वेदजं हस्तपद्मैर्गदाशूलशक्तीर्वरं धारयन्तम्।
अवन्तीसमुत्थं सुमेपायनस्थं धरानन्दनं रक्तवस्त्रं समीडे॥

ध्यान करके शिवपीठ की मूलमूर्ति की कामना करके अथवा त्रिकोण ताम्र यंत्र की स्थापना करके प्राण प्रतिष्ठा, आवाहन और उपचार करके मंगल की पूजाकर आवरण पूजा करनी चाहिए।

मंत्र–२

रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः।
चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरासुतः॥

ध्यान के पश्चात् इस प्रकार से आवाह्न, स्थापन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गंध और पुष्प सर्मपित करने चाहिए।

भौम पूजन

बाह्य त्रिकोण (मंत्र) के २१ कोष्ठों में निम्नलिखित मंत्रों से पूजन करें—

ॐ मंगलाय नमः
ॐ भूमिपुत्राय नमः
ॐ ॐ ऋणहर्त्रे नमः
ॐ धनप्रदाय नमः
ॐ स्थिरासनाय नमः
ॐ महाकायाय नमः
ॐ सर्वकर्मावरोधकाय नमः
ॐ लोहिताय नमः
ॐ लोहिताक्षाय नमः
ॐ सामगानां कृपाकराय नमः

ॐ धरात्मजाय नमः
ॐ कुजाय नमः
ॐ भौमाय नमः
ॐ भूतिदाय नमः
ॐ भूमिनन्दनाय नमः
ॐ अङ्गारकाय नमः
ॐ यमाय नमः
ॐ सर्वरोगापहारकाय नमः
ॐ वृष्टिकर्त्रे नमः
ॐ अपहर्त्रे नमः
ॐ सर्वकामफलप्रदाय नमः

दिक्पाल पूजन

ॐ इं इन्द्राय नमः
ॐ अं अग्नये नमः
ॐ यं यमाय नमः
ॐ निं निर्ऋतये नमः
ॐ वं वरुणाय नमः
ॐ वां वायवे नमः
ॐ कुं कुवेराय नमः
ॐ ईं शानाय नमः
(ऊर्ध्वं) ॐ ब्रं ब्रह्मणे नमः
(अधः) ॐ ॐ अं अनन्ताय नमः

आयुध पूजन

ॐ वज्राय नमः
ॐ शक्तये नमः
ॐ दण्डाय नमः
ॐ खड्गाय नमः
ॐ पाशाय नमः
ॐ अंकुशाय नमः
ॐ गदायै नमः
ॐ त्रिशूलाय नमः
ॐ पद्माय नमः
ॐ चक्राय नमः

आयुध पूजन के बाद आवरण पूजा करके धूप, दीप, नैवेद्य आदि से पूजन करके अर्घ्य देना चाहिए और साष्टांग प्रणाम करके उपरोक्त वर्णित मंत्र का विधिपूर्वक जाप करना चाहिए। इसका पुरश्चरण ६ लाख जप माना गया है। जप के बाद दशांश हवन अनिवार्य होता है।

स्तोत्र

किसी भी साधना के साथ इन मंगल स्तोत्रों का पाठ किया जा सकता है। इन्हें स्वतंत्र साधना के रूप में भी अपनाया जा सकता है इनके प्रभाव से सब ओर मंगल ही रहेगा।

मंगलस्तोत्रम्

गणाधिपो भानुशशी धरासुतो बुधो गुरुर्भार्गवसूर्यनन्दनौ।
राहुश्च केतुश्च परे नवग्रहाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ १ ॥
उपेन्द्र इन्द्रो वरुणो हुताशनस्त्रिविक्रमो भानुसखश्चतुर्भुजः।
गन्धर्वयक्षोरगसिद्धचारणाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ २ ॥
नलो दधीचिः सगरः पुरूरवा शाकुन्तलेयो भरतो धनंजयः।
रामत्रयं वैन्यवलौ युधिष्ठिरः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ३ ॥
मनुर्मरीचिर्भृगुदक्ष-नारदाः पराशरो व्यास-वशिष्ट-भार्गवाः।
वाल्मीकि-कुम्भोद्भव-गर्ग-गौतमाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ४ ॥
रंभा शची सत्यवती च देवकी गौरीच लक्ष्मीश्च दितिश्चरुक्मिणी।
कूर्मो गजेन्द्रः सचराचरा धरा कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ५ ॥
गंगा च क्षिप्रा यमुना सरस्वती गोदावरी वेत्रवती च नर्मदा।
सा चन्द्रभागा वरुणा त्वसी नदी कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ६ ॥
तुंग-प्रभासे गुरुचक्रपुष्करो गयाऽ विमुक्ता बदरी वटेश्वरः।
केदार-पंपासरसश्च नैमिषः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ७ ॥
शंखश्च दूर्वासित-पत्रचामरो मणिः प्रदीपो वररत्नकांचनम्।
सम्पूर्णकुम्भः सुहुतो हुताशनः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ८ ॥
प्रयाणकाले यदि बा सुमंगले प्रभातकाले च नृपाभिषेचने।
धर्मार्थकामाय जयाय भाषितं ब्यासेन कुर्यात्तु मनोरथं हि तत् ॥ ९ ॥

सावित्री व्रत

मंगल दोष-दूषित जातिकाओं को सविधि-सश्रद्धा सावित्री-व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। इस व्रत का विधि-विस्तार व्रतादि से संबद्ध अध्याय में उद्धृत है।

मंगला गौरी व्रत

वैधव्य दोष नाश के लिये यह सर्वोत्तम व्रत है जो स्वयं भगवान् शंकर ने सनत्कुमार को बताया था।

किसी कन्या के जन्मांग में यदि प्रबल कुज दोष हो अथवा वैधव्य कारक ग्रह संस्थित हों तो इस व्रत को निश्चय ही करना चाहिये। इस व्रत को ५ वर्ष तक कर लेने पर वृद्धावस्था में भी वैधव्य नहीं प्राप्त होता है। यह एक अत्यन्त परीक्षित प्रयोग है।

मगल-दोष निर्धारण : एक तुलनात्मक गणितीय प्रविधि

प्रस्तुत विवेचन अत्यन्त विरलज्ञात तथ्य है। इस प्रविधि से मङ्गल दोष दूषित जन्मांगों का विश्लेषण करके प्रामाणिक रूपेण दोष की क्षमता की घोषणा की जा सकती है। प्रायः मङ्गली जातिका का परिणय मङ्गली जातक से करने की शास्त्रानुमोदित लोकरीति है। किन्तु मेलापक के समय मात्र सामान्य रूप से दृष्टिपात उचित नहीं होता, दोष की प्रभाववत्ता एवं भावानुसार उसकी फलवत्ता पर भी ध्यान केन्द्रित रहना चाहिए, यथा चतुर्थ भावस्थ अथवा द्वादश भावस्थ मङ्गल मष्टमभावस्थ अथवा सप्तमभावस्थ मङ्गल की अपेक्षा न्यून प्रहार-क्षमता रखता है। अतएव इनकी परस्पर तुलना करके दोष के विरेचित होने का निर्णय भ्रामक सिद्ध होता है। वर्तमान काल में ज्योतिष के एक विश्वविश्रुत व्यक्तित्व ने स्वमत दिया है कि वर-वधू के जन्मांगों का तुलनात्मक गणितीय विश्लेषण करके निष्कर्ष प्राप्त करना चाहिए कि किसका मङ्गल दोष प्रबल है और किसका क्षीण बल।

मङ्गल, शनि, सूर्य, राहु और केतु क्रूर ग्रह परिगणित किये गये हैं। इनके १, २, ४, ७, ८, १२ भाव में संस्थित होने से किसी न किसी सन्दर्भ में अवांछित क्लेशद परिस्थितियाँ समुत्पन्न होती हैं। इनका भी तुलनात्मक विवेचन करना चाहिए। यथा उच्चराशिस्थ मङ्गल शत्रुराशिस्थ अथवा नीचराशिस्थ मङ्गल की अपेक्षा कम, दूषित होता है। दृष्टि इत्यादि के परिणामस्वरूप परिवर्तित-परिवर्द्धित होता रहता है। **उनकी प्रभावक्षमता एवं मारक-क्षमता की भारात्मकता निम्नलिखित प्रविधि से उपलब्ध करनी चाहिए :—**

वर कन्या के जन्मांग में मंगल दोष की तुलना

	प्रथम	अष्टम	सप्तम	चतुर्थ	द्वादश	द्वितीय
	मंगल	शनि राहु केतु	सूर्य	मंगल	शनि राहु केतु	सूर्य
नीच राशि में	१००	७५	५०	५०	३७·५०	२५
शत्रु राशि में	९०	६७·५०	४५	४५	३३·७५	२२·५०
सम राशि में	८०	६०	४०	४०	३०·००	२०·००
मित्र राशि में	७०	५२·५०	३५	३५	२६·२५	१७·५०
स्व राशि में	६०	४५	३०	३०	२२·५०	१५·००
उच्च राशि में	५०	३७·५०	२५	२५	१८·७५	१२·५०

उपरिअंकित तालिका में एक विशिष्ट तथ्य का समावेश है। मंगल का दोष १,२,४,७,८,१२ भाव में सर्वाधिक होता है। मंगल शनि राहु और केतु इन स्थानों में ७५ प्रतिशत दूषकत्व रखते हैं। सूर्य इन भावों में ५० प्रतिशत ही दोष-बल प्रदर्शित करता है। इन विन्दुओं का अन्तर्-अनुधावन उपरिस्थित तालिका में है।

तालिका के निर्देश में वर-कन्या के जन्मांगों का मंगल दोष के सन्दर्भ में सतर्क तुलनात्मक गणितीय विश्लेपण करना चाहिए। **यदि कन्या के जन्मांग में मंगल दोष की दोष-क्षमता वर के जन्मांग की तुलना में मात्र २५ प्रतिशत अधिक है तो परिणय निश्चित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। यदि वर के जन्मांग का मंगल दोष कन्या के जन्मांग की अपेक्षा परिवर्ध्यमान हो तो परिणय का निषेध करना चाहिए।** उपर्युक्त तालिकापरक विश्लेपण ज्योतिष–गौरव डॉ० वी० वी० रामन् के एक सिद्धान्त को केन्द्रीय तत्व मानकर प्रारूपित किया गया है।

इस प्रकार विषय-समाहार करते हुये कहा जा सकता है कि मङ्गल दोष एक विवादास्पद एवं महत्त्वपूर्ण विषय है। अतएव सर्वप्रथम जन्मांग में मंगल दोष का सुविधानित निश्चय करना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि दोष-निरस्ति का कोई सूत्र तो व्यवहृत नहीं हो रहा है। इस संदर्भ में मङ्गल की अपवादपरक दोषस्थितियों का अभिज्ञान अत्यन्त सहायक होगा। यदि मङ्गल-दोष निरस्त नहीं हो रहा है तो परिहार के प्रयास सक्रिय करने चाहिए। परिहार का चयन दोष की तीक्ष्णता अथवा निर्बलता के आधार पर किया जाता है। किन्तु दूषित होने पर परिहार अन्यतम आवश्यकता है। अन्यथा दाम्पत्य विघटन के अध्याय का पुरोवाक् ही सिद्ध होगा। **जनसामान्य में इस संदर्भ में जो भ्रान्तियां प्रचलित हैं एवं जिन अनर्गल तथ्यों का गर्हित स्वार्थों के लिए भयात्मक प्रचार करके चंचुप्रवेशी ज्योतिषाचार्य स्थितियों की वक्र व्याख्या करते हैं, उनके विषय में उपरिविवेचित शोध बिन्दुओं का अवलंब ग्रहण करके आख्या, आख्यायक एवं आख्येय को रेखांकितेय बनाया जा सकता है।**

—:o:—

पंचम अध्याय

वैवाहिक विलम्ब एवं व्रत

व्रत का तत्त्वार्थ

शब्दों के व्यामोही बन्दनवार टाँग कर भावसंकुलता के दिग्भ्रामक आवर्त्तों में शक्ति के बाह्याभ्यन्तर उद्गमों का अपव्यय करने वाले, जड़ता के सर्वग्रासी आतंक से संत्रस्त इस युग में व्रत एक ऊर्जस्वल भाव-निधि है। व्रत असंयम के विरुद्ध संयम का विजयकेतु है और संकल्प व्रत का प्रधान विन्दु। तपश्चर्या व्रत की सांगोपांग विकसित साधना-चर्या है। साम्प्रतिक समाज एवं युग में व्रत अनादि काल से अप्रतिहत सत्संकल्प की उस तपः पूत परम्परा का घनीभूत अंश है जिसमें समस्त आर्यावर्त्त का सांस्कृतिक विगत सुरभित-सुरक्षित है। भारतीय संस्कृति का समग्र विकास आदि पुरुषों एवं पूर्वपुरुषों के तप का ही प्रतिफल है। तप की भूरि-भूरि प्रशस्ति पुरासाहित्य में की गई है। विश्वविश्रुत काव्य रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने मत व्यक्त किया है—

"तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा॥"

व्रत तप का ही एक प्रासंगिक संक्षिप्त स्वरूप है। व्रत का विधान वहुधा आध्यात्मिक अथवा मानसिक शक्ति की प्राप्ति. चित्त अथवा आत्मा की शुद्धि, संकल्प शक्ति की दृढ़ता, भक्ति और श्रद्धा के विकास, वातावरण की पवित्रता, विचारों के उच्च एवं परिष्कृतीकरण तथा प्रकारान्तर से स्वास्थ्य की प्रगति के लिए होता है, ऐसा आचार्यों का अभिमत है। भारतीय व्रत तप का ही एक प्रासंगिक संक्षिप्त स्वरूप है। भारतीय जनजीवन प्रारम्भ से ही व्रत के द्वारा अपने भौतिक एवं पारलौकिक संसार की सुव्यवस्था करता रहा है। दिवस, तिथि, मास, पर्व, देवता, ग्रह, पौराणिक पात्र-घटना-अवसर, लोक-विश्वास, शास्त्रानुशासन आदि के आधार पर भारतीय संस्कृति में इतने व्रतों का विधान है कि उसमें प्रत्येक वर्ण, वर्ग, आयु, जाति, विश्वास, साधनापद्धति, आश्रम, पुरुषार्थ और अभिलाषा के लिए समान अवसर है।

व्रत और उपवास के पार्थक्य बिन्दु

व्रत का एक समानार्थी शब्द उपवास भी जनसामान्य में पर्याप्त प्रचलित है। प्रायः व्यक्ति व्रत और उपवास का प्रयोग एक ही अर्थ में करते हैं। परन्तु ये दोनों शब्द व्युत्पत्ति, भाव और प्रयोग की दृष्टि से नितान्त पृथक हैं। **उपवास भोजन ग्रहण न**

करने के अर्थ में प्रयोज्य है। व्रत का तात्पर्य है किसी विशिष्ट अभिलाषा की पूर्ति के उद्देश्य से एक विशिष्ट विधि सहित प्रण अथवा संकल्प का ग्रहण। व्रत में भोजन न करने का कोई आत्यंतिक नियम नहीं है। व्रत और उपवास के नियम पृथक-पृथक हैं। उपवास का कोई भेद-प्रभेद नहीं प्राप्त होता, किन्तु व्रत के अनेकानेक भेद-उपभेद होते हैं। उपवास मूल रूप से संबद्ध है। व्रत दैहिक-मानसिक,हार्दिक-वैचारिक-आध्यात्मिक-आर्थिक संयम-संशोधन-संस्कार से संदर्भित है। उपवास मूलतः वहिर्मुखी होता है और व्रत मौलिक रूप से अंतर्मुखी, व्रत और उपवास के इन पार्थक्य विन्दुओं का सदैव ध्यान रखना चाहिए।

अनुकूल व्रत चयन

वैवाहिक विलम्ब के संदर्भ में व्रत का विधान शास्त्र एवं लोक अनुमोदित है पुरुष और स्त्री दोनों जातक अपने अनुकूल व्रत के प्रयोग से प्रभूत लाभ उपलब्ध कर सकते हैं। सुयोग्य संस्कारी आचार्य का निर्देश प्राप्त करके व्रत प्रारम्भ करना चाहिए। वैवाहिक विलम्ब के लिए सोमवार एवं शुक्रवार के व्रत विधानित किये गये हैं। वार-व्रत का चयन जन्मांग के आधार पर सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। चन्द्रमा के दूषित अथवा निर्बल होने पर शुक्रवार का व्रत हितकर होता है। सप्तम भाव पर किस ग्रह का सर्वाधिक प्रभाव है। यदि सप्तम भाव ग्रहविहीन है तो सप्तमेश की भाव-राशि-संस्थिति, लग्न में यदि चन्द्र अथवा शुक्र संस्थित है तो इनकी प्रकृति आदि विन्दुओं का विवेचन भी इस दिशा में मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

व्रत-विधि

व्रत-ग्रहण की एक विशिष्ट विधि है जिसका सम्यक अनुपालन करना चाहिए। व्रत के लिए स्वयं को विशेष व्यवस्थित करना पड़ता है। निश्चित तिथि से एक दिन पूर्व से व्रत की चर्या प्रारम्भ हो जाती है। प्रायः व्यक्ति व्रत से एक दिन पूर्व सामान्य से अधिक भोजन कर लेते हैं। जिससे व्रत की भावना तो क्षति पाती ही है, स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। व्रत के दिन की पूर्वसंध्या से ही आत्म-अनुशासन प्रारम्भ करना चाहिए। पूर्व संध्या को अल्पाहार ग्रहण करके शयन करना चाहिए और पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ब्रह्मचर्यानुशासन का विधान व्रत के अनन्तर वाले दिवस के लिए भी है।

व्रत के दिवस प्रातःकाल नित्यक्रियायें सम्पन्न करने के पश्चात शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिए। तत्पश्चात पूर्व या उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर हाथ में जल, चावल, सुपारी, पैसे और पुष्प लेकर संकल्प करना चाहिए। संकल्प मानसिक केन्द्रीकरण एवं चित्तवृत्ति एकाग्र करने के लिए किया जाता है। संकल्प ग्रहण करने से

आन्तरिक प्रसुप्त शक्तियाँ सजग होकर व्यक्ति को बलवती प्रेरणा से ओतप्रोत कर देती हैं।

संकल्प में अपना नाम, पिता अथवा पति का नाम (यथास्थिति), तिथि, वार, संवत्, पक्ष मास, नक्षत्रादि, गोत्र, स्थान, व्रत का नाम, व्रत के देवता का नाम, अभीष्ट, अभिलाषा का सम्पूर्ण शुद्ध एवं अभिधात्मक उल्लेख होना चाहिए। इसकी भाषा अग्रांकित है :—

"ओम तत्सत् अद्य..............संवत्सरे मासानां मासोत्तमे..........मासे शुभे ....पक्षे..............तिथौ..........वासरे............देवता............व्रतस्य ....कार्यार्थम्..........संख्याकं व्रतमहं करिष्ये।"

संकल्प विहीन व्रत उपवास में परिवर्तित हो जाता है। संकल्पग्रहणोपरान्त विधिवत व्रतारम्भ होता है, संकल्प खंडित करना चारित्रिक क्षरण एवं पुण्य विनष्टि के साथ-साथ आन्तरिक स्खलन को प्रतिपादित करना होता है। शास्त्रानुसार—

"पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो नाचरेत् काममोहितः।
जीवन् भवति चांडालो मृतः श्वा चैव चायते॥"

जो व्यक्ति पहले व्रत ग्रहण कर काम या प्रमाद वश उसे अधूरा छोड़ देता है वह इस जीवन में चाण्डाल के समान है और मरकर कुत्ते की योनि में उत्पन्न होता है।

संकल्प से व्रतस्थ व्यक्ति में क्षमा, सत्यभाषण, सत्य व्यवहार, दया, दान, पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, देवपूजा, हवन, संतोष, अस्तेय आदि सदाचरणों की अपेक्षा की जाती है—

"क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहवनं सन्तोषस्तेयवर्जनम्॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः॥"

व्रत के प्रमुख अकरणीय ध्यातव्य तथ्य

सम्यक् संकल्प ग्रहणोपरान्त व्रत की चर्या को सुसंगठित करने के लिए कुछ करणीय एवं अकरणीय तथ्यों का अग्रांकित पंक्तियों में उल्लेख प्रस्तुत है :—

"असकृत् जलपानाच्च सकृत् ताम्बूलभक्षणात्।
उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥"

(अर्थात् पुनः पुनः जलपान करने से, एक बार पान खाने से दिन में सोने से एवं मैथुन करने से व्रत विनष्ट हो जाता है।)

"प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत्।
न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन॥"

(अर्थात् व्रतारंभ होने पर यदि नारियाँ ऋतुमती हो जायँ तो भी व्रत खण्डित नहीं माना जाता।)

"समारब्धे व्रते पश्चात् व्रतभंगो भवेद् यदि।
गोदानं च ततः कृत्वा पुनर्व्रतं ततश्चरेत् ॥"

(अर्थात् व्रतारम्भ होने पर यदि किसी अवरोध से वह खंडित होता है तो गोदान देकर पुनः व्रत आरम्भ किया जा सकता है। गोदान का परिवर्तन आज के संदर्भ में धन, वस्त्र, फल, पुष्प और अन्नादि से किया जा सकता है।)

"पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्।
पत्युः संहरते चायुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥"

(अर्थात् पति की उपस्थिति में उसकी आज्ञा-प्राप्ति के विना पत्नी को व्रत नहीं करना चाहिए। ऐसा करने पर पति की आयु क्षीण होती है अथवा वह नरकगामिनी होती है।)

व्रत के दिवस यथासंभव मौन का पालन करना चाहिए। वार्ता का अवसर आने पर भी रजस्वला स्त्री, म्लेच्छ, नास्तिक और आराध्य अथवा व्रत के निन्दक का परिहार करना चाहिए।

व्रत मानसिक रूप से पवित्र रहने पर ही पूर्ण फलप्रदाता होता है। अतएव व्यावहारिक प्रपंचों (क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, परनिन्दा, आलंभ) से स्वयं को विलग रखना चाहिए। असत्य-भापण तो कदापि नहीं करना चाहिए।

संकल्प अथवा अर्चन के समय प्रयुक्त आसन को तत्पश्चात् हटाकर उस स्थल का दक्षिण अथवा दोनों हाथ से स्पर्श करके मस्तक से अवश्य लगाना चाहिए।

व्रत में एक समय किसी समकक्ष व्यक्ति (मित्र, सहेली, पति, पत्नी, ननद, भाभी, भाई, साली और साढ़ू) की उपस्थिति में अथवा एक ब्राह्मण का भोजनांश पहले पृथक करके भोजन ग्रहण करना चाहिए।

व्रत के दिन सम्बद्ध देवी-देव का चिन्तन, सात्विक साहित्य का अध्ययन एवं ऊर्ध्वगामी विचारों का अवगाहन करना चाहिए। व्रत के दिन शयन का निषेध है।

व्रत का तात्पर्य ही है कि हे आराध्य ! मैं सर्वथा सात्विक नियम धर्म का परिपालन करते हुये, उपवास अथवा अल्पाहार करते हुये, अवांछित निन्दनीय कार्य का बहिष्कार करते हुये आपके प्रसन्न होने के लिए व्रतस्थ हूँ। जिससे आप तुष्ट होकर मेरी अभिलाषा को पूर्ण करें।

२४ घण्टे का व्रत दुष्कर प्रतीत होने पर संकल्प में उल्लेख करके सायंकाल तक का व्रत कर लेना चाहिए। प्रश्न समय का नहीं, आस्था और श्रद्धा का है।

सायंकाल भोजन से पूर्व शुद्धासन पर अवस्थित होकर, आराध्य से निवेदन करना चाहिए कि आज मैंने अमुक कामना से अमुक व्रत अमुक वार और तिथि को

रखा और अब इसे समाप्त करता अथवा करती हूँ । व्रत-काल में ज्ञात-अज्ञात त्रुटियों के लिए क्षमायाचना करके व्रत समाप्त करना चाहिए ।

व्रत से संवद्ध हवन के प्रसंग में एकवस्त्र धारण करने का निषेध है । सुगन्धित द्रव्य, पुष्प, माला, दो वस्त्र एवं अलंकार को धारण करना चाहिए । फटा और सिला वस्त्र वर्जित है । सभी व्रतों में पुरुषों व स्त्रियों के लिए लाल रेशमी वस्त्र प्रशंसित हैं ।

व्रतस्थ होने पर आचमन के बिना कोई क्रिया नहीं करनी चाहिए । स्नान, भोजन, पान, शयन, छींक का प्रसंग उपस्थित होने पर दाहिने कान का स्पर्श करना चाहिए ।

व्रतस्थ होने पर बैल, ऊँट एवं गधे की सवारी नहीं करनी चाहिए ।

दीर्घकालिक एवं पूर्व संकल्पित व्रत में यदि मध्य में जन्म अथवा मरण का सूतक लग जाय तब भी व्रत भंग नहीं करना चाहिए ।

मार्कण्डेय पुराण, विष्णुवचन, स्कन्दपुराण और वेदव्यास का आग्रह है कि स्त्रियों को व्रत करते समय अपने से वरिष्ठ (पिता अथवा पति) की आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए । सभर्तृका स्त्री को एकादशी का व्रत नहीं करना चाहिए-यद्यपि इसमें पति-आज्ञा मुख्य है ।

' वृद्ध वशिष्ठ के अनुसार व्रत में काष्ठ से दन्त धावन न करें ।

''देवल ऋषि'', विष्णुधर्मोत्तर निर्णयामृत प्रणेता व्यास आदि के मतानुसार शयन, स्त्री-प्रसंग, मांस भक्षण, औषधि-पान आदि प्रसंगों का परिहार करना चाहिए, अन्यथा व्रत-शुद्धि नष्ट हो जाती है ।

''मार्कण्डेय पुराण'' के अनुसार सूर्योदय के अभाव में व्रत और दान का फल नहीं संप्राप्त होता,

छान्दोग्य परिशिष्ट में अंकित है कि **यज्ञोपवीत एवं** ग्रंथित शिखा के अभाव में व्रत निष्फल हो जाता है ।

''पद्मपुराण'' के अनुसार गर्भवती स्त्री, आसन्न सन्तानवती स्त्री, कुमारी, रोगिणी जब तक अशुद्ध हो तब तक किसी सुयोग्य व्यक्ति से व्रत करावें । हेमाद्रि ग्रंथ ने पुरुषों को भी रोगी अथवा अशुद्ध होने पर व्रत के इसी मार्ग का परिपालन करने को कहा है ।

व्रत के संदर्भ में तिथि निर्देश

कुछ तिथि से संबद्ध विशेष तथ्य जिन्हें व्रत के संदर्भ में निष्कषित किया गया है, अग्रांकित हैं । अगस्त्योदय में स्त्रीकर्तृक व्रतों का निषेध है । उद्यानिक व्रत, शिव-पवित्रक, मेघ पूजा, दूर्वाष्टमी और संपूर्ण वर्षाऋतु के स्त्रीव्रत इन्हें अगस्त्य के उदय में

न करें। व्रतारंभ के लिए सोमवार, बुधवार, वृहस्पतिवार और शुक्रवार श्रेष्ठ हैं। अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, उत्तरात्रयी, अनुराधा तथा रेवती नक्षत्र भी व्रतारंभ में आचार्यों द्वारा प्रशंसित हैं। हेमाद्रि ग्रंथ में सत्यव्रत ऋषि ने कहा है कि व्रतारम्भ और व्रत-समाप्ति के अवसरों पर तिथि का विशिष्ट महत्त्व है। जो तिथि उदय-काल में हो और मध्याह्न में न हो वह खण्डतिथि है उसमें व्रतारम्भ और व्रतसमाप्ति न करें। व्रतारंभ अखण्ड तिथि में और समापन भी अखण्ड तिथि में करना चाहिए।

व्रत-उद्यापन के निर्देश

व्रत एक संकल्पित अनुष्ठान है। संकल्प की पूर्ति के पूर्व उसे किसी भी चरण में खंडित अथवा उपेक्षित नहीं करना चाहिए। जिस व्रत के निमित्त संकल्प किया हो उसे सर्वाङ्ग रूपेण पूर्ण करना चाहिए। यदि सोमवार व्रत के संदर्भ में १६ सोमवार के व्रत का संकल्प है तो उसकी पूर्ति करनी चाहिए। संभव है व्रत-मध्य में ही अभिलाषा की पूर्ति हो जाय अथवा पूर्ति की दिशा में उत्साहवर्धक अनुकूल संकेत प्राप्त होने लगें, परन्तु इस प्रमाद में संकल्प का कदापि खण्डन न करें। अन्यथा कोई न कोई अवांछित व्यवधान उत्पन्न हो सकता है।

व्रत समाप्ति पर उद्यापन का विधान है। उद्यापन एक विशिष्ट एवं शास्त्रसम्मत-आचार्यानुमोदित प्रक्रिया से व्रत का समापन है। व्रत का समापन उसके संपूर्ण होने की एवं फलीभूत होने की अत्यन्त घनीभूत अवस्था है।

व्रत पूर्ति के पश्चात उद्यापन के लिए आराध्य का षोडशोपचार अर्चन करना चाहिए। षोडशोपचार में अर्चन क्रम निम्नांकित है—

१.	आवाहन	२.	आसन
३.	पाद्य	४.	अर्घ्य
५.	आचमन	६.	स्नान
७.	वस्त्र	८.	यज्ञोपवीत
९.	गन्ध	१०.	पुष्प
११.	धूप	१२.	दीप
१३.	नैवेद्य	१४.	नीराजन
१५.	प्रदक्षिणा	१६.	नमस्कार, मन्त्र-पुष्पांजलि

जिस आराध्य का उद्यापन अभीष्ट हो उससे संबद्ध सामग्री एवं अन्यान्य निर्देशों का सम्यक् अवधान रखना चाहिए। यथा १६ सोमवार के व्रतान्त में उद्यापन के निमित्त नियमित पूजित शिवालय में रोली, चावल, विल्वपत्र, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, शहद, यज्ञोपवीत, धतूरा फल व फूल, आक का फल व फूल, कमलगट्टा, भाँव के प्रयोग से अर्चन करना चाहिए। उद्यापन से पूर्व रात्रि को जागरण करना चाहिए।

आराध्य को सुन्दर-स्वच्छ रेशमी वस्त्र अर्पित करें। ५ ब्राह्मणों को भोजन करायें। नैवेद्य के निमित्त निर्मित चूरमा यदि स्वयं बनायें तो अत्युत्तम होगा। भोजनोपरान्त ब्राह्मणों को दक्षिणा अवश्य दें।

तदनन्तर व्रत एवं उद्यापन में ज्ञात-अज्ञात अपराधों-त्रुटियों के लिए निश्छल चित्त से आराध्य के समक्ष प्रणत होकर क्षमायाचना करनी चाहिए।

उपर्युक्त सैद्धांतिक विवेचनोपरान्त वैवाहिक विलम्ब के अवरोधों के उन्मूलन के हेतु सोमवार एवं शुक्रवार के व्रतों का विवरण प्रस्तुत है :—

सोमवार-व्रत-विवरण

सोलह सोमवार का व्रत श्रावण, कार्तिक, माघ अथवा वैशाख मास के सोमवार से आरंभित होता है। इस व्रत के आराध्य आशुतोष भगवान् शंकर हैं। उनके व्रती चरण कमलों के प्रति प्रीति और प्रतीति आवश्यक है।

इस व्रत के लिए स्नानोपरान्त शुद्ध वस्त्र धारण कर सर्वप्रथम सविधि संकल्प लें, तदुपरान्त शिवजी का बिल्वपत्र, रोली, चावल, चंदन, पुष्प, धूप, दीप, शहद, जनेऊ, धतूरे का फल व फूल, आक का फल व फूल, कमलगट्टा, भाँव, आदि सामग्री से अर्चन करें। सवा किलो का चूरमा स्वयं बनाकर नैवेद्य समर्पित करें। सवा पाव स्वयं प्रसाद ग्रहण करके शेष वितरित कर दें। व्रत के दिन चूरमें का प्रसाद और फलाहार एक बार ही ग्रहण करें। सोमवार के व्रत की कथा का पाठ श्रवण करें। रात्रि में (यदि संभव हो) आराध्य की प्रतिमा के समीप ही शयन करें।

सोलहवें सोमवार को व्रतसमाप्ति पर उद्यापन करें। व्रत में नमक वर्जित है। उमापति शिव की अकारण-करुण प्रवृत्ति इस व्रत से अत्यन्त तुष्ट होती है और व्रतस्थ जातक को अभिलाषा की शीघ्र प्राप्ति होती है।

शुक्रवार-व्रत विवरण

इस व्रत का सम्बन्ध जनसामान्य में कृपा की देवी के स्वरूप में सुप्रतिष्ठित संतोषी माता से है। इस दिन संतोषी माता की पूजा-व्रत करके, कथा का पाठ करना चाहिए। इस व्रत में गुड़ चने का भोग लगाना चाहिए। इस दिन खट्टी वस्तुयें नितान्त वर्जित हैं। प्रत्येक शुक्रवार को (संकल्पित संख्या के अनुसार) निराहार रहकर अखंड क्रम में व्रत रहना चाहिए। कथा पाठ के समय घी का दीपक निरन्तर प्रज्ज्वलित रहना चाहिए। कार्यसिद्धि पर उद्यापन अवश्य करें। अनुभव से सिद्ध हुआ है कि तीन मास में माँ सन्तोषी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करती हैं।

उद्यापन में अढ़ाई सेर आटे का खाजा एवं इसी परिमाण में खीर और चने का शाक निर्मित करना चाहिए। निकटतम संबन्धों से आठ लड़के बुलाकर उन्हें भोजन

कराना चाहिए। यथाशक्ति दक्षिणा दें। उस दिन घर में खटाई कोई न खाये। इस अवसर पर गोग्रास के रूप में गुड़ चना निकाल कर गाय को खिला दें।

महिलाओं के मध्य अत्यन्त श्रद्धाप्राप्त इस व्रत के प्रति अखंड आस्था रखने से समस्त मनोकामनायें पूर्ण होती हैं।

सन्तोषी माता के अतिरिक्त शुक्रवार का व्रत शुक्र ग्रह के सदोष होने पर उसके निर्दोष प्रभाव के लिए किया जाता है। शुक्र का पूजन श्वेत पुष्प-वस्त्र-चन्दनादि से किया जाता है। एक समय रात्रि में भोजन करना चाहिए। भोजन ग्रहण से पूर्व ब्राह्मण को खीर का नैवेद्य समर्पित करें। सात आवृत्तियों में इसका अनुष्ठान पूर्ण होता है। शुक्रवार को यदि ज्येष्ठा नक्षत्र का योग हो तो व्रत विशिष्ट फल प्रदाता होता है।

वट-सावित्री व्रत-विवरण

यह व्रत मंगल-दोष-दूषित कन्याओं के जीवन में दांपत्य की उचित उपलब्धि एवं उसके स्थायित्व के संदर्भ में अत्यन्त प्रभावकारी और आशुफल-प्रदायी है। यह व्रत ज्येष्ठवदी अमावस्या को होता है। इस दिन बरगद की पूजा होती है। वट-वृक्ष के सम्बन्ध में शास्त्रानुमोदित है कि इसके मूल में ब्रह्मा, तने में विष्णु, उपरिभाग में शिव एवं सर्वांग में सावित्री का निवास होता है। सुख-सौभाग्य, धन-धान्य प्रदाता इस व्रत में व्रतपूर्ण किये बिना जल भी नहीं ग्रहण किया जाता। मृत्यु के देव धर्मराज का संबन्ध इस व्रत से है। व्रतेच्छुक जातिका स्नानादि से निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र धारण करके पूजा की सामग्री की व्यवस्था करती है पूड़ी, हलवा, आटे में शहद, गुड़ या चीनी डालकर वट-वृक्ष-फल के आकार की गोलियाँ बनाकर घी में सेंक लेनी चाहिए। तदुपरान्त इन्हें सूत में पिरोकर माला तैयार करनी चाहिए। शुद्ध थाल में पूजन सामग्री, मिष्ठान्न, पकवान, आदि रखना चाहिए। थाल में शुद्ध जल पूर्ण कलश, चावल, कुंकुम, घी, भीगे चने, गुड़, हल्दी, रोली और कच्चा धागा भी रख लेना चाहिए। समस्त सामग्री लेकर वृक्ष की पूजा करें वृक्ष के तने को प्रक्षालित करके उस पर रोली से तिलक करें। समर्पण हेतु सारी सामग्री चढ़ा दें। वृक्ष के पास घी का प्रज्ज्वलित दीपक रखें। वृक्ष की सात बार परिक्रमा करते हुये हल्दी से रंगे कच्चे सूत्र को वट पर लपेट दें। वट के पत्तों की माला पहन कथा का वाचन और श्रवण करें। तत्पश्चात् प्रार्थना एवं प्रसाद वितरण करें।

सावित्री द्वारा सत्यवान के प्राण यमराज के अंकुश से मुक्त कराने के संदर्भ से ओतप्रोत यह व्रत सौभाग्य-समृद्धि का विलक्षण व्रत है। आस्थानुसार उपरिविवेचित व्रतों में से किसी भी व्रत का ग्रहण वैवाहिक विलम्ब की ऋणात्मकता को नष्ट करके उसके सकारात्मक पक्ष को प्रोत्साहित और उजागर करता है।

वस्तुतः व्रत आस्था की पुष्पांजलि है। श्रद्धा से आपूरित मनःसंसार को लेकर आराध्य की सहज-स्नेह-शरण में जाना चाहिए। भावोच्छ्वसित संकल्प की निष्कंप दीपशिखा में अभीष्ट की उपलब्धि-यात्रा धनात्मक और सर्जनात्मक सिद्ध होती है।

वैधव्य दोष नाशक मंगलागौरी व्रत पूजा विधि

विवाह के पश्चात--उसी वर्ष के प्रथम श्रावणमास शुक्ल पक्ष के मंगलवार को वैधव्य-नाश के लिए तथा पुत्र, ऐश्वर्यादि के लिए पाँच वर्ष तक संकल्पपूर्वक व्रत करें। उसमें गणेश पूजन, कलश पूजन, और घण्टा पूजन करें, तदनन्तर ध्यान करें। आवाहन, आसन, अर्घ्य, आचमन, दुग्ध स्नान, दधि स्नान, मधु स्नान, शर्करा स्नान, कर्पूरादि मिश्रित स्नान, अभ्यंग स्नान, अंगोद्वर्तन स्नान और उष्णोदक स्नान करावें। फिर गन्धादि पंचोपचार पूजा कर शरीर पोंछकर वस्त्र कंचुकी तथा उपवस्त्र, ओढ़ना दें। आभूषण चढ़ायें, सोलह चावल, चने की दाल चढ़ावें। गन्ध, सौभाग्य-द्रव्य, अक्षत, नाना-पुष्प चढ़ावें, तदनन्तर अंगपूजन करें। फिर धूप, दीप नैवेद्य, पान, सुपारी, दक्षिणा, आभूषण, प्रदक्षिणा, नमस्कार, पुष्पांजलि प्रार्थना, दीपक, क्षमादान, विशेषार्घ्य आदि अर्पण करें। तदनन्तर वायनदान और ब्राह्मण पूजन करें। फिर सुवासिनी भोजन संकल्पादि कर विसर्जन करें।

मंगलागौरी व्रत कथा

शिवजी ने कहा—हे सनत्कुमार, सब व्रतों में उत्तम मंगलवार का व्रत कहूँगा। जिसके अनुष्ठान करने मात्र से स्त्रियों का विधवापन दूर हो जाता है। यह व्रत विवाह के पश्चात् पाँच वर्षतक करना चाहिए। इसका नाम "मंगलागौरी" व्रत है। जो सब पापों का नाश करता है (तात्पर्य यह है कि जिस कन्या का विवाह शास्त्रीय विधि से हुआ हो वह कन्या यदि इस व्रत को करेगी तो वैधव्य-दोष से लांछित न होगी)।

इस व्रत को विवाह के अनन्तर प्रथम श्रावण मास शुक्लपक्ष के मंगलवार से करें। फूलों से मण्डप बनाकर उसे केले के स्तम्भों, नाना प्रकार के फलों से और रेशमी वस्त्रों से सुशोभित करें। उसमें अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण से निर्मित या अन्य धातु की बनी देवी की मूर्ति का स्थापन कर पूजन करें। सोलहों उपचारों, सोलह दूर्वादल, सोलह अपामार्गदल, सोलह तण्डुल, सोलह चने की दाल से और सोलह बत्ती के दीपकों से उस प्रतिमा का अर्चन करें। भक्ति से उसमें दही और भात मिश्रित नैवेद्य लगाकर देवी के समीप सिल और लुढ़िया रख दें। इस प्रकार पाँच वर्ष तक कर उद्यापन करें और माता को वायन दें उसका प्रकार यह है—मंगलागौरी की एक पल निर्मित सोने की प्रतिमा, या आधा पल या उसका भी आधा बनावें। यथा शक्ति सोने आदि के बने भाण्ड (घट) को चावलों से भर कर स्थापना कर उसमें पहनने के वस्त्र और सुन्दर चोली को रख उस कलश के ऊपर देवीजी की प्रतिमा रखें। उसके

समीप सिल और लोढ़ी सुवर्णादि निर्मित रखें। इस तरह वायन को श्रीमाता जी के लिए दें और सोलह सौभाग्यवती (सधवा) स्त्रियों को भोजन करावें। हे विप्र इस प्रकार व्रत को करने मात्र से सात जन्म तक सौभाग्य होता है और पुत्र-पौत्रादिकों सहित एवं ऐश्वर्य युक्ता हो स्त्री सुख भोगती है।

सनत्कुमार ने कहा—हे शिवजी, इस व्रत को पहले किसने किया और इस व्रत के करने का क्या फल हुआ। हे शंभो, जैसे भी विश्वास व्रत के विषय में हो वैसे आप कृपा पूर्वक कहें।

शिवजी ने कहा—यह पहले की सुनी बात है कि कुरुक्षेत्र में श्रुतिकीर्ति नाम का राजा राज्य करता था। वह शास्त्रविद्, कीर्तिमान और शत्रु रहित, चौसठ कलाओं का जानने वाला, धनुर्विद्या में श्रेष्ठ, पुत्र-सुख-वंचित तथा अन्य सब सुखों से युक्त था। इसके बाद सन्तान विषयक बहुत चिन्ता वाला (वह राजा) जप और ध्यान से युक्त हो देवी की आराधना करने लगा। उस राजा की उग्र तपस्या से प्रसन्न हो देवी ने कहा—हे सुव्रत, वर माँगो। श्रुतिकीर्ति ने कहा—हे देवि, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो बहुत सुन्दर पत्र मुझे दें। क्योंकि—हे देवि, आप की कृपा से मेरे पास किसी चीज की कमी नहीं है। यों उस राजा के वचन को सुन कर मन्द हास्ययुक्ता हो देवी ने कहा—राजन्, तुमने बहुत कठिनता से प्राप्त होने वाली वस्तु माँगी है, लेकिन कृपावश तुम्हारे लिये सौंप दूंगी। हे राजेन्द्र, सुनो वह पुत्र बहुत गुणी तथा लोकप्रिय होगा, परन्तु सोलह वर्ष तक ही जीवित रहेगा। दूसरी बात यह है कि—यदि तुम सौंदर्यवान् और विद्या से हीन पुत्र चाहते हो वह बहुत दिन तक जीवित रहेगा। यों देवी के वचन सुन राजा चिन्तामग्न हो गया। उस राजा ने अपनी स्त्री से सलाह कर अर्थात् देवी जी की सारी कही हुई बातों पर विचार कर, देवीजी से गुणवाला सब लक्षणों से सम्पन्न सोलह वर्ष तक आयु वाला पुत्र मांगा। तदनन्तर देवी ने अपने भक्त राजा को आज्ञा दी—हे नृपनन्दन, मेरे दरवाजे पर आम का पेड़ है, उस पेड़ में से एक आम का फल लेकर मेरी आज्ञा से अपनी धर्मपत्नी को दे दो। उस फल के खाने से शीघ्र ही वह गर्भ को धारण करेगी। प्रसन्न हो राजा ने देवी के कथनानुसार फल घर में ले जाकर अपनी पत्नी को दे दिया। उसने उस फल को भक्षण किया। दसवें मास में देव पुत्र के सदृश पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उस पुत्र का हर्ष और शोक से युक्त हो जातकर्म आदि संस्कार किया और शिव का स्मरण करते हुये पुत्र का नाम "चिरायु" रखा।

जब पुत्र को सोलहवाँ वर्ष लगा तो राजा और रानी को चिन्ता ने ग्रस लिया। तदनन्तर राजा ने विचार किया, यह पुत्र बड़े कष्ट से प्राप्त हुआ है। इस पुत्र की मृत्यु अपने सामने कैसे देखी जायेगी, यों सोचकर उसने अपने सदृश ऐश्वर्यवान् मामा

के साथ पुत्र को काशी नगरी में भेजने की व्यवस्था की। उस यशस्विनी राजपत्नी ने अपने भाई से कहा कि तुम कार्पटिक वेष धारण कर पुत्र को (भानजे को) काशी ले जाओ। मैंने पहले मृत्युंजय महादेव से प्रार्थना की थी कि—हे विश्वेश, मेरे पुत्र हो जाने पर जगत्पति की यात्रा के लिए पुत्र को भेजूँगी। इसलिये आज ही इस पुत्र को ले जाओ और इसकी यत्न से रक्षा करना, बहन की बात सुन कर वह बहन के पुत्र को साथ ले गया। रास्ते में जाते हुए बहुत दिनों बाद "आनन्द नगर" में पहुँच गया। वहां पर ऐश्वर्यशाली सर्वसमृद्धिमान् बीरसेन नाम का राजा था। उस राजा की कन्या संपूर्ण लक्षणों से युक्त मंगलागौरी नामवाली थी। वह मध्य अवस्था वाली सुन्दरी रूप और लावण्य से संपन्न थी। वह अपने गुणों द्वारा सम्पूर्ण उपमाओं को तुच्छ करती हुई उदय को प्राप्त हुई और अपने नगर के समीप सुन्दर बगीचे में सहेलियों के साथ क्रीड़ा करती थी। तदनन्तर वहाँ पर चिरायु और उसका मामा इन दोनों ने उन कन्याओं को देखने की इच्छा से विश्राम किया। इतने ही में उन कन्याओं से विनोद से खेलती हुई किसी ने क्रोधित हो राजतनया को "रण्डी" यह दुर्वचन कहा। उस नृपनन्दिनी ने अशुभ वाक्य सुनकर कहा—तू अयोग्य भाषण कर रही है। मेरे कुल में ऐसी स्त्री कोई नहीं है। मंगलागौरी के व्रत-प्रसाद से मेरे हाथ के चावल जिसके सिर पर गिरेंगे—हे सखि, जिसे विवाह के होने पर यदि अल्पायु योग भी होगा तो वह चिरायु "बहुत काल तक जीने वाला" होगा। तदनन्तर सब कन्यायें अपने-अपने घर चली गयीं। उस दिन राजकन्या के विवाह का समय बाल्हिक देश के राजा दृढ़वर्मा के पुत्र सुकेतु के साथ निश्चित हो चुका था। परन्तु वह सुकेतु मूर्ख, कुरूप और कानों से बहरा था। तदनन्तर वर पक्ष के लोगों ने आपस में विचार किया कि यदि दूसरे सुयोग्य लड़के को ले जाकर आज अपना कार्य संपादन कराने के बाद विवाहोत्तर सुकेतु वहाँ पर जाये तो क्या हानि है। यों निश्चय कर ये लोग चिरायु के पास जाकर चिरायु के मामाजी से कहे—यदि आप इस बालक को हम लोगों को दे दें तो हमारा कार्य बन जायेगा। इस भूमण्डल में परोपकार से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। यह बात सुनकर मामा हृदय से प्रसन्न हो गये। क्योंकि उसने पहले कन्या के वाक्य को उपवन में सुना था। फिर भी एक बार लोगों से कहा—आप लोग क्या चाहते हैं। कार्य की सिद्धि के लिए वस्त्र अलंकार आदि तो मंगनी माँगे जाते हैं परन्तु कहीं भी वर की याचना नहीं की जाती है लेकिन मैं गौरव से आप लोगों को देता हूँ।

तदनन्तर उन लोगों ने चिरायु को वहाँ पर ले जाकर विवाह कार्य को सम्पादन कराया और सप्तपदी आदि कार्य हो जाने पर रात के समय गौरीशंकर के समीप वह चिरायु बालक प्रसन्न मन से मंगलागौरी के साथ गया। उसी दिन चिरायु का सोलहवाँ वर्ष समाप्त हो रहा था। उसी अर्धरात्रि

के समय सर्प के रूप में काल वहाँ पर आ गया। लेकिन इस बीच में दैवयोग से राजकन्या जाग गयी। और उस महासर्प को देखकर भय से विह्वल हो काँपने लगी। परन्तु उस बाला ने धीरता धारण कर सर्प की पूजा की। और सोलहों उपचारों से पूजन कर पीने के लिए बहुत दूध दिया। प्रार्थना कर दीनवाणी से उस सर्प की स्तुति कर मंगलागौरी ने कहा—व्रतों में उत्तम व्रत को करूँगी। यदि मेरा पति सर्प से मुक्त हो और चिरंजीवी हो, ऐसा करो। उसी समय वह सर्प करक कमण्डलु में प्रवेश कर गया। बाद में राजकन्या ने अपनी कंचुली से उस कमण्डलु का मुख बाँध दिया। उसी समय उसका पति अंगों को ऐंठता हुआ जागकर अपनी पत्नी स्त्री से बोला—हे प्रिये, मुझे भूख लगी है। उसकी स्त्री राजकन्या ने अपनी माता के पास जाकर खीर, लड्डू आदि ले आकर अपने पतिदेव को दिया। पति चिरायु ने प्रसन्न मन से भोजन किया। हाथ धोने के समय उस चिरायु के हाथ से अंगूठी गिर गयी, वह पान खाकर फिर सो गया। तदनन्तर वह राजकन्या उस कमण्डलु को फेंकने के लिये चली गयी। लेकिन दैवयोग से बाहर जाने पर हार की कान्ति को देखकर विस्मय को प्राप्त हो गयी। घट के भीतर हार को देखकर उस हार को अपने गले में उस राजकन्या ने धारण कर लिया। कुछ रात बाकी रह गयी तो उस चिरायु के मामा उसे ले गये। चिरायु के चले जाने पर वहाँ पर वर पक्ष के लोग सुकेतु को ले आये। उसे देखकर मंगलागौरी ने कहा—यह मेरा पति नहीं है। तदनन्तर उन सबों ने कहा—हे शुभे—तुम क्या कह रही हो। यदि कुछ पहचान की बात हो तो हम लोगों से कहो। मंगलागौरी ने कहा—जिसने रात्रि में नवरत्नों की अँगूठी मुझे दी वह अँगूठी इसकी अँगुली में डालकर पहिचान कर देखें। पति ने उसी रात में हार दिया, उस हार के रत्नों की सजावट कैसी है वह भी कहिये। यह तो कोई दूसरा ही हार है और उसी रात्रि में आम्रसेवन के समय मेरे पतिदेव का पैर केसर से युक्त ऊरु (जाँघ) में लगा है उसे भी सब लोग देखें, देरी न करें। और उसी रात में क्या हुआ उसे भी कहिये तो यह स्वयं मेरा पति हो। यों सुनकर सबों ने "साधु" कहा। तदनन्तर सबों ने इन सब में एक बात भी ठीक नहीं निकाला तो निषेध कर दिया। तदनन्तर वर पक्षीय लोग जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। इधर कुरुकुल के राजा मंगलागौरी के पिता वीरसेन ने प्रसन्न मन से अन्नसत्र का एक सत्र-यज्ञ किया और वर पक्ष की सब कथा कानों कान सबने सुनी कि सुकेतु के कुरूप हो जाने से किसी को आदर से ले आये थे। तदनन्तर राजा ने महल के बरामदे में चिक के अन्दर लड़की को बैठा दिया। इस प्रकार एक वर्ष बीतने पर अपने मामाजी के साथ चिरायु श्वसुर गृह की कथा जानने के लिए वहाँ आया। उस चिरायु को चिक के अन्दर से कन्या ने देखकर बहुत प्रसन्न हो माता और पिता से कहा कि मेरे पति आ गये हैं। राजा ने अपने सुहृद्गणों को बुलाकर पहिचान की कही हुई सभी बातों को जान, देख

कर पवित्र मुस्कान वाली कन्या को चिरायु के लिये दे दिया। तदनन्तर राजा ने शिष्टों के साथ विवाहोत्सव किया और वस्त्र आभूषणादि, सेना, अश्वों, हाथियों और रथों को दिया। और बहुत सही उपयोग वाली वस्तु देकर राजा ने विदा किया। वह चिरायु अपनी पत्नी तथा मामाजी के साथ अपने कुल के आनन्द को बढ़ाता हुआ अपनी सेनाओं के साथ अपने नगर को चला गया। उसके माता और पिता ने उस चिरायु के आगमन को सुनकर विश्वास नहीं किया, क्योंकि दैवभाग्य विपरीत कैसे हो सकता है। उसी बीच में चिरायु माता और पिता के समीप पहुँच गया। स्नेह से युक्त हो चिरायु भक्ति द्वारा अपने माता और पिता के चरणों पर गिर गया अर्थात् प्रणाम किया। तदनन्तर माता और पिता उस पुत्र के सिर को सूँघकर बहुत आनन्दित हुए। उधर पुत्रवधू मंगलागौरी ने भी अपने सास और श्वसुर को प्रणाम किया। सास ने भी पुत्रवधू मंगलागौरी को अपनी गोद में बैठाकर सब बातें पूँछीं।

शिवजी ने कहा—हे महामुने सनत्कुमार जी, आपसे मंगलागौरी का उत्तम व्रत-माहात्म्य कहा और जो कुछ हुआ था सब वृतान्त कहा। वह सब मंगलगौरी व्रत तुमसे कहा। इसे जो कोई सुनेगा या कीर्तन करेगा। उसके सब मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। सूतजी ने कहा—हे शौनकादि ऋषिगण, शंकरजी ने सनत्कुमार जी से इस प्रकार व्रत को कहा और सनत्कुमारजी भी कार्य की सिद्धि को करने वाले इस व्रत को सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

———

षष्ठ अध्याय

वैवाहिक विघटन और मन्त्र की समाधानात्मक शक्ति

मानव-जीवन अन्तर्विरोधों के शाश्वत तन्तुओं से विनिर्मित है। प्राप्ति और परित्यक्ति अथवा प्रवृत्ति अथवा स्वीकार और नकार के विपरीत ध्रुवों के मध्य विस्तरित भावभूमि पर गुलाब तथा नागफनी एक साथ विकसित होते हैं। गुलाब की गन्ध और नागफनी का दंश दोनों जीवन का अविभाज्य और अन्योन्याश्रित अंश हैं।

संयोग से नागफनियों की संख्या निरन्तर वृद्धिमान है। सौरभ और मकरन्द अर्जित एकान्त और अपराजेय निर्वासन के लिए अभिशप्त हैं

दाम्पत्य जीवन इसी गन्ध-अंश और शूल-दंश की आत्मकथा है।

आज के अत्यन्त जटिल युग में विभिन्न एवं विचित्र समस्याओं, चिन्ताओं और प्रयत्नों के अनन्तर परिणय सम्पन्न होता है। कन्या का विवाह इस दृष्टि से और भी दुस्साध्य एवं चिन्तनीय होता है। परिणय संपन्न होने के पश्चात जीवन का चिर-प्रतीक्षित निमिष अनवगुंठित होता है। दम्पति पारस्परिक परिचय के सन्दर्भ में शारीरिक और मानसिक सामंजस्य के उद्‌गम शिल्ष्ट करते हैं। दो व्यक्तियों में अन्तर्वर्तित स्नेह-सलिला उन्हें आयुष्य सिंचित करती हैं। किन्तु सामंजस्य की निषेधात्मक स्थिति में स्वप्नों के शिविर एक एक करके भूलुंठित होने लगते हैं। असहमति, असन्तोष और असामंजस्य के कारण किसी पक्ष से विशिख बनकर संधानित हुये हों, उनसे क्षत-विक्षत, हताहत होता है सम्पूर्ण दांपत्य जीवन। वैवाहिक जीवन में उपस्थित विडंबनायें जीवन के लघुतम से महत्तम तक त्रासदी के शिलालेख उत्कीर्ण करती हैं।

दांपत्य जीवन को असामंजस्य एवं असंतोष के गरल से बचाना वैयक्तिक और सामाजिक हितों की सुरक्षा के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। अग्रांकित पंक्तियों में दांपत्य-अवरोधों के विभिन्न पक्षों के परिशमन के लिए कुछ अनुभूत एवं शास्त्र-अभिशंसित तथा विद्वज्जनानुमोदित मन्त्र-विवरण उल्लिखित हैं।

१. यथा पूर्व अध्यायान्तर्गत आख्यायित है कि सौंदर्य-लहरी गौरवपूर्ण मन्त्र-मंजूषा है। दाम्पत्य-जीवन में किसी भी प्रवृत्ति की विडम्बना, किसी भी लक्षण का विरोध-अवरोध, असन्तोष-असामंजस्य-दोष उद्‌ग्रीवित होने पर सौंदर्य-लहरी के अधोलिखित मन्त्रों का सविधि, सास्था, ससंकल्प, सआचार्याज्ञा प्रयोग समस्त विडंबनाओं को परिशान्त करता है—

(१) मंत्र संख्या १ से २७ तक का प्रयोग अथवा

(२) मन्त्र संख्या ४ अथवा ११ अथवा १३ अथवा २७ अथवा ४१ का प्रयोग।

मन्त्र का चयन अपनी दांपत्य-समस्या की प्रवृत्ति के अनुसार ही करना चाहिए।

वैवाहिक जीवन को अधोलिखित मन्त्रों के सम्यक् प्रयोग से सुष्ठु, सुसंमार्जित और सुसंतुष्ट बनाया जा सकता है—

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मंगलचंडिके।
हारिके विपदां राशेः हर्षमंगलकारिके॥

हर्षमंगलदक्षे च हर्षमंगलदायिके।
शुभे मंगलदक्षे च शुभे मंगलचंडिके॥

मंगले मंगलार्हे च सर्वमंगलमंगले।
सदा मंगलदे देवि सर्वेषां मंगलालये॥

(अर्थात् जगत-माता, देवी कल्याणकारी चंडिका, विपदा के समूह को हरने वाली, हर्ष-मंगल करने वाली, हर्ष व कल्याण में निपुण और हर्ष व मंगल देने वाली शुभ व मंगल में दक्ष व शुभ व मंगल में चंडिका स्वरूप, मंगल में मंगल के योग्य व सभी प्रकार के मंगल में मंगलकारी, सभी को सदा मंगल देने वाली, मंगलकारी मुख वाली देवी, रक्षा करो!)

अभित्वा मनुजातेन दधामि मम वासना।
यशसो मम केवलो नान्यसा कीर्तयश्च न॥

(अर्थात् मनुष्य जाति में होकर केवल अपनी इच्छायें धारण करता हूँ। यश मेरा नहीं है और न ही कीर्ति।)

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः।
एवा कामस्य विच्छिन्नं स धेहि वो यादितिः॥

(अर्थात् जिस प्रकार नकुल ने अहि का विच्छेद करके सत्य का रूप धारण किया उसी प्रकार काम का विच्छेद करके वह मुझे धारण करे।)

ॐ क्लीं त्र्यम्बकम् यजामहे सुगन्धिम् पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् क्लीं ॐ॥

(अर्थात् उर्वारुक (ककड़ी) की भाँति मृत्यु के बन्धन से मुझे मुक्त करो अमृत से नहीं। हे त्र्यम्बक, हम तुम्हें सुगन्धित आहुति देते हैं।)

पवमान सूक्त

पवमान सूक्त वैवाहिक विघटन के उन्मूलन के संदर्भ में सर्वाधिक शक्तिपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण सूक्त है। आचार्यों का अभिमत है कि यदि विघटन के दुर्धर्ष लक्षण, आकार

प्राप्त कर रहे हों, परिस्थितियां पर से समाधानों का नियन्त्रण क्षीण हो रहा हो और किसी सामान्य मन्त्र-प्रयोग का सकारात्मक प्रभाव न पड़ रहा हो तो पवमान सूक्त का प्रयोग करना चाहिए। इस सूक्त का फल अवश्य उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में पैप्पलादसंहिता के अन्तर्गत वर्णित इक्कीस श्लोकीय पवमान सूक्त का मूल पाठ एवं उसका हिन्दी रूपान्तर अग्रांकित है—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्॥ १॥

(जो सहस्रों नेत्रवाला, सैकड़ों धाराओं में बहने वाला तथा ऋषियों से पवित्र किया गया है, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूतमन्तरिक्षं यस्मिन्वायुरधिश्रितः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्॥ २॥

(जिससे अन्तरिक्ष पवित्र हुआ है। वायु जिसमें अधिष्ठित है, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूते द्यावापृथिवी आपः पूता अथो स्वः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्॥ ३॥

(जिससे द्युलोक और पृथिवी, जल और स्वर्ग पवित्र किये गये हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूते अहोरात्रे दिशः पूता उत येन प्रदिशः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्॥ ४॥

(जिससे रात और दिन, दिशा-प्रदिशायें पवित्र हुई हैं, उस सहस्त्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूतौ सूर्याचन्द्रमसौ नक्षत्राणि
भूतकृतः सह येन पूताः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्॥ ५॥

(जिससे सूर्य और चन्द्रमा, नक्षत्र और भौतिक सृष्टि रचने वाले पदार्थ पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूता वेदिरग्नयः परिधयः सह येन पूताः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्॥ ६॥

(जिससे वेदी, अग्नियाँ और परिधि पवित्र की गयी हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूतं बर्हिराज्यमथो हविर्येन पूतो।
यज्ञो वषट्कारो हुताहुतिः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ७ ॥

(जिससे कुशा, आज्य, हवि, यज्ञ और वषट्कार तथा हवन की हुई आहुति पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूतौ व्रीहियवौ याभ्यां यज्ञो अधिनिर्मितः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ८ ॥

(जिसके द्वारा व्रीहि और जौ) (अर्थात् प्राणापान) पवित्र हुए हैं. जिससे यज्ञ का निर्माण हुआ है, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करें।)

येन पूता अश्वा गावो अथो पूता अजावयः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ९ ॥

(जिससे अश्व, गो, अजा, अवि और पुरुषसंज्ञक (प्राण) पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूता ऋचः सामानि यजुर्ब्राह्मणं सह येन पूतम्।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १० ॥

(जिसके द्वारा ऋचाएँ, साम, यजु और ब्राह्मण पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोम के द्वारा पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूता अथर्वाङ्गिरसो देवताः सह येन पूताः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ११ ॥

(जिससे अथर्वांगिरस और देवता पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूता ऋतवो येनार्तवा येभ्यः संवत्सरो अधिनिर्मितः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १२ ॥

(जिससे ऋतु तथा ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले रस पवित्र हुए है, एवं जिससे संवत्सर का निर्माण हुआ है, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे।)

येन पूता वनस्पतयो वानस्पत्या ओषधयो वीरुधः सह येन पूताः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १३ ॥

(जिससे वनस्पतियाँ, पुष्प से फल देने वाले वृक्ष, औषधियाँ और लताएँ पवित्र हुई हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करें।)

येन पूता गन्धर्वाप्सरसः सर्पपुण्यजनाः सह येन पूताः।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १४ ॥

(जिससे गन्धर्व और अप्सराएँ, सर्प और यक्ष पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे ।)

येन पूताः पर्वताः हिमवन्तो वैश्वानराः परिभुवः सह येन पूताः ।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १५ ॥

(जिससे हिम मण्डित पर्वत, वैश्वानर अग्नियाँ और परिधि पवित्र हुई हैं, उस सहस्रधार सोम से पदमान मुझे पवित्र करे ।)

येन पूता नद्यः सिन्धवः समुद्राः सह येन पूताः ।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १६ ॥

(जिससे नदियाँ, सिन्धु आदि महानद और सागर पवित्र हुए हैं । उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करें ।)

येन पूता विश्वेदेवाः परमेष्ठी प्रजापतिः ।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १७ ॥

(जिससे विश्वेदेव और परमेष्ठी प्रजापति पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे ।)

येन पूतः प्रजापतिर्लोकं विश्वं भूतं स्वराजभार ।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १८ ॥

(जिससे पवित्र होकर प्रजापति ने समस्त लोक को, भूतों को और स्वर्ग को धारण किया है, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे ।)

येन पूतः स्तनयित्नुरपामुत्सः प्रजापतिः ।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १९ ॥

(जिससे विद्युत् और जलों के आश्रय प्रजापालक मेघ पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे ।)

येन पूतमृतं सत्यं तपो दीक्षां पूतयते ।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ २० ॥

(जिससे ऋत और सत्य पवित्र हुऐ हैं, जो तप और दीक्षा को पवित्र करता है, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे ।)

येन पूतमिदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ २१ ॥

(जिससे जो कुछ भूत और भविष्य है, सभी पवित्र हुआ है, उस सहस्रधार सोम से पवमान मुझे पवित्र करे ।)

३. एक शावर मंत्र प्रयोग

दाम्पत्य जीवन में आये विघटन को परिशान्त करने के लिए यह मंत्र अत्यन्त उपयुक्त है—

"ओम् सत्यनाम आदेश गुरु को लौंग-लौंग मेरा भाई इन्हीं लौंग जीवन माती तीजी लौंग अंग मरोड़े चौथी लौंग दोऊ कर जोड़े चारों लौंग जो मेरी खाए............ के पास से .... के पास आ जाय। गुरु की शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा।"

चतुर्दशी या अमावस्या के दिन पाँच फूलदार लौंग हथेली पर रखकर लोबान, धूप जलाकर उपर्युक्त मन्त्र १०८ बार पढ़कर उन्हें फूंके। फिर अभीष्ट व्यक्ति को स्थूल रूप से या मानसिक रूप से उन्हें खिला दें। इससे अभीष्ट पक्ष में जपकर्ता के प्रति दुर्निवार आकर्षण उत्पन्न हो जाता है।

श्री हनुमान प्रयोग

यह प्रयोग मंगलवार से प्रारम्भ होता है। हनुमान जी की एक सुन्दर, निर्दोष प्रतिमा लें, चन्दन, पीला सिन्दूर और देशी घी से तिलक बनायें। दाहिने हाथ की अनामिका से हनुमान जी की प्रतिमा पर ललाट से पूँछ तक तिलक लगायें, तत्पश्चात पूँछ तक यही क्रिया संपन्न करें। इस अवधि में निरन्तर इस भावना का अवबोध अक्षुण्ण रहे कि हे हनुमान जी, जिस प्रकार आपने सीता और श्रीराम का मिलन संभव किया था, उसी प्रकार मुझे मेरे पति की प्राप्ति करायें। इस क्रिया को नित्य प्रति २१ बार करें। इस समय यदि निम्नलिखित मंत्र का जप भी करें। तो प्रयोग का प्रभाव और संवर्द्धित हो जाता है—

"दारिद्रदुःखदहनं विजयं विवादे,
कल्याणसाधनममंगलवारणं च।
दाम्पत्यदीर्घसुखसर्वमनोरथासिम्,
श्रीमारुतेः स्तवमहो नितरां तनोति॥"

वैवाहिक विघटन के सम्बन्ध में जिन अनेकानेक मंत्रों का उल्लेख मिलता है। उनमें से कुछ अत्यन्त उपयोगी एवं अनुभूत मन्त्र उपरिलिखित हैं। इन मन्त्रों का प्रयोग दाम्पत्य-वैपरीत्य को सहज एवं अनुकूल बनाता है।

—:०:—

सप्तम अध्याय

वैवाहिक विलम्ब की कारक स्थितियों का निवारण

शीघ्र विवाह के लिए या कि वैवाहिक विलम्ब की स्थिति में कौन-सा मन्त्र, स्तोत्र या प्रयोग उपयोगी सिद्ध हो सकता है, इस संदर्भ में "वैवाहिक विलम्ब : कुछ अनुभूत मंत्र, स्तोत्र एवं प्रयोग" नामक अध्याय में विस्तार से लिखा गया है। जिसमें एक अत्यन्त परीक्षित प्रयोग है—'सौन्दर्यलहरी' का। सौन्दर्य लहरी का प्रयोग उपयोगी तो है किन्तु वह सर्वजनहिताय इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि संस्कृत का शुद्ध उच्चारण सभी के लिए सम्भव नहीं है।

विवाह की विलम्बकारी स्थितियों से प्रभावित उन सभी जातकों के लिए, जिन्हें सौन्दर्य लहरी के पाठ-पारायण में असुविधा हो, "पार्वती मंगल स्तोत्र" का नित्य एक पाठ विधिपूर्वक तथा संकल्प के साथ करना चाहिए। यह प्रयोग १२० दिन से १८० दिन तक संध्याकाल के समय करने से शीघ्र फलदायी होता है। इसके मूल में सम्भवतः यह पुराख्यान ही प्रभाव रखता है कि संध्या समय ही प्रायः शिव ताण्डव नृत्य करते हैं और उस समय की आराधना परम हितकारी तथा कामना की प्रतिपूर्ति करने वाली होती है।

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि इस स्तोत्र के साथ-साथ सोमवार का व्रत भी अवश्य करना चाहिए। पार्वती मंगल का पाठ करने से पूर्व यदि व्यक्ति विशेष से विवाह की कामना हो तो उसका नाम पिता तथा गोत्र सहित संकल्प में अवश्य लेना चाहिए। जैसे—

"......गोत्रोत्पन्नं अमुकस्य पुत्रं अमुकनामानं वरत्वेन प्राप्तिकामनया पार्वतीमंगल-स्तोत्रपाठम् अहं करिष्ये"।

पार्वती मङ्गल स्तोत्र

बिनइ गुरहि गुनिगनहि गिरिहि गननाथहि।
हृदयँ आनि सिय राम धरे धनु भाथहि॥ १॥
गावउँ गौरि गिरीस बिबाह सुहावन।
पाप नसावन पावन मुनि मन भावन॥ २॥

गुरुकी, गुणी लोगों (विज्ञजनों) की, पर्वतराज (हिमालय) की और गणेशजीको वन्दना करके फिर जानकीजी और भाथेसहित धनुष धारण करने वाले श्रीरामचन्द्र जी को स्मरण कर श्रीपार्वती और कैलासपति महादेवजी के मनोहर, पापनाशक, अन्तः-

करण को पवित्र करने वाले और मुनियों के भी मनको रुचिकर लगने वाले विवाह का गान करता हूँ ॥ १-२ ॥

कबित रीति नहिं जानउँ कवि न कहावउँ ।
संकर चरित सुसरित मनहि अन्हवावउँ ॥ ३ ॥
पर अपबाद-बिबाद-विदूषित बानिहि ।
पावन करौं सो गाइ भवेस भवानिहि ॥ ४ ॥

मैं काव्य की शैलियों को नहीं जानता और न कवि ही कहलाता हूँ; मैं तो केवल शिवजी के चरित्ररूपी श्रेष्ठ नदी में मन को स्नान कराता हूँ ॥ ३ ॥ और उसी श्रीशंकर एवं पार्वती-चरित्र का गान करके दूसरों की निन्दा और वादविवाद से मलिन हुई वाणी को पवित्र करता हूँ ॥ ४ ॥

जय संवत फागुन सुदि पाँचैं गुरु छिनु ।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुख छिनु छिनु ॥ ५ ॥

जय नामक संवत् के फाल्गुन मास की शुक्ला पञ्चमी बृहस्पतिवार को अश्विनी नक्षत्र में मैंने इस मङ्गल (विवाह-प्रसङ्ग) की रचना की है, जिसे सुनकर क्षण-क्षण में सुख प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

गुन निधानु हिमजानु धरनिधर धुर धनि ।
मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ॥ ६ ॥
कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्ह कर ।
लीन्ह जाइ जग जननि जनमु जिन्ह के घर ॥ ७ ॥
मंगल खानि भवानि प्रगट जब ते भइ ।
तब ते रिधि सिधि संपति गिरि गृह नित नइ ॥ ८ ॥

पर्वतों में शीर्पस्थानीय गुणों की खान हिमवान् पर्वत धन्य हैं, जिनके घर में त्रिलोकी की स्त्रियों में श्रेष्ठ मैना नाम की पत्नी थी ॥ ६ ॥ कहो ! उनके पुण्य की किस प्रकार बड़ाई की जाय, जिनके घर में जगत् की माता पार्वती ने जन्म लिया ॥७॥ जबसे मङ्गलों की खान पार्वतीजी प्रकट हुई तभी से हिमाचल के घर में नित्य नवीन ऋद्धि-सिद्धियां और सम्पत्तियाँ निवास करने लगीं ॥ ८ ॥

नित नव सकल कल्यान मंगल मोदमय मुनि मानहीं ।
ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं ॥
पितु मातु प्रिय परिवारु हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं ।
सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंदभूषन भालहीं ॥ १ ॥

मुनिजन सब प्रकार के नित्य नवीन मङ्गल और आनन्दमय उत्सव मनाते हैं । ब्रह्मादि देवता, मनुष्य एवं नाग अत्यन्त प्रेम से हिमवान् के सौभाग्य का वर्णन करते हैं । पिता, माता, प्रियजन और कुटुम्ब के लोग उन्हें निहारकर आनन्दित होते हैं और

उनका (प्रेम से) लालन-पालन करते हैं। ऐसा लगता था, मानो शुक्लपक्ष में चन्द्रशेखर भगवान् महादेवजी के ललाट में चन्द्रमा की कला वृद्धि को प्राप्त हो रही हो ॥ ८ ॥

कुँअरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं।
गिरिजा जोगु जुरिहि बरु अनुदिन लोचहिं ॥ ९ ॥
एक समय हिमवान भवन नारद गए।
गिरिवरु मैना मुदित मुनिहि पूजत भए ॥ १० ॥

कुमारी पार्वतीजी को सयानी (वयस्क) हुई देख माता-पिता चिन्तित हो रहे हैं और नित्यप्रति यह अभिलाषा करते हैं कि पार्वती के योग्य वर मिले ॥ ९ ॥ एक समय नारदजी हिमवान् के घर गये। उस समय पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् और मैनाने प्रसन्नता पूर्वक उनकी पूजा की ॥ १० ॥

उमहि बोलि रिषि पगन मातु मेलत भई।
मुनि मन कीन्ह प्रणाम बचन आसिष दई ॥ ११ ॥
कुँअरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहई।
रूप न जाइ बखानि जानु जोइ जोहई ॥ १२ ॥

माता (मैना) ने पार्वती को बुलाकर ऋषि के चरणों में डाल दिया। मुनि (नारदजी) ने मन-ही-मन पार्वजी जी को प्रणाम किया और वचन से आशीर्वाद दिया ॥ ११ ॥ उस समय पिता हिमवान् के कंधे से सटकर खड़ी हुई कुमारी पार्वतीजी बड़ी शोभामयी जान पड़ती थी। उनके स्वरूप का कोई वर्णन नहीं कर सकता। उन्हें जिसने देखा वही जान सकता है ॥ १२ ॥

अति सनेहँ सतिभायँ पाय परि पुनि पुनि।
कह मैना मृदु बचन सुनिअ बिनती मुनि ॥ १३ ॥
तुम त्रिभुवन तिहुँ काल बिचार बिसारद।
पारबती अनुरूप कहिय बरु नारद ॥ १४ ॥

अत्यन्त प्रेम और सच्ची श्रद्धा से बार-बार पैरों पड़कर मैना ने कोमल वचनों में कहा—'हे मुने ! हमारी विनती सुनिये ॥ १३ ॥ आप तीनों लोकों में और तीनों कालों में बड़े ही विचार-कुशल हैं; अतः हे नारदजी ! आप पार्वती के अनुरूप कोई वर बतलाइये ॥ १४ ॥

मुनि कह चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जहँ।
गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ ॥ १५ ॥
भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिन।
कछु न अगम सब सुगम भयो बिधि दाहिन ॥ १६ ॥

नारद मुनि कहते हैं कि 'ब्रह्माण्ड के चौदहों भुवनों में जहाँ-जहाँ मैं घूमता हूँ, हे गिरिश्रेष्ठ हिमवान् ! वहाँ-वहाँ तुम्हारी बड़ाई सुनी जाती है ॥ १५ ॥ तुम्हारे समान बड़भागी कहीं कोई नहीं है। तुम्हारे लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है, सब कुछ सुलभ है; क्योंकि विधाता तुम्हारे अनुकूल सिद्ध हुए हैं ॥ १६ ॥

दाहिन भए विधि सुगम सब सुनि तजहु चित चिता नई ।
बरु प्रथम बिरवा बिरचि बिरच्यो मंगला मंगलमई ॥
बिधिलोक चरचा चलति राउरि चतुर चतुरानन कही ।
हिमवानु कन्या जोगु बरु बाउर बिबुध बंदित सही ॥ २ ॥

"ईश्वर तुम्हारे अनुकूल सिद्ध हुए हैं, अतः तुम्हारे लिये सब कुछ सुलभ है"— यह जानकर नवीन चिन्ताओं को त्याग दो। ब्रह्माजी ने वर (दुलहा) रूप पौधे को पहले रचा है और तब मङ्गलमयी मङ्गला (पार्वती) को। (एक बार) तुम्हारी चर्चा ब्रह्मलोक में भी चल रही थी, उस समय चतुर चतुरानन ने कहा था कि "हिमवान् की कन्या (पार्वती) के योग्य वर है तो बावला, परंतु निश्चय ही वह देवताओं से भी वन्दित (पूजित) है ॥ २ ॥

मोरेहुँ मन अस आव मिलिहि बरु बाउर ।
लखि नारद नारदी उमहि सुख भाउर ॥ १७ ॥
सुनि सहमे परि पाइ कहत भए दंपति ।
गिरिजहि लगे हमार जिवनु सुख संपति ॥ १८ ॥

"मेरे मन में भी ऐसी ही बात आती है कि पार्वती को बावला वर मिलेगा।" नारदजी के इस वचन को सुनकर उमा (पार्वती) के हृदय में सुख हुआ ॥ १७ ॥ किंतु यह बात सुनकर दम्पत्ति (हिमवान्-मैना) सहम गये और (नारदजी के) पैरों पड़कर कहने लगे कि 'पार्वती के लिये ही हमलोगों का जीवन और सारी सुख-सम्पत्ति है ॥१८॥

नाथ कहिय सोइ जतन मिटइ जेहि दूषनु ।
दोष दलन मुनि कहेउ बाल बिधु भूषनु ॥ १९ ॥
अवसि होइ सिधि साहस फलइ सुसाधन ।
कोटि कलपतरु सरिस संभु अवराधन ॥ २० ॥

'अतः हे नाथ ! वह उपाय बतलाइये, जिससे (पार्वती के) इस भाग्य-दोष का नाश हो (जिसके कारण उसे पागल पति मिलने को है)।' मुनि ने कहा कि (सारे) दोषों को नाश करने वाले शशिभूषण महादेव जी ही हैं ॥१९॥ उनकी कृपा से सफलता अवश्य प्राप्त होगी। साहस (दृढ़ता) से ही श्रेष्ठ साधन भी सफल होता है। शिवजी की आराधना (एक ही) करोड़ों कल्पवृक्षों के समान 'सिद्धिदायक' है ॥२०॥

तुम्हरें आश्रम अबहिं ईसु तप साधहिं ।
कहिअ उमहि मनु लाइ जाइ अवराधहिं ॥ २१ ॥

कहि उपाय दंपतिहि मुनिवर गए।
अति सनेहँ पितु मातु उमहि सिखवत भए॥ २२॥

'देखो, तुम्हारे आश्रम (कैलास) में महादेवजी अभी तप-साधन कर रहे हैं, (अतः) पार्वती से कहो कि जाकर मनोयोग पूर्वक शिवजी की आराधना करे॥ २१॥ दम्पति (हिमवान्-मैना) को यह उपाय बतलाकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी आनन्द पूर्वक चले गये और माता-पिता ने अत्यन्त स्नेह से पार्वतीजी को शिक्षा दी॥ २२॥

सजि समाज गिरिराज दीन्ह सबु गिरिजहि।
बदति जननि जगदीस जुबति जनि सिरजहि॥ २३॥
जननि जनक उपदेस महेसहि सेवहि।
अति आदर अनुराग भगति मनु भेवहि॥ २४॥

पर्वतराज हिमाचलने तपस्या की सारी सामग्री सजाकर पार्वतीजी को दे दी। माता कहने लगी कि ईश्वर स्त्रियों को न रचे (क्योंकि इन्हें सदैव पराधीन रहना पड़ता है)॥ २३॥ माता-पिताने पार्वतोजी को उपदेश दिया कि तुम शिवजी की आराधना करो और अत्यन्त आदर. प्रेम और भक्तिसे मन को तर कर दो॥ २४॥

सेवहि भगति मन बचन करम अनन्य गति हर चरन की।
गौरव सनेह सकोच सेवा जाइ केहि बिधि बरन की॥
गुन रूप जोवन सींव सुंदरि निरखि छोभ न हर हिए।
ते धीर अछत बिकार हेतु जे रहत मनसिज बस किएँ॥ ३॥

भक्तिके द्वारा मन को सरस बना दो।' मनसा-वाचा-कर्मणा पार्वतीजी के एकमात्र श्रीमहादेवजी के ही चरणोंका आश्रय था। उनके गौरव, स्नेह, शील-संकोच और सेवा का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है। पार्वतीजी गुण-रूप एवं यौवन की सीमा थीं, किंतु ऐसी (अनुपम) सुन्दरी को देखकर शिवजी के मन में (तनिक भी) क्षोभ नहीं हुआ। (सच है, जो लोग विकार का कारण रहते हुए भी कामदेव को वशमें किये रहते हैं, वे ही (सच्चे) धीर हैं॥ ३॥

देव देखि भल समय मनोज बुलायउ।
कहेउ करिअ सुर काजु साजु सजि आयउ॥ २५॥
बामदेउ सन कामु बाम होइ बरतेउ।
जग जय मद निदरेसि फरु पायसि फर तेउ॥ २६॥

देवताओं ने अनुकूल अवसर देखकर कामदेव को बुलाया और कहा कि 'आप देवताओं का काम कीजिये।' यह सुनकर कामदेव साज सजाकर आया॥ २५॥ महादेवजी से कामदेव ने प्रतिकूल बर्ताव किया और जगत् को जीत लेने के अभिमान-से चूर होकर शिवजी का निरादर किया—उसी का फल उसने पाया अर्थात् वह नष्ट हो गया॥ २६॥

रति पति हीन मलीन बिलोकि बिसूरति ।
नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति ॥ २७ ॥
आसुतोष परितोष कीन्ह बर दीन्हेउ ।
सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ ॥ २८ ॥

पतिहीना (विधवा) रति को मलिन और शोकाकुल देखकर मृदुलस्वभाव, कृपामूर्ति आशुतोष भगवान् नीलकण्ठ (शिवजी) ने प्रसन्न होकर उसे यह वर दिया—

दोहा—अब ते रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंगु ।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु ॥

जब जदुबंस कृष्न अवतारा । होइहि हरन महा महि भारा ॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा । बचनु अन्यथा होइ न मोरा ॥

और फिर शिवजी उदासीन हो, उस स्थानको छोड़ अन्यत्र चले गये ॥ २७-२८ ॥

उमा नेह बस बिकल देह सुधि बुधि गई ।
कलप बेलि बन बढत बिषम हिम जनु दई ॥ २९ ॥
समाचार सब सखिन्ह जाइ घर घर कहे ।
सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे ॥ ३० ॥

पार्वतीजी प्रेमवश व्याकुल हो गयीं, उनके शरीर की सुध-बुध (होश-हवास) जाती रही, मानो वन में बढ़ती हुई कल्पलता को विषम पाले ने मार दिया हो ॥ २९ ॥ फिर सखियों ने घर-घर जाकर सारे समाचार सुनाये और इस समाचार को सुनकर माता-पिता एवं घर के लोग दारुण दुःख में जलने लगे ॥ ३० ॥

जाइ देखि अति प्रेम उमहि उर लावहिं ।
बिलपहिं बाम बिधातहि दोष लगावहिं ॥ ३१ ॥
जौं न होहिं मंगल मग सुर बिधि बाधक ।
तौ अभिमत फल पावहिं करि श्रमु साधक ॥ ३२ ॥

वहां जाकर पार्वती को देख वे अत्यन्त प्रेम से उन्हें हृदय लगाते हैं; विलाप करते हैं तथा वाम विधाता को दोष देते हैं ॥ ३१ ॥ वे कहते हैं कि यदि देवता और विधाता शुभ मार्ग में बाधक न हों तो साधक लोग परिश्रम कर के मनोवाञ्छित फल पा सकते हैं ॥ ३२ ॥

साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम को ।
को सुनइ काहि सोहाय घर चित चाहत चंद्र ललामको ॥
समुझाइ सबहि दृढ़ाइ मनु पितु मातु, आयसु पाइ कै ।
लागी करन पुनि अगमु तपु तुलसी कहै किमि गाइ कै ॥ ४ ॥

सब लोग साधकों के क्लेश सुनाकर पार्वतीजीको घर चलने के लिये निहोरा करते हैं। पर (उनकी बात) कौन सुनता है और किसे घर सुहाता है? मन तो चन्द्रभूषण श्रीमहादेवजी को चाहता है। फिर पार्वती जी सबको समझाकर सबके मन को दृढ़कर और माता-पिताकी आज्ञा पा पुनः कठिन तपस्या करने लगीं; उसे तुलसी गाकर कैसे कह सकता है ।। ४ ।।

फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजा पन।
जेहिं अनुरागु लागु चितु सोइ हितु आपन।। ३३ ।।
तजेउ भोग जिमि रोग लोग अहि गन जनु।
मुनि मनसहु ते अगम तपहिं लायो मनु।। ३४ ।।

पार्वतीजी की (दृढ़) प्रतिज्ञा को देखकर माता-पिता और परिजन लौट आये। जिसमें अनुरागपूर्वक चित्त लग जाता है, वही अपना प्रिय है ।।३३।। उन्होंने भोगों को रोग के समान और लोगों को सर्पों के झुंड के समान त्याग दिया तथा जो मुनियों को भी मन के द्वारा अगम्य था, ऐसे तप में मन लगा दिया ।। ३४ ।।

सकुचहिं बसन बिभूषन परसत जो बपु।
तेहिं सरीर हर हेतु अरंभेउ बड़ तपु ।। ३५ ।।
पूजइ सिवहि समय तिहुँ करइ निमज्जन।
देखि प्रेमु ब्रतु नेमु सराहहिं सज्जन ।। ३६ ।।

जिस शरीर को स्पर्श करने में वस्त्र-आभूषण भी सकुचाते थे, उसी शरीर से उन्होंने शिवजी के लिये बड़ी भारी तपस्या आरम्भ कर दी ।। ३५ ।। वे तीनों काल स्नान करती हैं और शिवजी की पूजा करती हैं। उनके प्रेम, व्रत और नियम को सज्जन (साधु) लोग भी सराहते हैं ।। ३६ ।।

नींद न भूख पियास सरिस निसि बासरु।
नयन नीरु मुख नाम पुलक तनु हियँ हरु ।। ३७ ।।
कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहि।
सूखे बेलके पात खात दिन गवनहि ।। ३८ ।।

उनके लिये रात-दिन बराबर हो गये हैं, न नींद है न भूख अथवा न प्यास ही है। नेत्रों में आँसू भरे रहते हैं, मुख से शिव-नाम उच्चारण होता रहता है, शरीर पुलकित रहता है और हृदय में शिवजी बसे रहते हैं ।। ३७ ।। कभी कन्द, मूल, फल का भोजन होता है, कभी जल और वायु पर ही निर्वाह होता है और कभी बेल के सूखे पत्ते खाकर ही दिन बिता दिये जाते हैं ।। ३८ ।।

नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ।। ३९ ।।

देखि सराहहिं गिरिजहि मुनिवरु मुनि बहु ।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहूँ कहु ॥ ४० ॥

जब पार्वतीजी ने (सूखे) पत्तों को भी त्याग दिया, तब उनका नाम 'अपर्णा' पड़ा । उनकी नवीन, निर्मल एवं मनोरम कीर्ति से चौदहों भुवन भर गये ॥०९ ॥ पार्वतीजी का तप देखकर बहुत-से मुनिवर और मुनिजन उनकी सराहना करते हैं कि ऐसा तप कभी कहीं किसी ने न देखा और न तो सुना ही था ॥ ४० ॥

काहूँ न देख्यौ कहहिं यह तपु जोग फल फल चारि का ।
नहिं जानि जाइ न कहति चाहति काहि कुधर-कुमारिका ॥
बटु वेष पेखन पेम पनु ब्रत नेम ससिसेखर गए ।
मनसहिं समरपेउ आपु गिरिजहि वचन मृदु बोलत भए ॥ ५ ॥

वे कहते हैं कि ऐसा तप किसी ने नहीं देखा । इस तप के योग्य फल क्या चार फल अर्थात् अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष (कभी) हो सकते हैं ? पर्वतराजकुमारी भला क्या चाहती हैं, जाना नहीं जाता और न वे कुछ कहती ही हैं । तब शशिशेखर श्रीमहादेवजी ब्रह्मचारी का वेष बना उनके प्रेम, (कठोर) नियम, प्रतिज्ञा और (दृढ़) संकल्प की परीक्षा करनेके लिये गये । उन्होंने मन-ही-मन अपने को पार्वतीजीके हाथों सौंप दिया और पार्वतीजी से सुमधुर वचन कहने लगे ॥ ५ ॥

देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ ।
मोर कठोर सुभाय हृदयँ अस आयउ ॥ ४१ ॥
बंस प्रसंसि मातु पितु कहि सब लायक ।
अमिय बचनु बटु बोलेउ अति सुख दायक । ४२ ॥

उस समय पार्वतीजी की दशा देखकर दयानिधान शिवजी दुखी हो गये और उनके हृदय में यह आया कि मेरा स्वभाव (बड़ा ही) कठोर है । [यही कारण है कि मेरी प्रपन्नता के लिये साधकों को इतना तप करना पड़ता है ।] ॥४ ॥ तब वह ब्रह्मचारी पार्वतीजी के वंश की प्रशंसा करके माता-पिता को सब प्रकार से योग्य कह अमृत के समान मीठे और सुखदायक वचन बोला ॥ ४२ ॥

देबि करौं कछु बिनती बिलगु न मानव ।
कहउँ सनेहं सुभाय सांचु जिये जानब ॥ ४३ ॥
जननि जगत जस प्रगटेहु मातु पिता कर ।
तीय रतन तुम उपजिहु भव रतनाकर ॥ ४४ ॥

[शिवजी ने कहा—] 'हे देवि ! मैं कुछ विनती करता हूँ, बुरा न मानना । मैं स्वाभाविक स्नेह से कहता हूँ, अपने जी में इसे सत्य जानना ॥ ४३ ॥ तुमने संसार में प्रकट होकर अपने माता-पिता का यश प्रसिद्ध कर दिया । तुम संसार-समुद्र में स्त्रियों के बीच रत्न-सदृश उत्पन्न हुई हो ॥ ४४ ॥

अगम न कछु जग तुम कहँ मोहि अस सूझइ।
बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ ॥ ४५ ॥
जौ बर लागि करहु तप तौ लरिकाइअ।
पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइअ ॥ ४६ ॥

'मुझे ऐसा जान पड़ता है कि संसारमें तुम्हारे लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है। [यह भी सच है कि] निष्काम तपस्यामें क्लेश नहीं जान पड़ता ॥ ४५ ॥ [परंतु] यदि तुम वर (दुलहा) के लिये तप करती हो तो यह तुम्हारा लड़कपन है, क्योंकि यदि घर में ही पारसमणि मिल जाय तो क्या कोई सुमेरु पर जायगा ? ॥४६॥

मोरें जान कलेस करिअ बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहइ रतन कि राजहि ॥ ४७ ॥
लखि न परेउ तप कारन बटु हियँ हारेउ।
सुनि प्रिय बचन सखी मुख गौरि निहारेउ ॥ ४८ ॥

'हमारी समझ से तो तुम बिना प्रयोजन ही क्लेश उठाती हो। अमृत क्या रोगी को चाहता है और रत्न क्या राजा की कामना करता है ? ॥ ४७ ॥ इस ब्रह्मचारी को आपके तप का कोई कारण समझमें नहीं आया, यह सोचते-सोचते अपने हृदय में हार गया है, इस प्रकार उसके प्रिय वचन सुनकर पार्वतीजी ने सखी के मुख की ओर देखा ॥ ४८ ॥

गौरीं निहारेउ सखी मुख रुख पाइ तेहिं कारन कहा।
तपु करहिं हर हितु सुनि बिहँसि बटु कहत मुरुखाई महा ॥
जेहिं दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बरु बावरो।
हित लागि कहौं सुभायँ सो बड़ बिषम बैरी रावरो ॥ ६ ॥

पार्वतीजी ने सखी के मुख की ओर देखा, तब सखी ने उनकी अनुमति जानकर उनके तप का कारण [यह] बतलाया कि वे शिवजी के लिये तपस्या करती हैं। यह सुनकर ब्रह्मचारी ने हँसकर कहा कि 'यह [तो तुम्हारी] महान् मूर्खता है। जिसने तुम्हें ऐसा उपदेश दिया है कि जिसके कारण तुमने इतना क्लेश उठाकर बावले वर का वरण किया है, मैं तुम्हारी भलाई के लिये सद्भाववश कहता हूँ कि वह तुम्हारा घोर शत्रु है ॥ ६ ॥

कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु पितु हीनहिं ॥ ४९ ॥
भीख माँगि भव खाहिं चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच पिसाचिनि जोवहिं ॥ ५० ॥

['अच्छा] यह तो बताओ कि क्या सुनकर तुम ऐसे कुलहीन वरपर रीझ गयीं, जो गुणरहित, प्रतिष्ठारहित, जातिरहित और माता-पितारहित है ।।४९।। वे शिवजी तो भीख मांगकर खाते हैं, नित्य [श्मशान में] चिता (भस्म) पर सोते हैं, नग्न होकर नाचते हैं और पिशाच-पिशाचिनी इनके दर्शन किया करते हैं ।। ५० ।।

भाँग धतूर अहार छार लपटावहिं ।
जोगी जटिल सरोष भोग नहिं भावहिं ।। ५१ ।।
सुमुखि सुलोचनि हर मुख पंच तिलोचन ।
बामदेव फुर नाम काम मद मोचन ।। ५२ ।।

'भाँग-धतूरा' ही इनका भोजन है; ये शरीर में राख लपटाये रहते हैं। ये योगी, जटाधारी और क्रोधी हैं; इन्हें भोग अच्छे नहीं लगते ।। ५१ ।। तुम सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रोंवाली हो, किन्तु शिवजी के तो पाँच मुख और तीन आंखें हैं। उनका वामदेव नाम यथार्थ ही है। ये कामदेव के मद को चूर करनेवाले अर्थात् काम-विजयी हैं ।। ५२ ।।

एकउ हरहिं न वर गुन कोटिक दूषन ।
नर कपाल गज खाल ब्याल विष भूषन ।। ५३ ।।
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन ।
कहाँ अमंगल बेषु बिशेषु भयावन ।। ५४ ।।

'शंकर में एक भी श्रेष्ठ गुण नहीं है वरन् करोड़ों दूषण हैं। वे नरमुण्ड और हाथी के खाल को धारण करनेवाले तथा साँप और विष से विभूषित हैं ।। ५३ ।। कहाँ तो तुम्हारा गुण, शील और शोभायमान स्वरूप और कहाँ शंकर का अमङ्गल वेष, जो अत्यन्त भयानक है ।। ५२ ।।

जो सोचइ ससि कलहि सो सोचइ रौरेहि ।
कहा मोर मन धरि न बिरय बर बौरेहि ।। ५५ ।।
हिए हेरि हठ तजहु हठै दुख पैहहु ।
ब्याह समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु ।। ५४ ।।

जो शंकर शशिकला की चिन्ता में रहते हैं, वे क्या तुम्हारा ध्यान रक्खेगें ? मेरे कहे हुए वचनों को हृदय में धारणकर तुम बावले वर को न वरना ।। ५५ ।। अपने हृदय में विचारकर हठ त्याग दो; हठ करने से तुम दुःख ही पाओगी और ब्याह के समय हमारी शिक्षा को याद कर-करके पछताओगी ।। ५६ ।।

पछिताब भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै ।
जम धार सरिस निहारि सब नर-नारि चलिहहिं भाजि कै ।।
गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै ।
कोउ प्रगट कोउ हियँ कहिहि मिलवत अमिय माहुर घोरि कै ।। ७ ।।

जिस समय वे भूत, पिशाच और प्रेतों की बारात सजाकर आयेंगे, तब तुम्हें पछताना पड़ेगा। उस बरात को यमदूतों की सेना समान देखकर स्त्री-पुरुष सब भाग चलेंगे। [ग्रन्थिबन्धन के समय] अत्यन्त सुन्दर रेशमी वस्त्र को हाथी के चर्म के साथ जोड़ते हुए सखियाँ मुँह फेरकर हँसेंगी और कोई प्रकट एवं कोई हृदय में ही कहेगी कि अमृत और विष को घोलकर मिलाया जा रहा है ॥ ७ ॥

तुर्महिं सहित असवार बसहँ जब होइहहिं।
निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइहहिं ॥ ५७ ॥
बटु करि कोटि कुतरक जथा रुचि बोलइ।
अचल सुता मनु अचल बयारि कि डोलइ ॥ ५८ ॥

'जब तुम्हारे साथ शिवजी बैलपर सवार होंगे, तब नगर के स्त्री-पुरुष देखकर हँसते हुए अपने मुख छिपा लेंगे' ॥ ५७ ॥ इसी प्रकार अनेकों कुतर्क करके ब्रह्मचारी इच्छानुसार बोल रहा था; परंतु पर्वत की पुत्री का मन डिगा नहीं, भला कहीं हवा से पर्वत डोल सकता है ॥ ५८ ॥

साँच सनेह साँच रुचि जो हठि फेरइ।
सावन सरित सिंधु रुख सूप सो घेरइ ॥ ५९ ॥
मनि बिनु फनि जल हीन मीन तनु त्यागइ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ॥ ६० ॥

जो सत्य स्नेह और सच्ची रुचि को फेरना चाहता है, वह [तो] मानो सावन के महीने (वर्षाऋतु) में नदी के प्रवाह को समुद्र की ओर सूप से घुमाने की चेष्टा करता है ॥ ५९ ॥ मणि के बिना सर्प और जल के बिना मछली शरीर त्याग देती है, ऐसे ही जो जिसके साथ प्रेम करता है, वह क्या उसके दोष-गुण का विचार करता है ? ॥ ६० ॥

करन कटुक चटु बचन बिसिष सम हिय हए।
अरुन नयन चढ़ि भृकुटि अधर फरकत भए ॥ ६१ ॥
बोली फिर लखि सखिहि काँपु तन थर थर।
आलि बिदा करु बटुहि बेगि बड़ बरबर ॥ ६२ ॥

ब्रह्मचारी के कर्णकटु चाटु वचनों ने पार्वतीजी के हृदय में तीर के समान आघात किया? उनकी आँखें लाल हो गयीं, भृकुटियाँ तन गयीं और होंठ फड़कने लगे ॥ ६१ ॥ उनका शरीर थर-थर काँपने लगा। फिर उन्होंने सखी की ओर देखकर कहा—'अरी आली ! इस ब्रह्मचारी को शीघ्र विदा करो, यह [तो] बड़ा ही अशिष्ट है' ॥ ६२ ॥

कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि।
बौरेहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि ॥ ६३ ॥

दोष निधान इसानु सत्य सबु भाषेउ ।
मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ ॥ ६४ ॥

[फिर ब्रह्मचारी को सम्वोधित करके कहने लगीं—] 'कहीं कोई चतुर स्त्रियाँ होंगी, वे आपकी शिक्षा सुनेंगी, मैं तो वावले के प्रेम में ही अत्यन्त वावली हो गयी हूँ ॥ ६३ ॥ आपने जो कहा कि महादेवजी दोषनिधान हैं, सो सब सत्य ही कहा है, परन्तु विधाता ने जो अङ्क लिख रखे हैं, उन्हें कौन मिटा सकता है ? ॥ ६४ ॥

को करि वादु बिवादु बिषादु बढ़ावइ ।
मीठ काहि कवि कहहिं जाहि जोइ भावइ ॥ ६५ ॥
भइ बड़ि बार आलि कहुँ काल सिधारहिं ।
बकि जनि उठहिं बहोरि कुजुगुति सँवारहिं ॥ ६६ ॥

'वाद-विवाद करके कौन दुःख बढ़ाये ? कवि किसको मीठा कहते हैं ? जिसको जो अच्छा लगता है । (भाव यह कि जिसको जो अच्छा लगे, उसके लिये वही मीठा है) । [फिर सखीं से बोलीं—] हे सखी ! इनसे कहो बहुत देर हो गयी है, वह अपने काम के लिये कहीं जायँ । देखो किसी कुयुक्ति को रचकर फिर कुछ न बक उठें ॥ ६५-६६ ॥

जनि कहहिं कछु बिपरीत जानत प्रोति रीति न बात की ।
सिव साधु निंदकु मंद अति जोउ सुनै सोउ बड़ पातकी ॥
सुनि वचन शोधि सनेहु तुलसी साँच अविचल पावनो ।
भए प्रगट करुनासिंधु संकरु भाल चंद सुहावनो ॥ ८ ॥

'ये प्रीति की तो क्या, वात करने की रीति भी नहीं जानते, अतएव कोई विपरीत वात [फिर] न कहें । शिवजी और साधुओं की निन्दा करने वाले अत्यन्त मन्द अर्थात् नीच होते हैं, उस निन्दा को जो कोई सुनता है, वह भी बड़ा पापी होता है ।' गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि इस वचन को सुन उनका सत्य, दृढ़ और पवित्र प्रेम जानकर करुणा सिन्धु श्रीमहादेवजी प्रकट हो गये, उनके ललाट में चन्द्रमा शोभायमान हो रहा था ॥ ८ ॥

सुंदर गौर सरीर भूति भलि सोहइ ।
लोचन भाल बिसाल बदनु मन मोहइ ॥ ६७ ॥
सैल कुमारि निहारि मनोहर मूरति ।
सजल नयन हियँ हरषु पुलक तन पूरति ॥ ६८ ॥

उनके कमनीय गौर शरीर पर विभूति अत्यन्त शोभित हो रही थी; उनके नेत्र और ललाट विशाल थे तथा मुख मन को मोहित किये लेता था ॥ ६० ॥ उनकी मनोहर मूर्ति को निहार कर शैलकुमारी पार्वतीजी के नेत्रों में जल भर आया । हृदय में आनन्द छा गया और शरीर पुलकावली से व्याप्त हो गया ॥ ६८ ॥

पुनि पुनि करै प्रनामु न आवत कछु कहि।
देखौं सपन कि सौतुख ससि सेखर सहि॥ ६९॥
जैसें जनम दरिद्र महामनि पावइ।
पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ॥ ७०॥

वे बारंबार प्रणाम करने लगीं। उनसे कुछ कहते नहीं बनता था। [वे मन-ही-मन] विचारती हैं कि मैं स्वप्न देख रही हूँ या सचमुच सामने शिवजी का दर्शन कर रही हूं॥ ६९॥ जिस प्रकार जन्म का दरिद्री महामणि (पारस) को पा जाय और उसके प्रभाव को साक्षात् देखते हुए भी उसमें विश्वास न हो [उसी प्रकार यद्यपि पार्वती जी महादेवजी को नेत्रों के सामने देखती हैं तो भी उन्हें प्रतीति नहीं होती]॥ ७०॥

सुफल मनोरथ भयउ गौरि सोहइ सुठि।
घर ते खेलन मनहु अबहिं आई उठि॥ ७१॥
देखि रूप अनुराग महेस भए बस।
कहत बचन जनु सानि सनेह सुधा रस॥ ७२॥

पार्वती जी का मनोरथ सफल हो गया, [इससे वे और भी] सुहावनी लगती हैं। [जान पड़ता है कि] मानो खेलने के लिये वे अभी घर से उठकर आयी हों। [उनकी देह में तप का क्लेश और कृशता आदि कुछ भी लक्षित नहीं होता]॥७१॥ पार्वतीजी के रूप और अनुराग को देखकर महादेव जी उनके वश में हो गये और मानो प्रेमामृत में सानकर वचन बोले॥७२॥

हमहि आजु लगि कनउड़ काहुँ न कीन्हेउ।
पारबती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ॥७३॥
अब जो कहहु सो करउँ बिलंबु न एहिं घरी।
सुनि महेस मृदु बचन पुलकि पायन्ह परी॥७४॥

[शिवजी कहते हैं कि] 'हमको आज तक किसी ने कृतज्ञ नहीं बनाया; परंतु हे पार्वती! तुमने तो अपने तप और प्रेम से मुझे मोल ले लिया॥७३॥ अब तुम जो कहो, मैं इसी क्षण वही करूँगा, विलम्ब नहीं होने दूँगा।' शिवजी के [ऐसे] कोमल वचन सुनकर पार्वती जी पुलकित हो उनके पैरों पर गिर पड़ीं॥७४॥

परि पायँ सखि मुख कहि जनायो आपु बाप अधीनता।
परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रवीनता॥
हर हृदयँ धरि घर गौरि गवनी कीन्ह बिधि मन भावनो।
आनंदु प्रेम समाजु मंगल गान बाजु बधावनो॥९॥

पार्वतीजी ने उनके पैरों पड़कर सखी के द्वारा अपना पिता के अधीन होना सूचित किया, तब शिवजी उनका परितोष करके उनकी प्रीति एवं नीतिनिपुणता का वर्णन करते चले गये। इधर पार्वती जी भी शिवजी को हृदय में धारणकर घर चली गयी।

विधाता ने सब कुछ उनके मन के अनुकूल कर दिया। [फिर तो] आनन्द और प्रेम का समाज जुट गया, मङ्गलगान होने लगा और बधावा बजने लगा ॥९॥

सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि।
कीन्ह संभु सनमानु जन्म फल पाइन्हि ॥७५॥
सुमिरहिं सकृत तुम्हहि जन तेइ सुकृती बर।
नाथ जिन्हहि सुधि करिअ तिन्हहिं सम तेइ हर ॥७६॥

तब शिवजी ने सप्तमहर्षियों (कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, विश्वामित्र, वसिष्ठ, भरद्वाज और गौतम) को स्मरण किया। उन्होंने आकर शिवजी को सिर नवाया। शिवजी ने उनका सम्मान किया और उन्होंने भी [शिवजी का दर्शन करके] जन्म का फल पा लिया ॥७५॥ [सप्तमहर्षियों ने कहा कि] 'जो लोग एक बार भी आपका स्मरण कर लेते हैं, वे ही पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ हैं।' हे नाथ ! हे हर ! [फिर] जिसे आप स्मरण करें, उसके समान तो वही है ॥७६॥

सुनि मुनि विनय महेस परम सुख पायउ।
कथा प्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनायउ ॥७७॥
जाहु हिमाचल गेह प्रसंग चलायहु।
जौं मन मान तुम्हार तौ लगन धरायहु ॥७८॥

मुनियों की विनय सुनकर शिवजी ने परम सुख प्राप्त किया और उन मुनीश्वरों को सब कथा का प्रसङ्ग सुनाया ॥७७॥ [और कहा कि] 'तुमलोग हिमांचल के घर जाओ और इसकी चर्चा चलाकर यदि जँच जाय तो लग्न धरा आना' ॥७८॥

अरुंधती मिलि मनहिं बात चलाइहि।
नारि कुसल इहिं काजु बनि आइहि ॥७९॥
दुलहिनि उमा ईसु बहु साधक ए मुनि।
बनिहि अवसि यह काजु गगन भइ अस धुनि ॥८०॥

[इसी अवसर] आकाशवाणी हुई कि वसिष्ठपत्नी अरुन्धती मैना से मिलकर बात चलायेंगी। स्त्रियां इस काम (बरेखी) में कुशल होती हैं, [अतः] काम बन जायगा ॥७९॥ उमा (पार्वतीजी) दुलहिन हैं और शिवजी (वर) दुलहा हैं। ये मुनिलोग साधक हैं: अतः यह काम अवश्य बन जायगा ॥८०॥

भयउ अकनि आनंद महेस मुनीसन्ह।
देहिं सुलोचनि सगुन कलस लिएँ सीसन्ह ॥८१॥
सिव सो कहेउ दिन ठाउँ बहोरि मिलनु जहँ।
चले मुदित मुनिराज गए गिरिवर पहँ ॥८२॥

शिवजी और मुनियों को आकाशवाणी सुनने से आनन्द हुआ। सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ सिर पर कलश लिये [शुभ] शकुन सूचित करती हैं ॥८१॥ शिवजी ने महर्षियों

को वह दिन और स्थान बतलाया, जहाँ फिर मिलना हो सकता था; तब वे मुनिश्रेष्ठ आनन्दित होकर गिरिराज (हिमवान्) के पास चलकर पहुँचे ॥८२॥

गिरि गेह गे अति नेहँ आदर पूजि पहुँनाई करी।
घरबात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी ॥
सुखु पाइ बात चलाइ सुदिन सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै।
रिषि सात प्रातहि चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइ कै ॥१०॥

जब सप्तर्षि हिमवान् के घर गये, तब हिमवान् ने स्नेह एवं आदरपूर्वक पूजकर उनकी पहुनाई की और पत्नी एवं कन्यासहित घर की सारी सामग्री लाकर उनके आगे रख दी। तब [पूजा आदि से] आनन्दित हो विवाह की बात चली और हिमवान् को समझाकर शुभ दिन शोधन करा प्रातःकाल ही सातों ऋषि सुन्दर लग्न लिखवाकर आनन्दपूर्वक [वहाँ से] चले ॥१०॥

विप्र बृन्द सनमानि पूजि कुल गुर सुर।
परेउ निसानहि घाउ चाउ चहुँ दिसि पुर ॥८३॥
गिरि बन सरित सिंधु सर सुनइ जो पायउ।
सब कहँ गिरिबर नायक नेवत पठायउ ॥८४॥

हिमवान् ने ब्राह्मणों को सम्मान करके कुलगुरु और देवताओं को पूजा की। नगारों पर चोट पड़ने लगी और नगर में चारों ओर उमंग छा गयी ॥८३॥ पर्वत, वन, नदी, समुद्र और सरोवर जिन-जिनके विषय में सुना उन सभी को सभी श्रेष्ठ पर्वतों के नायक हिमाचल ने न्योता भेज दिया ॥८४॥

धरि धरि सुंदर वेष चले हरषित हिएँ।
चँवर चीर उपहार हार मनि गन लिएँ ॥८५॥
कहेउ हरषि हिमवान बितान बनावन।
हरषित लगीं सुआसिनि मंगल गावन ॥८६॥

वे सब-के-सब सुन्दर वेष बना-बनाकर उपहार के लिये चँवर, वस्त्र, हार और मणिगण लिये हृदय में हर्षित हो चले ॥८५॥ हिमवान् ने प्रमुदित होकर [कुशल कारीगरों को] मण्डप बनाने की आज्ञा दी और विवाहिता लड़कियाँ मङ्गल-गान करने लगीं ॥८६॥

तोरन कलस चँवर धुज बिबिध बनाइन्हि।
हाट पटोरन्हि छाय सफल तरु लाइन्हि ॥८७॥
गौरी नैहर केहि बिधि कहहु बखानिय।
जनु रितुराज मनोज राज रजधानिय ॥८८॥

अनेक प्रकार के बंदनवार, कलश, चँवर और ध्वजा-पताकाएं बनायी गयीं,

बाजार को रेशमी वस्त्रों से छाकर [बीच-बीच में] फलयुक्त वृक्ष लगाये गये ।। ८७ ।। पार्वतीजी के नैहर का कहिये, किस प्रकार वर्णन किया जाय ! वह तो मानो बसन्त और कामदेव के राज्य की राजधानी ही थी ।। ८८ ।।

जनु राजधानी मदन की बिरची चतुर बिधि और हीं ।
रचना बिचित्र बिलोकि लोचन बिथकि ठौरहि ठौर हीं ।।
एहि भाँति ब्याह समाज सजि गिरिराजु मगु जोवन लगे ।
तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनँद रँग मगे ।। ११ ।।

मानो चतुर विधाता ने कामदेव की राजधानी को और ही (अलौकिक) ढंग से रचा है । उसकी विचित्र रचना को देखकर नेत्र जहां जाते हैं, वहीं ठिठककर रह जाते हैं । इस प्रकार विवाह का साज सजाकर हिमवान् बरात का रास्ता देखने लगे । गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि मुनियों ने शिवजी को लग्न-पत्रिका लेकर दी । इससे शिवजी आनन्दोत्सव में मग्न हो गये ।। ११ ।।

बेगि बोलाइ बिरंचि बचाइ लगन जब ।
कहेन्हि बिआहन चलहु बुलाइ अमर सब ।। ८९ ।।
बिधि पठए जहँ तहँ सब सिव गन धावन ।
सुनि हरषहिं सुर कहँहि निसान बजावन ।। ९० ।।

शिवजी ने तुरंत ही ब्रह्माजी को बुलवाकर जब लग्न-पत्रिका पढवायी, तब उन्होंने कहा कि 'सब देवताओं को बुलवाकर विवाह के लिये चलो ।' ब्रह्मा ने जहां-तहाँ शिवजी के गणों को धावन (दूत) बनाकर भेजा । यह समाचार सुनकर देवता लोग प्रसन्न हुए और नगारे बजाने को कहने लगे ।। ८९-९० ।।

रचहिं बिमान बनाइ सगुन पावहि भले ।
निज निज साजु समाजु साजि सुरगन चले ।। ९१ ।।
मुदित सकल सिव दूत भूत गन गाजहिं ।
सूकर महिष स्वान खर बाहन साजहिं ।। ९२ ।।

वे सँवारकर विमानों को सजाने लगे । उस समय अच्छे-अच्छे शकुन होने लगे । इस प्रकार अपने-अपने साज-समाज को सजाकर देवता लोग चल दिये ।। ९१ ।। शिवजी के समस्त दूत और भूतगण अत्यन्त आनन्दित होकर गरज रहे हैं और सूअर, भैंसे, कुत्ते, गदहे आदि [अपने-अपने] वाहनों को सजाते हैं ।। ९२ ।।

नाचहिं नाना रंग तरंग बढ़ावहिं ।
आज उलूक बृक नाद गीत गन गावहिं ।। ९३ ।।
रमानाथ सुरनाथ साथ सब सुर गन ।
आए जहँ बिधि संभु देखि हरषे मन ।। ९४ ।।

वे अनेक प्रकार से नाचते हैं और आनंद की उमंग को और भी बढ़ाते हैं। बकरे, उल्लू, भेड़िये, शब्द कर रहे हैं और शिवजी के गण गीत गाते हैं ॥ ९३ ॥ [इसी समय] लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु और देवराज इन्द्र समस्त देवताओं के साथ जहाँ ब्रह्माजी एवं शंकरजी थे, वहाँ आये और उन्हें देखकर अपने मन में [बहुत] प्रसन्न हुए ॥ ९४ ॥

मिले हरिहिं हरु हरषि सुभाषि सुरेसहिं।
सुर निहारि सनमानेउ मोद महेसहि ॥ ९५ ॥
बहु बिधि वाहन जान बिमान बिराजहिं।
चली बरात निसान गहागह बाजहिं ॥ ९६ ॥

देवराज इन्द्र से मधुर वचन कहकर श्रीमहादेवजी प्रसन्न हो श्रीविष्णुभगवान् से मिले और देवताओं की ओर देखकर उन्हें सम्मानित किया। इससे शिवजी को बड़ा आनन्द हुआ ॥ ९५ ॥ [उस समय] बहुत प्रकार के वाहन, यान और विमान शोभायमान हो रहे थे। फिर बरात चली और धड़ाधड़ नगारे बजने लगे ॥ ९६ ॥

बाजहिं निसान सुगान नभ चढ़ि बसह बिधुभूषन चले।
बरषहिं सुमन जय जय करहिं सुर सगुन सुब मंगल भले ॥
तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे।
गज छाल ब्याल कपाल माल बिलोकि बर सुर हरि हँसे ॥ ११ ॥

आकाश में नगारे बजने लगे और गाने का मधुर शब्द होने लगा। शिवजी बैलपर चढ़कर चले। देवतालोग जय-जयकार करने और फूल बरसाने लगे तथा शुभसूचक अच्छे-अच्छे शकुन होने लगे। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि महादेवजी के साथ भूत, प्रेत, पिशाच—ये ही बरातियों के रूप में शोभायमान हो रहे थे। [उस समय] वर को गज-चर्म, सर्प और मुण्डमाला से विभूषित देखकर देवतालोग और विष्णु भगवान् हँसने लगे ॥ १२ ॥

बिबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयउ।
आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ ॥ ९७ ॥
प्रमथनाथ के साथ प्रमथ गन राजहिं।
बिबिध भांति मुख बाहन बेष बिराजहिं ॥ ९८ ॥

भगवान् ने देवताओं को बुलाकर कहा कि 'अब नगर निकट आ गया है, अतः सब लोग अपने-अपने समाज को अलग अलग कर लो' ॥ ९७ ॥ इस समय भूतनाथ के साथ भूतगण शोभायमान हैं, जो अनेक प्रकार के मुख, वेष और वाहनों से विराजमान हो रहे हैं ॥ ९८ ॥

कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं।
नर कपाल जल भरि-भरि पिअहि पिआवहिं ॥ ९९ ॥

वर अनुहरत बरात बनी हरि हँसि कहा।
सुनि हियँ हँसत महेस केलि कौतुक महा॥ १०० ॥

वे कछुओं के खपड़े को खाल से मँढ़कर उन्हीं को नगारों के रूप में बजाते हैं और मनुष्य की खोपड़ी में जल भर-भरकर पीते और पिलाते हैं॥ ९९ ॥ तब भगवान् विष्णु ने हँसकर कहा कि दुलहा के योग्य ही बरात बनी है, यह सुनकर शिवजी हृदय में हँसते हैं। इस प्रकार खूब क्रीड़ा-कौतुक हो रहा है॥ १०० ॥

बड़ बिनोद मग मोद न कछु कहि आवत।
जाइ नगर नियरानि बरात बजावत॥ १०१ ॥
पुर खरभर उर हरषेउ अचल अखंडलु।
परब उदधि उमगेउ जनु लखि बिधु मंडल॥ १०२ ॥

मार्ग में बड़ा विनोद हो रहा है, उस समय का आनन्द कुछ कहने में नहीं आता। बरात बाजे बजाती हुई नगर के निकट पहुँच गयी॥ १०१ ॥ नगर में खलबली पड़ गयी और सम्पूर्ण हिमाचल पर्वत (राज्य भर) हृदय में आनन्दित हो गया, मानो पूर्णिमा के समय चन्द्र मण्डल को देखकर समुद्र उमड़ गया हो॥ १०२ ॥

प्रमुदित गे अगवान बिलोकि बरातहि।
भभरे बनइ न रहत न बनइ परातहि॥ १०३ ॥
चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत।
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत॥ १०४ ॥

स्वागत करने वाले प्रसन्न होकर आगे गये, परंतु बरात को देखकर घबरा गये। उस समय उनसे न तो रहते बनता था और न भागते ही॥१०३॥ हाथी, घोड़े भाग चले, वे लौटाने से भी नहीं लौटते, बालक भी घबराहट के मारे भटक गये, वे घर खोजते फिरते हैं॥१०४॥

दीन्ह जाइ जनवास सुपास किए सब।
घर घर बालक बात कहन लागे तब॥१०५॥
प्रेत बेताल बराती भूत भयानक।
बरद चढा बर बाउर सबइ सुबानक॥१०६॥

अगवानों ने बरातियों को जनवासा दिया और सब प्रकार के सुपास (ठहरने के लिये स्थान) की व्यवस्था कर दी, तब सब बालक घर-घर पहुँचकर कहने लगे॥१०५॥ 'प्रेत, बेताल और भयंकर भूत बराती हैं तथा बावला वर बैलपर सवार है। इस प्रकार सभी बानक दुलहे के योग्य ही बना है (अर्थात् सारा साज-समाज ही विपरीत है)'॥१०६॥

कुसल करत करतार कहहिं हम सांचिअ।
देखब कोटि बिआह जिअत जौं बाँचिअ॥१०७॥

समाचार सुनि सोचु भयउ मन मैंयनहि ।
नारद के उपदेस कवन घर गे नहिं ॥१०८॥

'हम सत्य कहते हैं ईश्वर कुशल करें, जो जीते बच गये तो करोड़ों व्याह देखेंगे' ॥१०७॥ इस समाचार को सुनकर मैना के मन में [बड़ा] सोच हुआ । [वे कहने लगीं कि] नारद के उपदेश से कौन घर नष्ट नहीं हुआ ॥१०८॥

घर घाल चालक कलह प्रिय कहियत परम परमारथी ।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथी ॥
उर लाइ उमहि अनेक विधि जलपति जननि दुख मानई ।
हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई ॥१३॥

'नारद जी को कहते तो परम परोपकारी हैं, परंतु ये हैं घर को नष्ट करने वाले धूर्त्त और कलहप्रिय । सप्तर्षियों ने विवाह-सम्बन्धी बातचीत भी वैसी ही की, वे भी [पूरे] स्वार्थसाधक हीं निकले ।' इस प्रकार माता मैना पार्वतीजी को हृदय से लगाकर अनेक प्रकार की कल्पना करने लगी और अत्यन्त दुःख मानने लगी । तब हिमवान् ने कहा कि शिवजी की महिमा अगम्य है, उसे वेद भी नहीं जानता ॥१३॥

सुनि मैना भइ सुमन सखी देखन चली ।
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गली ॥ १०९ ॥
श्रीपति सुरपति विबुध बात सब सुनि सुनि ।
हँसहिं कमल कर जोरि मोरि मुख पुनि पुनि ॥ ११० ॥

हिमवान् के वचन सुनकर मैना का मन कुछ स्वस्थ हुआ अर्थात् उसके मन में सान्त्वना हुई । उस समय जहाँ-तहाँ बाजार, चौक एवं गलियों में बरात की ही चरचा चल रही थी ॥ १०९ ॥ उसे सुन-सुन लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु, देवराज इन्द्र तथा [अन्य] देवता लोग कमल के समान हाथों को जोड़कर (अर्थात् मुखमण्डल को हाथों से ढककर) बार-बार मुंह फेरकर हँसते थे ॥ ११० ॥

लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर ।
भए सुंदर सत कोटि मनोज मनोहर ॥ १११ ॥
नील निचोल छाल भइ फनि मनि भूषन ।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन ॥ ११२ ॥

तब श्रीमहादेवजी लौकिक गति को देखते हुए उस समय बड़ा कोलाहल जान सौ करोड़ कामदेवों से भी अधिक सुन्दर और मनोहर हो गये ॥ १११ ॥ उनका गजचर्म नीलाम्बर हो गया और जितने सर्प थे, वे मणिमय आभूषण हो गये । उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो उनके रोम-रोम पर सुन्दर रूपमय सूर्य प्रकाशित हो रहे हों ॥ ११२ ॥

गन भए मंगल बेष मदन मन मोहन।
सुनत चले हियँ हरषि नारि नर जोहन॥ ११३॥
संभु सरद राकेस नखत गन सुर गन।
जसु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुर जन॥ ११४॥

शिवजी के गणों का वेष भी मङ्गलमय हो गया और वे अपने सौन्दर्य से कामदेव के भी मन को मोहने लगे। यह सुनकर [सभी] स्त्री-पुरुष हृदय में आनन्दित होकर उन्हें देखने के लिये चले॥ ११३॥ [उस समय ऐसा जान पड़ता था] मानो शिवजी शारदी पूर्णिमा के चन्द्रमा हैं, देवता लोग नक्षत्रों के समान हैं तथा उन्हें देखने के लिये उनके चारों ओर पुरवासी लोग चकोर-समुदाय की भाँति सुशोभित हो रहे थे ॥११४॥

गिरिबर पठए बोलि लगन बेरा भई।
मंगल अरघ पाँवड़े देत चले लई॥ ११५॥
होहिं सुमंगल सगुन सुमन बरषहिं सुर।
गहगहे गान निसान मोद मंगल पुर॥ ११६॥

लग्न का समय होने पर गिरिवर हिमवान् ने बरातियों को बुलावा भेजा और उन्हें मङ्गलमय अर्घ्य और पाँवड़े देते साथ ले चले॥ ११५॥ [चलने के समय] मङ्गलमय शकुन होते हैं और देवता लोग फूलों की वर्षा करते हैं। आनन्दपूर्ण गान और नगारों का निनाद होने लगा और नगर आनन्द एवं मङ्गल से पूर्ण हो गया ॥११६॥

पहिलिहिं पवरि सुसामध भा सुख दायक।
इति बिधि उत हिमवान सरिस सब लायक॥ ११७॥
मनि चामीकर चारु थार सजि आरति।
रति सिहाहि लखि रूप गान सुनि भारति॥ ११८॥

पहली ही पौरी पर समधियों का सुखदायक सम्मिलन हुआ। इधर ब्रह्माजी थे और उधर हिमवान् थे। दोनों ही समान और सब प्रकार से योग्य थे॥ ११७॥ फिर मणि और सोने के सुन्दर थाल में आरती सजाकर स्त्रियाँ चलीं। उनके रूप को देखकर कामपत्नी रति और गान श्रवणकर सरस्वती भी ईर्ष्या करने लगती थीं॥ ११८॥

भरी भाग अनुराग पुलकि तन मुद मन।
मदन मत्त गजगवनि चलीं बर परिछन॥ ११९॥
बर बिलोकि बिधु गौर सुअंग उजागर।
करति आरती सासु मगन सुख सागर॥ १२०॥

शरीर से पुलकित और मन में आनन्दित हो वे भाग्य और प्रेम से भरी प्रेम के आवेश में मत्त गजगामिनी कामिनियाँ वर (दूलह) का परिछन (आरती) करने चलीं॥ ११९॥ वर को चन्द्रमा के समान गौर और अङ्ग-अङ्ग में प्रकाशपूर्ण देखकर सास (मैना) सुखसागर में मग्न हो आरती उतारने लगीं॥ १२०॥

सुख सिंधु मगन उतारि आरति करि निछावर निरखि कै।
मगु अरघ बसन प्रसून भरि लेइ चलीं मंडप हरषि कै॥
हिमवान दीन्हें उचित आकन सकल सुर सनमानि कै।
तेहि समय साज समाज सब राखे सुमंडप आनि कै॥ १४॥

सास ने सुख-सिन्धु में मग्न होकर आरती उतारी और फिर निछावर करके वर की ओर देखकर मार्ग में अर्घ्य और पाँवड़े देतीं फूल से लदे हुए वर को आनन्द-पूर्वक मण्डप में ले चलीं। हिमवान् ने सभी देवताओं का सम्मान करके उन्हें उचित आसन दिये। उस समय का जो कुछ साज-समाज था वह सब सुन्दर मण्डप में लाकर रखा गया॥ १४॥

अरघ देइ मनि आसन बर बैठायउ।
पूजि कीन्ह मधुपर्क अमी अचवायउ॥ १२१॥
सप्त रिषिन्ह बिधि कहेउ बिलंब न लाइअ।
लगन बेर भइ बेगि बिधान बनाइअ॥ १२२॥

वर को अर्घ्य देकर मणिजटित आसन पर बैठाया गया और फिर पूजा करके मधुपर्क खिलाने की रीति पूरी की गयी तथा अमृत का आचमन कराया गया॥१२१॥ तत्पश्चात् ब्रह्मा ने सप्तर्षियों से कहा कि 'विलम्ब न करो, लग्न का समय हो गया है। शीघ्र ही सब विधियाँ सम्पन्न करो'॥ १२२॥

थापि अनल हर बरहि बसन पहिरायउ।
आनहु दुलहिनि बेगि समय अब आयउ॥ १२३॥
सखी सुआसिनि संग गौरि सुठि सोहति।
प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति॥ १२४॥

तब अग्नि-स्थापना करके दूल्हे (श्रीशिवजी) को वस्त्र पहनाया गया और कहा गया कि 'शीघ्र ही दुलहिन को लाओ, अब समय आ गया है'॥ १२३॥ उस समय सखियों और ब्याही हुई [अन्य] लड़कियों के साथ पार्वतीजी अत्यन्त सुशोभित थीं, मानो सौन्दर्य-मूर्ति प्रकट होकर जगत् को मोह रही हो॥ १२४॥

भूषन बसन समय सम सोभा सो भली।
सुषमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली॥ १२५॥
कहहु काहि पटतरिय गौरि गुन रूपहि।
सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहि॥ १२६॥

समय के अनुकूल वस्त्र और आभूषणों की खूब शोभा हो रही है, मानो शोभा की नवीन लतिका रूपमय फलों से फली हुई है॥ १२५॥ कहो, पार्वतीजी के गुणों एवं रूप की तुलना किससे की जाय! समुद्र को किस प्रकार तालाब और कुए के बराबर बतलाया जाय!॥ १२६॥

आवत उमहि बिलोकि सीस सुर नावहिं ।
भव कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं ॥ १२७ ॥
बिप्र वेद धुनि करहिं सुभासिष कहि कहि ।
गान निसान सुमन झरि अवसर लहिं लहि ॥ १२८ ॥

पार्वतीजी को आते देखकर देवता लोग सिर नवाते हैं और अपना जन्म कृतार्थ हुआ जानकर सुखी होते हैं ।। १२७ ।। ब्राह्मणलोग आशीर्वाद दे-देकर वेद की ध्वनि कर रहे हैं और समय-समय पर गान एवं नगारों की ध्वनि तथा फूलों की वर्षा हो रही है ।। १२८ ।।

वर दुलहिनिहि बिलोकि सकल मन हरसहिं ।
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहसहिं ॥ १२९ ॥
लोक वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर ।
कन्या दान सँकलप कीन्ह धरनीधर ।। १३० ।।

सब लोग दुलहा-दुलहिन को देखकर मन-ही-मन प्रफुल्लित होते हैं । शाखोच्चार के समय सब देवता और मुनि लोग हँसने लगे ।। १२९ ।। फिर पर्वतराज हिमवान् ने सब प्रकार की लौकिक-वैदिक विधियों को करके हाथ में जल और कुश लिया तथा कन्यादान का संकल्प किया ।। १३० ।।

पूजे कुल गुर देव कलसु सिल सुभ घरी ।
लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी ।। १३१ ।।
बंदन बंदि ग्रंथि बिधि करि ध्रुव देखेउ ।
भा बिवाह सब कहहिं जनम फल पेखेउ ।। १३२ ।।

कुलगुरु और कुलदेवताओं का पूजन किया गया । फिर उस शुभ घरी में कलश और शिला का पूजन किया गया । [तत्पश्चात्] लावा-विधान (जिसमें कन्या का भाई कन्या की गोद में धान का लावा भरता है) और होम-विधान होकर फिर भाँवरें पड़ीं ।। १३१ ।। [इसके अनन्तर] वधू की माँग में सिन्दूर भरने की रीति कर ग्रन्थिबन्धन हुआ और फिर ध्रुव का दर्शन किया गया । तब सब लोग कहने लगे कि विवाह सम्पन्न हो गया और हमलोगों ने जन्म लेने का फल अपनी आँखों से देख लिया ।। १३२ ।।

पेखेउ जनम फलु भा बिबाह उछाह उमगहि दस दिसा ।
नीसान गान प्रसून झरि तुलसी सुहावनि सो निसा ।।
दाइज बसन मनि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी ।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पिआरी पेव की ।। १५ ।।

इस प्रकार सभी ने अपना जन्मफल देखा। विवाह हो गया और दसों दिशाओं में आनन्द उमड़ पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि नगारों के घोष, गान की ध्वनि और फूलों की वर्षा से वह रात्रि सुहावनी हो गयी। पर्वतराज हिमवान् ने वस्त्र, मणियाँ, गौ, धन, हाथी, घोड़े, दास, दासियाँ —जो कुछ भी गिरिराज को प्रिय थे, वे सभी प्रेम पूर्वक दहेज में दिये ॥ १५ ॥

बहुरि बराती मुदित चले जनवासहि।
दूल्ह दुलहिनि गे तब हास-अवासहि ॥ १३३ ॥
रोकि द्वार मैना तब कौतुक कीन्हेउ।
करि लहकौरि गौरि हर बड़ सुख दीन्हेउ ॥ १३४ ॥

फिर बराती लोग तो जनवासे को चले गये और दूल्हा-दुलहिन कोहबर में गये ॥ १३३ ॥ उस समय मैना ने उसका द्वार रोककर कौतुक किया और शिव-पार्वती ने लहकौरिकी रीति करके उसे बड़ा सुख दिया ॥ १३४ ॥

जुआ खेलावत गारि देहि गिरि नारिहि।
आपनि ओर निहारि प्रमोद पुरारिहि ॥ १३५ ॥
सखी सुआसिनि सासु पाउ सुख सब विधि।
जनवासेहि बर चलेउ सकल मंगल निधि ॥ १३६ ॥

जुआ खेलाते समय सब स्त्रियाँ हिमाचल पत्नी मैना को गाली गाती हैं। शिवजी अपनी ओर देखकर विशेष आनन्दित होते हैं [कि हमारे तो माता है ही नहीं, गाली किसको देंगी] ॥ १३५ ॥ सखियों, सुवासिनियों और सास सभी ने सब प्रकार सुख प्राप्त किया। फिर सब मङ्गलों के निधान दूल्हा श्रीमहादेव जी जनवासे को चले ॥ १३६ ॥

भइ जेवनार बहोति बुलाइ सकल सुर।
बैठाए गिरिराज धरम धरनि धुर ॥१३७॥
परुसन लगे सुआर बिबुध जन जेवहि।
देंहि गारि वर नारि मोद मन मेवहि ॥१३८॥

तदनन्तर सब देवताओं को बुलाकर जेवनार हुई। धर्म और पृथ्वी को धारण करने वाले गिरिराज ने सबको बिठाया ॥१३७॥ सुआर (सूपकार) परोसने लगे और देवतालोग जीमने लगे। उस समय सुन्दरी स्त्रियाँ गाली गाने लगीं और मन को आनन्द में डुबोने लगीं ॥१३७॥

करहि सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह।
जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह ॥१३९॥
भूधर भोरु विदा कर साज सजायउ।
चले देव सजि जान निसान बजाउ ॥१४०॥

गुणी लोग सहनाइयों पर सुमङ्गल गान करने लगे, विष्णु भगवान् और ब्रह्मा जी अपने भाई (सजातीय) समस्त देवताओं के साथ भोजन करके चले ।।१३९।। पर्वतराज हिमवान् ने प्रातःकाल होते ही विदा का सामान तैयार किया और देवतालोग रथों को सजाकर नगारे बजाते चल दिये ।।१४०।।

सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि ।
कीन्ह बड़ाई विनय सनेह सुहावनि ।।१४१।।
गहि सिब पद कह सासु विनय मृदु मानवि ।
गौरि सजीवन मूरि मोरि जियँ जानवि ।।१४२।।

सभी देवताओं का सम्मान करके उन्हें पहिरावनी दी और उनकी विनय एवं स्नेह से सुहावनी बड़ाई की ।।१४१।। फिर सास ने शिवजी के चरणों को पकड़कर कहा कि 'हमारी एक विनीत प्रार्थना मानिये—पार्वती मेरे जीवन की मूल है ऐसा जानियेगा' ।।१४२।।

भेटि बिदा करि वहुरि भेंटि पहुँचावहिं ।
हुँकरि हुँकरि सु लवाइ धेनु जनु धावहिं ।।१४३।।
उमा मातु मुख निरखि नैन जल मोचहिं ।
नारि जनमु जग जाय सखी कहि सोचहिं ।।१४४।।

वे एक वार मिलकर विदा कर देती हैं और फिर मिलकर पहुँचाने जाती हैं, मानो हाल की वियाई हुई गाय हुँकार भर-भरकर दौड़ती हो ।।१४३।। पार्वती जी माता के मुख को देखकर नेत्रों से जल वहा रही हैं और सखियाँ 'संसार में स्त्री का जन्म ही वृथा है' यों कहकर सोच करती हैं ।।१४४।।

भेटि उमहि गिरिराज सहित सुत परिजन ।
बहुत भाँति समुझाइ फिरे बिलखित मन ।।१४५।।
संकर गौरि समेत गए कैलासहि ।
नाइ नाइ सिर देव चले निज वासहि ।।१४६।।

गिरिराज हिमवान् पुत्र और परिजनों सहित पार्वतीजी से मिलकर और उन्हें बहुत प्रकार समझा-बुझाकर दुखी मन से लौटे ।।१४५।। फिर शिवजी पार्वतीजी के सहित कैलास गये और देवतालोग प्रणाम करके अपने-अपने स्थानों को चले गये ।।१४६।।

उमा महेस बिआह उछाह भुवन भरे ।
सव के सकल मनोरथ विधि पूरन करे ।।१४७।।
प्रेम पाट पटडोरि गौरि हर गुन मनि ।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि ।।१४८।।

पार्वतीजी और शिवजी के विवाह के आनन्द से सारे भुवन भर गये, विधाता ने सबके सम्पूर्ण मनोरथों को पूरा कर दिया ।।१४७।। प्रेमरूप रेशम के रेशमी तागे में कवि की बुद्धिरूपी मृगनयनी कामिनी ने यह श्रीपार्वती और शंकर के गुणगणरूपी मणियों से मङ्गलमय हार गूँथा ।।१४८।।

मृगनयनि विधुवदनी रचेउ मनि मंजु मंगलहार सो ।
उर धरहुँ जुवती जन विलोकि तिलोक सोभा सार सो ।।
कल्यान काज उछाह व्याह सनेह सहित जो गाइहै ।
तुलसी उमा संकर प्रसाद प्रमोह मन प्रिय पाइहै ।।१६।।

कवि की बुद्धिरूपी चन्द्रवदनी स्त्री ने [उपर्युक्त] मणियों के इस मङ्गलहार को रचा है, इसे भक्तों की बुद्धिरूपी स्त्रियाँ तीनों लोक की शोभा का सार समझकर धारण करें । जो लोग विवाहोत्सवादि मङ्गल-कृत्यों के समय इसका प्रेमसहित गान करेंगे, श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि वे श्रीशिव और पार्वतीजी के प्रसाद से मन को प्रिय लगने वाला आनन्द प्राप्त करेंगे ।।१६।।

'पार्वती मंगल स्तोत्र' में प्रातः स्मरणीय गोस्वामीजी ने देवाधिदेव भगवान् शंकर द्वारा जगदम्बा पार्वती के कल्याणमय पाणिग्रहण का काव्यमय एवं सरस चित्रण किया है । परमाराध्य एवं वंदनीय गिरिराजकिशोरी पार्वतीजी अनादिकाल से हमारी पतिव्रताओं के लिए परमादर्श रही हैं, इसीलिए हिन्दू परिवारों में वराभिलाषी कन्यायें उन्हें आराध्य मानकर गौरी-पूजन किया करती हैं ।

यह स्तोत्र सश्रद्धा एवं सविधि पाठ-पारायण से शीघ्र ही फलदायी होता है । समकालीन समाज में उच्चारण में दुरुह देववाणी (संस्कृत) की तुलना में सहजता से करणीय यह स्तोत्र विशेष तथा शीघ्र फलदायी सिद्ध हुआ है ।

—:०:—

अष्टम अध्याय

कलत्र भावस्थ ग्रह : विवेचन

मानव जीवन के प्रत्येक निमिष को किसी न किसी ग्रह का अनुग्रह प्राप्त है. इस अनिवार्य अनुभव को शब्द-संभव और विवेक सम्मत बनाकर भारतीय ऋषि-मनीषियों ने जन्मांग की परिकल्पना की। जन्मांग का प्रत्येक भाव कुछ विशिष्ट तथ्यों का नियमन करता है।

सप्तम भाव जन्मांग का मध्यवर्ती भाव है। शत्रु भावों के क्रूर संपुट में संस्थित यह भाव कामकलित तथा वासना वलयित ललित भावों-अनुभावों, सम्बन्धों-रहस्यों की वैयक्तिक अस्मिता और सामाजिक इयत्ता की विवेचना का मूल स्थान है।

पुस्तक का मूल विषय तो वैवाहिक विलम्ब का ज्योतिषीय विश्लेषण और विलम्बकारी स्थितियों का सम्यक निराकरण है, परन्तु विवाह कारक सप्तम भाव में विभिन्न ग्रहों का शुभाशुभ फल होता है, पाठकों की अभिरुचि को दृष्टिगत रखते हुए इसका उल्लेख भी यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

महर्षि पराशर के अनुसार सप्तम भाव विवाह, यौन सम्बन्ध तथा पति-पत्नी-संपत्ति विचार के लिए है। इसके समानान्तर कालिदास ने अपनी प्रख्यात कृति "उत्तर कालामृत" में अंकित किया है कि सप्तम भाव से यौन अंगों के सम्बन्ध में निर्णय प्राप्त करना चाहिए। कृतिकार के अनुसार यौनांगों की संरचनादि पर सप्तम भावस्थ ग्रह पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

वासना और प्रेम के द्वन्द्व में विकसित सामाजिक अनुशासन का नाम विवाह है। विवाह जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक है। व्यक्ति के जीवन पर विवाह सम्पन्न होने अथवा न होने, दोनों का दूरगामी एवं स्थाई प्रभाव पड़ता है। इस सन्दर्भ में विवेचना के लिए जन्मांग के सप्तम भाव को निर्विवादेन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है। इस भाव से विवाह और उससे सम्बद्ध-आबद्ध प्रायः समस्त तथ्यों का अभिज्ञान होता है। यद्यपि सप्तम भाव विवाह के अतिरिक्त कुछ अन्य जीवन क्षेत्रों का भी परिचायक है, परन्तु विषय की प्रासंगिकता को अक्षत रखने के लिए उनके वर्णन का लोभ संवरण कर रही हूं।

सप्तम भाव से विवाह के विषय में चिन्तन करते समय अग्रलिखित तथ्य मस्तिष्क में रखने चाहिए—

१. सप्तम भाव—इस क्रम में सर्वप्रथम सप्तम भाव में अवस्थित ग्रहों का अध्ययन करना चाहिए, तदनन्तर सप्तम भाव की राशि, सप्तम भावस्थ ग्रह ग्रहों का, सप्तम भाव

पर विभिन्न ग्रहों की दृष्टि, सप्तम भावस्थ ग्रहों को जिन राशियों का स्वामित्व प्राप्त है उन पर विभिन्न ग्रहों का प्रभाव एवं सप्तम भावस्थ ग्रह जिन राशियों के नियामक हैं उन राशियों में अन्य ग्रहों की स्थिति का विश्लेषण करना चाहिए।

२. **सप्तमाधिपति**—सप्तमेश की भूमिका इस संदर्भ में प्रमुख है, अतः इसकी स्थिति तथा इस पर अन्य ग्रहों की दृष्टि अथवा युति के साथ-साथ उस नक्षत्र पर जिसके अन्तर्गत सप्तमेश स्थित, उदित अथवा अस्त है—इन सब पर विचार करना उपयोगी होता है।

३. **कारक ग्रह**—इस भाव का कारक ग्रह पुरुषों के संदर्भ में शुक्र तथा स्त्रियों के संदर्भ में बृहस्पति है। विवाह से सम्बन्धित किसी निर्णय के लिए कारक ग्रह का ज्ञान एक अनिवार्य आवश्यकता है, इसलिए शुक्र या बृहस्पति किन ग्रहों से प्रभावित है, आदि बातों की जानकारी अति आवश्यक है।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिकोण में रखते हुए इस विषय के अध्ययन का श्रीगणेश करना चाहिए, क्योंकि इनमें से किसी एक की ज्ञानात्मक अनुपस्थिति पूरे विवेचन को अशुद्ध, अप्रामाणिक एवं अवैज्ञानिक बना देती है। अग्रिम पंक्तियों में इन्हीं तथ्यों को किंचित विस्तृति प्रदान की गई है।

सप्तम भावस्थ ग्रह फल निर्णय

प्रत्येक ग्रह का अपना भावमय व्यक्तित्व होता है, इसीलिए एक ही भाव में उनकी स्थिति पृथक्-पृथक् सत्यों को उजागर करती है, कुछ ग्रह सप्तम भाव में परम मांगलिक और शुभ फल प्रदान करते हैं तथा कुछ ग्रह अनिष्टों की सृष्टि करते हैं। विभिन्न ग्रह सप्तम भाव में स्थित होकर किन परिस्थितियों में किन घटनाओं का निश्चय करते हैं उसका वर्णन प्रस्तुत है :—

सूर्य

सप्तम भाव में सूर्य की स्थिति को आचार्यों ने श्रेयस्कर नहीं बतलाया है। इस प्रकार के जातक की पत्नी रोग-ग्रस्त रहती है। यद्यपि उसका सम्बन्ध उच्च कुलशील से होता है तथा बाह्य सौन्दर्य आकर्षक होता है तथापि पत्नी के शारीरिक स्वास्थ्य की ओर से जातक आजीवन चिन्तित रहता है। ऐसे जातक का विवाह विलम्ब से सम्पन्न होता है। ऐसा जातक विपरीत योनि को समादृत नहीं करता, इस सम्बन्ध में उसका मस्तिष्क जुगुप्सापरक कुंठाओं का भण्डार होता है। उसका चरित्र संशय का आस्पद होता है, क्योंकि अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से शारीरिक संबंध स्थापित करना उसकी सहज वृत्ति और अदम्य आकांक्षा होती है। आयु के पच्चीसवें वर्ष में प्रायः चरित्र स्खलन की ऐसी घटनायें घटित होती हैं। इतर नारियों में आसक्ति के कारण यह अपनी पत्नी के प्रति विश्वास के योग्य नहीं होता। पत्नी के संदर्भ में

इसका व्यवहार अवांछनीय तथा अमानवीय होता है। मांसभक्षण प्रिय होता है। सूर्य सप्तमस्थ होने पर भी एक स्थिति में जातक को पत्नी के प्रति प्रतिश्रुत रखता है— यदि वह स्वराशि अर्थात सिंह राशि का हो। जातक एकाधिक स्त्रियों के साथ दैहिक भोग की ओर तभी प्रवृत्त होता है जब सूर्य शत्रुराशिगत हो, क्रूर या पापी ग्रहों से संयुक्त होकर सप्तमस्थ हो अथवा नीच राशिगत हो।

जातक की पत्नी अपने व्यक्तित्व को सर्वातिशायी बनाकर जातक पर स्वयं को आरोपित करने में पूर्ण सफल होती है। जातक की पत्नी की आकांक्षायें क्षमता के अनुपात में पर्याप्त व्यापक होती हैं, इन सब कारणों के संश्लिष्ट परिणाम के रूप में दुःख कलह एवं असंतोषपूर्ण वैवाहिक जीवन समक्ष आता है। जातक व्यापार के क्षेत्र में आशानुकूल उन्नति करता है।

सूर्य यदि सप्तम भावस्थ होकर क्रूर ग्रहों के प्रभाव क्षेत्र में आता है तो शासन की ओर से अपमान एवं कष्ट मिलता है। इस स्थिति में जातक को अर्थदण्ड भुगतना पड़ता हैं, क्योंकि सूर्य की यह अवस्थिति जातक को राजद्रोह के लिए प्रेरित करती है और वह व्यवस्था के विरुद्ध कार्य करता रहता है। इसी संदर्भ में उसे बरबस निरुद्देश्य भ्रमण करना पड़ता है। प्रायः अपमान के कड़वे घूँट पीने पड़ते हैं।

यदि अन्य अनुकूल संकेत हों तो जातक विदेश यात्रा करता है।

श्री मन्त्रेश्वर ने "फलदीपिका" में अष्टम अध्याय के तृतीय श्लोक में उल्लेख किया है कि सूर्य के सप्तम भावस्थ होने से जातक दैहिक आधि व व्याधि से पीड़ित रहता है, यह अनुभवसिद्ध है कि इस सूर्यस्थिति वाला जातक किसी न किसी अंग में पीड़ा रहने से आजीवन पीड़ित रहता है।

सूर्य की सप्तम भाव में स्थिति सर्वाधिक विवाह, वैवाहिक जीवन एवं चरित्र को प्रभावित करती है। सूर्य सप्तमस्थ हो तो विवाह संबंध जुड़ने में निश्चित रूप से विलम्ब होता है, इसका कारण है कि सूर्य अग्निप्रद ग्रह है। इसके सप्तम भाव में स्थित होने से जातक के विवेक या उसकी वासना पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता। अतिशय कामुकता के वशीभूत होकर वह तुष्टि की मृगमरीचिका के पीछे भटकता है। इसलिए उसे एक स्त्री बांधकर नहीं रख सकती और न ही वह रहना चाहता है। इस द्वन्द्व में वह विवाह के लिए उत्साह नहीं दिखाता। विवाह के उपरान्त भी उसकी वासनात्मक कुण्ठा छलना का अवगुण्ठन डालकर उसे लुभाती-ललचाती रहती है। अनेक स्त्रियों के साथ शरीर का आदान प्रदान करते हुए उसका जीवन व्यतीत हो जाता है, तृप्ति तो नहीं मिलती, हाँ, वह वैवाहिक सुख, चरित्र की गरिमा एवं सामाजिक प्रतिष्ठा से हाथ धो बैठता है।

वराहमिहिर ने वृहज्जातक में लिखा है कि ऐसे जातक की मानहानि स्त्रियों द्वारा पग-पग पर होती है। "सारावली" के अनुसार ऐसा जातक चरित्रहीन होता है

उसका चेहरा कांतिच्युत होता है, उसकी दृष्टि में स्त्रियाँ मात्र भोग की वस्तु होती हैं। अतएव वह उनका सम्मान नहीं करता है। "होरासार" में लिखा है कि ऐसा जातक अस्थिर चित्त-वृत्ति का होता है। उसका हृदय सदैव अशान्ति से भरा रहता है।

चन्द्रमा

चन्द्र के सप्तम भाव में स्थित होने पर जातक पत्नी के सम्बन्ध में भाग्यशाली होता है। पत्नी गौरवर्णसंपन्न एवं विशाल नयनों वाली होती है। उसका मुखमंडल लावण्य एवं कमनीयतायुक्त होता है। उसका स्वभाव चंचल एवं चित्त-वृत्ति चटुल होती है। वह शारीरिक सौंदर्य से समृद्ध होती है। पत्नी के रूपवती होने पर भी ऐसा जातक अपनी वासना के कारण इतर स्त्रियों में सुख एवं तृप्ति को तलाशा करता है। तथापि दाम्पत्य जीवन सुखपूर्ण होता है। मन्त्रेश्वर ने फलदीपिका में इन तथ्यों का समर्थन किया है। उनके अनुसार पत्नी अत्यन्त रूपसंपन्न होती है। पति एवं पत्नी में सामंजस्य अनुकरण की सीमा तक होता है। उनके सम्बन्ध की डोर प्रणय के धागों से शक्तिशाली बनी रहती है।

चन्द्र यदि मलिन हो तो जातक स्त्रियों के प्रति हिंसात्मक व्यवहार अपनाता है। वह वैचारिक दृष्टि से संकीर्ण होता है। उसके मन के भीतर दूसरों के प्रति ईर्ष्या की कभी न शांत होने वाली अग्नि जलती रहती है। जातक शारीरिक दृष्टि से सुन्दर होता है। उसकी वाणी मधुर होती है। उसे स्त्री वर्ग के प्रति सहज आकर्षण होता है। स्त्रियों से संबंध देर तक मधुर नहीं रहते इसलिए उनकी ओर उसे मारक भय होता है। उसके स्वभाव में अभिमान, अधार्मिकता, दुर्विनय, काम, लोभ, चाटुकारिता, ईर्ष्या-द्वेष आदि प्रवृत्तियों का बाहुल्य होता है।

प्रत्येक वस्तु के प्रति उसका दृष्टिकोण रोमानी होता है। वह कल्पनात्मक आनन्द प्राप्त करता रहता है। मितभाषण उसकी विशेषता है। अपने अन्तर्मन में गोपित तथ्यों को वह शीघ्र उजागर नहीं करता। "भृगुसूत्र" के अनुसार यदि चंद्र क्षीण हो तो विवाह जीवन के बत्तीसवें वर्ष में संपन्न होता है। चंद्र यदि पाप ग्रहों की दृष्टि से आक्रान्त हो तो स्त्री-संसर्ग के कारण किसी यौन रोग से पीड़ा प्राप्त होती है। यह व्याधि प्राय: स्थाई नहीं होती, यद्यपि जातक का वैवाहिक जीवन संतोषजनक होता है। बृहज्जातक में अंकित है कि ऐसे व्यक्ति के मन में प्यार की तृष्णा संचित रहती है।

"सारावली" के अनुसार जातक सुन्दर तो होता है, किन्तु कामुकता का उच्छल वेग व्यक्तित्व की गरिमा को खंडित करता है। चन्द्रमा यदि क्षीण हो तो जातक रोगिणी स्त्री प्राप्त करता है। उसे रुधिर संबंधी विकार से कष्ट मिलता है। चन्द्रमा यदि शक्तिशाली ग्रह के साथ हो, वृष राशि के अन्तर्गत हो, पूर्ण हो, तो जातक का एक

विवाह होता है। सप्तम स्थान का स्वामी यदि प्रबल ग्रहों के साथ हो तो जातक के एक से अधिक विवाह सम्बन्ध स्थापित होते हैं। चन्द्रमा जातक की स्त्री की प्रकृति का भी संकेत करता है। वह समराशिगत हो तो जातक की पत्नी का स्वभाव पुरुष-सहज प्रवृत्तियों की ओर नमित होता है।

मंगल

सप्तम भाव में मंगल की स्थिति को आचार्यों ने वैवाहिक जीवन के लिए अत्यन्त विरोधाभासपूर्ण बताया है। मंगल सप्तम भावगत होने से जातक शारीरिक दृष्टि से प्राय: क्षीण, रुग्ण, धनहीन; शत्रुओं से आक्रान्त, अनस्तित्वपूर्ण चिन्ताओं में लीन रहता है। ईर्ष्या और द्वेष आदि अवनतिमूलक प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं। मंगल क्रोध एवं विध्वंस को वर्धित करता है। जातक इसका वशवर्ती बनकर अपने धन और स्वास्थ्य की हानि कर डालता है। वह ऐसी स्थितियां होती हैं जिनसे बचा जा सकता है। किन्तु मंगल के द्वारा प्रभावित होने के कारण जातक का विवेक उचित एवं तत्काल निर्णय नहीं ले पाता। क्रोध की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है। इन समस्त कारणों से जातक का दाम्पत्य जीवन प्रभावित होता है। उसके सुख न्यून होते जाते हैं। जातक की पत्नी साहस के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आयामों में काफी आगे होती है'

यदि सप्तम भावस्थ मंगल ग्रहों की युति से दूषित होता दो स्त्रियों का सान्निध्य प्राप्त होता है: यदि मंगल स्वराशिगत होकर यहाँ संस्थित हो तो शीघ्र ही लघु वय के विवाह के अतिरिक्त एक और अवांछनीय स्थिति की ओर संकेत करता है। जातक की रुचि छोटी उम्र की कन्याओं में होती है, वह प्राय: उनसे दैहिक सूत्र जोड़ने के लिए व्याकुल रहता है और निश्चित रूप से आयु के किसी भाग में उसका संबंध लघु आयु की कन्या के साथ होता है। स्त्री वर्ग उसे अनादर की दृष्टि से देखता है।

मंगल यदि पाप ग्रह की राशि में हो तो जातक की पत्नी के जीवन का संकट निश्चित रूप से होता है। शुभ ग्रह के साथ मंगल स्थित हो तो जातक के जीवनकाल में ही उसकी पत्नी अपने प्राण त्यागती है। शनि मंगल के साथ हो तो जातक वेद-विरुद्ध अर्थात् निन्दनीय कार्यों को सम्पादित करने में पर्याप्त सिद्धहस्त होता है। केतु के साथ मंगल की युति जातक को वासनान्ध बनाती है, वह रजस्वला स्त्री से भोग करने में संकोच नहीं करता। मंगल यदि शत्रु ग्रह के साथ हो तो जातक की एकाधिक पत्नियां अकाल काल कवलित होती हैं। शुभ ग्रहों की दृष्टि इस कुफल से रक्षा करती है। मंगल स्वगृही (अथवा उच्च) हो तो जातक की पत्नी चंचल, मनोहरा, कुटिल हृदया और गोपनीय कार्यों की ओर प्रवृत्त रहती है, इस स्थिति में विवाह एक होता है। मंगल पापी ग्रहों से युक्त हो तो दो विवाहों का निश्चय होता है। जातक कमर की

पीड़ा से दुःखी रहता है। एक उल्लेखनीय तथ्य है कि मंगल सप्तमस्थ होकर आयु के सैंतीसवें वर्ष में जातक का नाश करता है।

मंगल सप्तम भाव में जातक के यौन व्यवहार को प्रेरित व प्रभावित करता है। "भृगुसूत्र" के अनुसार यदि सप्तमभावस्थ मंगल पर शनि की दृष्टि हो तो वासना के आवेग में जातक स्त्री के यौनांग का स्पर्श अपने मुंह से करता है। मंगल व राहु सह-स्थिति में हो तो अपने से निम्न एवं अपने आश्रय में रहने वाली सेविका अथवा दासी के साथ जातक के यौन संबंध होते हैं। "सारावली", "वृहज्जातक", "भृगुसूत्र", "वृहत् पाराशर" आदि समस्त ग्रंथों में इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि सप्तम भावस्थ मंगल जातक की पत्नी के प्राण समय से पूर्व ही ग्रहण कर लेता है। जातक को पत्नीवियोग का दारुण कष्ट सहन करना पड़ता है। इस दुखपूर्ण स्थिति से दो दशाओं में मुक्ति मिलती है :—

१—यदि मंगल सप्तम भाव में स्वराशिगत हो अथवा उच्च राशिगत हो तो पत्नी की हानि न होकर उससे स्वास्थ्य का हितसाधन होता है। यह योग दाम्पत्य जीवन के सुख को ललित बनाता है।

२—यदि सप्तम भाव एवं मंगल पर शुभ ग्रह वृहस्पति की दृष्टि हो तो जातक को पत्नी का आयुष्य का पूर्ण सान्निध्य उपलब्ध होता है।

बुध

बुध के सप्तम भाव में स्थित होने को आचार्यों ने जातक के लिए हितकर बतलाया है। जातक की पत्नी प्रखर बुद्धिमती एवं अध्यवसायी होती है। उसका सम्बन्ध आभिजात्य कुल से होता है। दाम्पत्य में उसे पुरातन भारतीय जीवनादर्शों पर अटूट श्रद्धा होती है। वह पति को सर्वसमर्थ मानकर और जानकर उसकी अधीनस्थता स्वीकार करती है। पति की आज्ञानुवर्तिनी होती है, किन्तु वाणी का संयम प्रायः नहीं होता। अर्थात् ऐसे जातक की पत्नी बहुधा वाचाल होती है। ऐसा जातक राज्य द्वारा सम्मानित होता है और उसकी यशःसुरभि सुदूर क्षेत्रों तक महकती है।

"भृगुसूत्र" में उल्लिखित है कि यदि बुध मंगल के साथ सप्तम भावस्थ हो तो दम्पति में से किसी एक को भीषण (मारक) जीवन कष्ट होता है। इस योग के फलतः त्वचा से सम्बद्ध कोई दारुण व्याधि होती है। यदि बुध के साथ "शनि-राहु-केतु" में से कोई एक ग्रह संस्थित हो तो पति या पत्नी के प्राणों का संकट उपस्थित होता है।

सप्तम भावस्थ बुध के साथ शुक्र अथवा बृहस्पति की सहभावस्थिति को आचार्यों ने अत्यन्त शुभ एवं मांगलिक सिद्ध किया है। उनके मतानुसार इस संयोग के परिणामस्वरूप जातक की पत्नी उच्च उदात्त गरिमा को प्रतिमूर्ति होती है। वह

अत्यन्त अर्हतासम्पन्न और ललाम होती है। सौन्दर्य के प्रतिमान उसे देखकर निर्धारित किये जाते हैं/जा सकते हैं। पत्नी की सौन्दर्यवत्ता जातक के जीवन को स्पृहणीय बना देती है। पत्नी अपनी योग्यताओं से जातक को सफलता के शिखर पर पहुँचने के लिए प्राण शक्ति प्रदान करती है।

बुध मिथुन या कन्या राशि में निर्धारित होकर सप्तम भावस्थ हो तो भद्रयोग निश्चित होता है। यह योग जातक को विलक्षण व्यक्तित्व प्रदान करता है। जातक प्रचुर शक्तिसम्पन्न होता है। उसका चेहरा ओज तेज संयुक्त व्याघ्र की तरह होता है। मांसल वक्षप्रदेश एवं सम्पूर्ण शरीर सुगठित होता है। वह सुदीर्घ आयुष्य का उपभोग करता है। अपने परिजन पुरजन की सेवा सहायता को अपना धर्म समझता है। मानवता की महिमा से उद्वेलित होता है। आकर्षक वस्त्रों को धारण करना उसे रुचता है। ऐसे जातक का जीवन सौभाग्य की आत्मकथा होता है—सफलता की सिद्धि अत्यन्त अवधि में हो जाने के कारण ऐसा निश्चितरूपेण कहा जा सकता है। ऐसे जातक की पत्नी पर लक्ष्मी एवं सरस्वती की संयुक्त कृपा होती है। किन्तु आवश्यक नहीं कि सौन्दर्य की देवी रति भी उस पर पूर्ण कृपालु हों। उसका वैदुष्य के अनुपात में कम सुन्दर होना अनुभवसिद्ध है। यह समस्त कथन सत्य की कसौटी पर तभी खरे उतरते हैं जब सप्तम भावस्थ बुध शुभ ग्रह द्वारा दृष्ट या प्रभावित हो।

यदि बुध पाप ग्रहों के प्रभाव क्षेत्र में हो तो पत्नी सामान्य (अथवा निम्न) कुल से सम्बन्धित होती है। उसका व्यवहार असहनशीलता की सीमा तक कटु एवं शुष्क होता है।

बुध नपुंसक माना जाता है। अतएव पुरुष कुण्डली के सप्तम भाव में संस्थित होने पर यौनिक दुर्बलता का संचार जातक के व्यक्तित्व में होता है। जातक कामशक्ति का धनी नहीं होता। यौन सम्बन्धों के प्रति उसमें सहज अरुचि होती है। पत्नी का लावण्य ही उसके यौन व्यवहार को उत्तेजित करता है, अन्यथा वह प्रायः इस ओर से उदासीन रहता है। पुरुष जातक के जन्मांग में सप्तम भावस्थ बुध अधिकांशतः ऐसा फल प्रदान करता है।

स्त्री की कुण्डली में बुध सप्तम भाव में स्थित होकर पापी ग्रहों से युक्त, दृष्ट अथवा प्रभावित हो तो पति अकाल काल कवलित होता है। बुध की यह दशा पत्नी को सौन्दर्य से च्युत करती है। उसे क्षय का असाध्य रोग होता है।

सतम भाव में स्थित बुध के विषय में एक अनुभवसिद्ध निश्चय है कि या तो आयु के चौबीसवें वर्ष में विवाह सम्पन्न होता है अथवा उत्तम वाहन की सम्प्राप्ति होती है।

बृहस्पति

जागतिक दृष्टिकोण से (जो सौभाग्य, वैभव, सुख, कीर्ति पर आधारित है) ऐसा स्पृहणीय होता है जिसके जन्मांग के सप्तम भाव में अकलुष बृहस्पति संस्थित हो ऐसा

जातक मृदुभाषी, ऐश्वर्यवान, शालीन, सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित होता है। उसका बाह्याभ्यंतर व्यक्तित्व चित्ताकर्षक होता है। वह सुपुत्र होता है। अपने पिता से अधिक उन्नति करता है। उसकी प्रवृत्ति महत्त्वाकांक्षी होती है तथा भाग्यस्वरूप जीवन में महत्त्वपूर्ण पद का स्वामी बनता है। अपनी चिन्ता से अधिक दूसरों की भावनाओं का सम्मान करता है। उनके प्रति पूर्ण सजग रहता है।

जातक की पत्नी सौन्दर्य एवं चरित्र की प्रतिमा होती है, किन्तु वह स्वयं चरित्र की पवित्रता को उतनी गम्भीरता से नहीं लेता। चरित्र के विवादास्पद पक्ष की विवेचना न पड़े (यदि) तो ऐसा जातक सहृदय एवं कुशल गृहस्थ सिद्ध होता है। पत्नी पक्ष से जातक को स्थाई सम्पत्ति प्राप्त होती है। उसके पुत्र सुन्दर एवं योग्य होते हैं।

बृहस्पति उच्च राशि या स्वराशिगत होकर सप्तम भावस्थ हो तो एक पत्नी व्रत के भारतीय दाम्पत्य सिद्धान्त में विश्वास रखता है। धनी ससुराल से प्रचुर धन उपलब्ध होता है। जीवन पर्यन्त वह सुखों का उपभोग करता है। आयु के ३४ वें वर्ष में उसे विशिष्ट स्नेह-सम्मान-सुख वैभव की प्राप्ति होती है।

बृहस्पति सप्तम भावस्थिति में हो और सप्तमेश बलविहीन हो अथवा सप्तमेश पापी ग्रहों से संयुक्त हो अथवा बृहस्पति क्रूर ग्रहों से आक्रान्त हो तो जातक की सौन्दर्य चेतना कामुकता की तरल अग्नि में परिवर्तित हो जाती है। परिणामस्वरूप वह अपनी पत्नी से सन्तुष्ट नहीं होता। अन्य स्त्रियों से दैहिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

बृहस्पति मकर लग्नके सन्दर्भ में सप्तमस्थ होने पर उच्च राशि का होता है, किन्तु द्वादश एवं तृतीय भाव का स्वामित्व प्राप्त होने पर उस स्थिति में वह प्रत्यक्ष रूप से पापी परिलक्षित होता है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य कालिदास ने "उत्तर कालामृत" में चतुर्थ खण्ड में लिखा है कि तृतीय एवं द्वादश भावों का स्वामी होने के बाद भी सप्तम भावस्थ बृहस्पति जातक को शुभ फल प्रदान करेगा। इस धारणा का तर्कसंगत कारण है सप्तभावस्थ बृहस्पति जब स्व अथवा उच्चराशिगत होगा तो हंस योग का संयोग स्वतः घटित हो जायेगा। इस योग में उत्पन्न जातक के चरण में कमल, मत्स्य, अंकुश अथवा शंख आदि के ऐश्वर्यसूचक चिह्न होते हैं। उसकी आकृति-प्रकृति सौन्दर्य सम्पन्न होती है। वह अत्यन्त लोकप्रिय और चुम्बकीय व्यक्तित्व का स्वामी होता है। मन निर्विकार एवं निष्कलुष होता है। व्यक्ति उससे अतिशीघ्र प्रभावित होते हैं। धर्म के उत्कृष्ट रूप के प्रति उसके मन में अकूत आस्था होती है। उसका सौभाग्य अपने पिता से अधिक होता है। औदार्य उसकी स्वभावगत विशेषता होती है। जातक की पत्नी अपनी दूरदर्शिता के कारण बहुधा जातक का मार्गदर्शन करती है। सत्य अर्थों में वह अर्द्धांगिनी सिद्ध होती है। वह विदुषी एवं उच्च विद्यावती होती है। यदि किसी तरह का दुष्ट प्रभाव न हो तो जातक चरित्रवान होता है।

शुक्र

विवाह का कारक ग्रह शुक्र है। सप्तम भाव से विवाह और तज्जन्य पक्षों पर विचार किया जाता है। ज्योतिष का सामान्य एवं सर्वविदित सिद्धान्त है कि किसी भाव का कारक ग्रह यदि उसी भाव के अन्तर्गत हो तो स्थिति को सामान्य नहीं रहने देता। इसलिए सप्तमभावस्थ शुक्र परिणय अथवा दाम्पत्य जीवन में कुछ अनियमितता उत्पन्न करता है। ऐसे जातक का विवाह प्रायः चर्चा का विषय बनता है। वह असामान्य ढंग से सम्पन्न होता है। जातक की पत्नी अत्यन्त रूपवती एवं गुणवती होती है। यदि शुक्र पापी ग्रहों की प्रभावसीमा में न हो तो दाम्पत्य जीवन आनन्द प्रमोद तथा प्रीति-प्रतीति के साथ व्यतीत होता है।

शुक्र सप्तम भाव में स्थित होकर जातक की कामोत्तेजना को सम्वर्द्धित करता है। वासना का चिन्तन उसका प्रिय विषय होता है। मानसिक एवं शारीरिक दोनों रूपों से काम की कुहेलिका में खोया रहता है। आवश्यकता और क्षमता से अधिक वासना-रत रहने के कारण यौनशक्ति का ह्रास होता है। शुक्र यदि पापी ग्रहों के प्रभाव में हो तो किसी यौन रोग के कारण कामबल क्षीण पड़ता जाता है। शुक्र संयम का शत्रु बनकर सप्तम भाव में स्थित होता है। असामान्य रतिसुख आकांक्षी होने के कारण रमणियों के साथ शरीर का आदान-प्रदान करता है। इस प्रक्रिया में उसे कभी संतुष्टि नहीं मिलती।

जातक सौन्दर्य के साथ सुरा के सेवन में भी दक्ष होता है। अपने व्यवहार एवं अपने व्यक्तित्व की अद्भुत अभिव्यक्तियों के कारण आप-पास के व्यक्तियों को शीघ्र प्रभावित कर लेता है।

ऐसा जातक स्त्रियों की सहभागिता में कोई कार्य करे तो आशातीत सफलता प्राप्त करता है।

शुक्र सप्तमभावस्थ होकर यदि पापी ग्रहों द्वारा प्रभावित हो तो पत्नी से पार्थक्य अथवा पत्नी की मृत्यु का प्रबल संकेत मिलता है—विशेषकर यदि सप्तमभावस्थ शुक्र की राशि वृश्चिक हो।

ऐसा शुक्र यदि नीचराशिगत हो अथवा क्रूरकर्मा ग्रहों से युक्त हो तो पत्नी की मृत्यु निश्चित रूप से होती है। जातक पुनर्विवाह करता है। पुनर्विवाहों की संख्या इस बात पर निर्भर होती है कि सप्तमभावस्थ शुक्र कितने पापी ग्रहों से युक्त है।

यदि शुक्र सप्तम भाव में अपनी उच्च राशि में शुभ ग्रहों से प्रभावित हो तो जातक का पत्नी पक्ष प्रचुर प्रबल होता है। वह ससुराल के कारण वैभव व सम्पन्नता प्राप्त करता है। सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सांसारिक भोग उसे पुष्कल मात्रा में उपलब्ध होते हैं। उसका जीवन सौन्दर्य के आलिंगन में घिरा रहता है। सुन्दर एवं कोमलांगी

स्त्रियों का निकट सम्पर्क उसके जीवन की उल्लेखनीय विशेषता होती है। उच्च राशि के शुक्र के सप्तमस्थ होने के कारण मालव्य योग प्रकाश में आता है, जिससे जातक के जीवन में भोगों का बाहुल्य होता है। समृद्धिशाली जीवनसंगिनी एवं सुयोग्य संतानों के साथ आनन्दपूर्वक जीवनयापन करता है। उसका शरीर क्षमतायुक्त, सुन्दर एवं उसके पास मूल्यवान वाहन होता है। उसकी शिक्षा उच्च एवं कीर्ति स्थाई होती है तथा दूरगामी भी। स्त्रियों के सम्बन्ध में एक तथ्य है कि जातक अन्य स्त्रियों का ध्यान प्रायः अपनी पत्नी से भी अधिक रखता है। उन स्त्रियों की रुचि/अरुचि उसकी चिन्ता का विषय बन जाती है। यद्यपि इसका वैवाहिक जीवन पर और सुख शांति पर कोई घातक प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि जातक अत्यन्त चतुराई से इन सम्बन्धों की व्याकरण को पढ़ता-समझता और प्रयोग में लाता है।

शुक्र के साथ शुभ ग्रह बृहस्पति की सप्तम भाव में युति इन मांगलिक परिणामों में परिवर्द्धन करती है। इस अवस्था में जातक एवं उसकी पत्नी दोनों चरित्र के सुन्दर उदाहरण होते हैं। पत्नी का सौन्दर्य असाधारण एवं अनिन्दित होता है। वैवाहिक जीवन आनन्दमय होता है। यह युति समस्त आचार्यों द्वारा उत्तम एवं निर्दोष घोषित की गई है।

"वराहमिहिर", "मन्त्रेश्वर", "गर्ग" आदि ने सप्तम भाव में शुक्र की संस्थिति को व्याख्यायित करते हुए मत संरक्षित किया है कि ऐसा जातक अन्य स्त्रियों से मानसिक-वाचिक और कायिक स्नेह सम्बन्ध रखता है। अनुभव भी इस सत्य को प्रमाणित करता है। यद्यपि सारावली इस विचार का विरोध करते हुए विपरीत स्थापना करती है।

शुक्र के साथ चन्द्रमा सप्तमभावस्थ हो और वह संयोग शनि अथवा राहु आदि के प्रभाव में न आता हो तो उस जातक के भाग्य से किसे ईर्ष्या नहीं होगी क्योंकि इस प्रकार के जातक की पत्नी का लावण्य अनुपमेय और अननुमेय होता है।

सप्तमभावस्थ शुक्र अत्यन्त लघुवय से ही अपने प्रभाव की राशियाँ विकीर्ण करने लगता है। जातक को आयु के १४वें या १७वें वर्ष किसी स्त्री का सान्निध्य सुख प्राप्त होता है।

शुक्र के साथ कुछ ग्रहों की सहस्थिति या उस पर कुछ ग्रहों के प्रभाव को विद्वानों ने अशिव एवं अनिष्टकर बताया है। शुक्र और शनि की युति जातक एवं उसकी पत्नी दोनों को व्यभिचार का मार्ग दिखाती हैं, दोनों कलंकित चरित्र का बोझ आजीवन वहन करते हैं। शुक्र-मंगल, शुक्र-राहु अथवा शुक्र-केतु की युति (सप्तम भाव में) घोर अशुभ होती है, जिसे किसी भी दशा में उचित नहीं ठहराया जा सकता। इसके फलस्वरूप कलह, संदेह, चरित्र-हीनता का विष पूरे दाम्पत्य जीवन से सुख-संतोष को मार

डालता है। ऐसे नारकीय जीवन की कल्पना भी व्यक्ति को कंपित कर देती है। विघटित दाम्पत्य के उदाहरण नित्य हमारे जीवन में मिलते हैं। जिनमें ऐसे विध्वंसकारी योगों से आक्रान्त जातक भी होते हैं।

शनि

जन्मांग के सप्तम भाव में शनि की स्थिति जातक के जीवन को रहस्यपूर्ण बनाती है।

यदि शनि स्व अथवा उच्चराशिगत हो तो विवाह उचित वय में होता है अन्यथा जातक का विवाह अत्यन्त विलम्ब से होता है। जातक अपनी पत्नी के अधिकार, अनुशासन को स्वीकार करता है। यद्यपि वह पर्याप्त चतुर, धूर्त एवं स्वार्थसाधक होता है। पत्नी के प्रति उसकी विनम्रता उसके मायावी जीवन का एक छल मात्र होती है। विधवा अथवा स्वपति से संवंध विच्छेद कर लेने वाली स्त्रियों के साथ उसके प्रगाढ़ यौन सम्बन्ध होते हैं। अपनी चाटुकार वाणी एवं धूर्त व्यवहार-पद्धति के कारण उसे राजनीति में पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। ऐसा व्यक्ति विदेशों में ख्याति एवं आदर अर्जित करता है।

जातक की पत्नी प्रायः क्षीण शरीर की होती है। वह आयु में अधिक होती है या अपनी शरीर संरचना के कारण ऐसी आभासित होती है। शरीर पर जलने या कटने के चिह्न होते हैं। किसी दृष्टिकोण से उसे सुन्दरी नहीं कहा जा सकता। रूप-सौंदर्य की दृष्टि से उसे सामान्य कहा जा सकता है।

प्राय; शनि सप्तमभावस्थ होकर एकाधिक विवाह सम्पन्न कराता है। शनि यदि केतु के साथ संस्थित हो तो अपनी आयु से अधिक विवाहित स्त्रियों के साथ जातक के दैहिक संवंध होते हैं। मंगल के साथ शनि की स्थिति जातक के विवेक का वरण करती है। वह कामावेश में स्त्री के जननेन्द्रिय का चुंवन अपने मुख से करता है। शुक्र के साथ शनि की सहभागिता जातक को वेश्यागामी व प्रबल कामासक्त वनाती है। शुक्र और राहु की युति अत्यन्त अवांछनीय होती है। ऐसे जातक का दाम्पत्य जीवन दुखी, हताश व कुंठाग्रस्त होता है। "बृहज्जातक" के मतानुसार ऐसे जातक का अपमान स्त्रीवर्ग द्वारा होता है। "फलदीपिका" में उल्लिखित है कि सप्तमभावस्थ शनि जातक को चरित्रच्युत स्त्रियों के साथ देह-सम्बन्ध के लिए प्रेरित करता है, निरुद्देश्य यात्रायें कराता है एवं उसका समस्त सुख बलात् हर लेता है। हतभाग्य सेऐ जातक का अपनी पत्नी से समंजन नहीं होता। पत्नी का संसर्ग भी उसे अल्प समय तक ही प्राप्त होता है।

सप्तमभावस्थ शनि से यदि विवाह में विलम्ब का आभास हो तो प्रायः आयु के सैंतीसवें वर्ष में वह संस्कार सम्पन्न होता है। ऐसा व्यक्ति स्त्री के प्रबि कुंठाओं का

शिकार होता है। उनके प्रति मादामूलक दृष्टिकोण रखता है। उनका सम्मान नहीं करता। शनि के साथ यदि शुक्र भी हो तो पत्नी निश्चित रूप से कुपथगामिनी होती है।

सप्तमभाव में शनि का निवास किसी प्रकार शुभ या सुखद नहीं कहा जा सकता। उस पर यदि शनि के साथ राहु, मंगल, केतु, सूर्य जैसे ग्रहों का संयोग हो तो जातक का जीवन स्वत: यंत्रणा के चक्रव्यूह में पहुँच जाता है।

सूर्य शनि के साथ स्थित होकर दम्पति में वैचारिक तादात्म्य स्थापित नहीं होने देता। अतएव प्रत्येक बात पर विवाद एवं कलह की स्थिति उत्पन्न होती है, किन्तु आश्चर्य की बात है कि ऐसे दम्पति बाहर से पर्याप्त अनुशासित होते हैं।

मात्र एक योग शनि को सफलतादायक सिद्ध करता है—यदि तुला, मकर, या कुम्भ राशि के अन्तर्गत होता हुआ शनि सप्तमभावस्थ हो तो "शश" योग होता है। इस योग का जातक जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण और उच्चपद को प्राप्त करता है। यद्यपि चरित्र की उज्वलता के समक्ष सर्वदा प्रश्न चिह्न आकर्षित रहता है।

सप्तमभावस्थ शनि जातक के शरीर के अधोभाग को प्राय: रोगग्रस्त रखता है।

राहु

सप्तम भाव में राहु का निवास सुखद नहीं होता। जातक जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग अथवा प्रमेह से आजीवन पीड़ित रहता है। उसके दो विवाह होते हैं। वासना उसे भटकाती है। विधवाओं से उसका यौन सम्बन्ध होता है। पत्नी को ऋतुकाल में रक्तस्राव सामान्य से अधिक होता है। द्वितीय पत्नी "लीवर" "पीलिया" जैसे रोगों से घिरी रहती है।

पत्नी के सम्बन्ध में दुर्भाग्यशाली स्थिति होती है। पत्नी कलह एवं प्रचण्ड क्रोध की मूर्ति होती है। अतिशय व्ययशील होने के कारण सदैव आर्थिक संकट उत्पन्न करती रहती है। स्त्री से मतैक्य नहीं होता।

राहु पापी ग्रहों के साथ हो तो पत्नी अनेक शारीरिक रोगों से ग्रस्त रहती है। आयु के सैंतीसवें वर्ष में पत्नी को कष्ट होता है। इन अशुभ ग्रहों में न्यूनता मात्र एक स्थिति में आती है—यदि राहु के साथ शुभ ग्रह हो।

"फलदीपिका" के अनुसार जातक धन-मान-सुख स्त्री के माध्यम से ही खोता है। स्त्रियों के कारण उसका प्रचुर धन अपव्ययित हो जाता है।

यदि योग शुभ हो तो जातक पत्नी की मृत्यु के उपरान्त अपेक्षाकृत शान्त जीवन व्यतीत करता है।

राहु जातक की प्रवृत्ति निरंकुश एवं स्वच्छन्दतावादी बनाता है। यदि शनि या

सूर्य की सही स्थिति उसे प्राप्त हो जाये। इस दशा में व्यक्ति पृथकतावादी हो जाता है। दम्पति बिना किसी विशेष कारण के सामान्य सी बात पर पृथक हो जाते हैं।

यदि राहु बृहस्पति से दृष्ट, युक्त या प्रभावित हो तो राहु के द्वारा उत्पन्न दोष कुछ कम प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। इस स्थिति में विवाह केवल एक होता है। दाम्पत्य-जीवन साधारणतया आनन्दित रहता है। जातक पत्नी की बात मानता है। किन्तु उसके अग्रवादी स्वभाव का दमन सम्पूर्ण रूप से नहीं होता है। उसे गुप्त रोग जीवन-पर्यन्त दुखी एवं पीड़ित करते हैं।

केतु

केतु राहु का प्रायः समानधर्मा ग्रह है। दाम्पत्य जीवन को विषपूर्ण बनाने के सन्दर्भ में सप्तमभावस्थ केतु दाम्पत्य जीवन को बाह्य शत्रुओं से आक्रान्त रखता है। इस कारण जीवन की सहज शांति लुट जाती है। पत्नी का स्वभाव अविवेकपूर्ण, कलहप्रिय और क्रोधी होता है। शत्रुओं के साथ सक्रिय संघर्ष, धन की पर्याप्त हानि करता है। जातक को जल से भय होता है। उसकी प्रवृत्ति भ्रमणशील होती है। स्त्री पक्ष से सर्वदा चिन्ता बनी रहती है। चित्त किसी विषय पर एकाग्र नहीं हो पाता। सप्तमभावस्थ केतु आयु के ३७वें वर्ष में पत्नी को कष्ट पहुँचाता है।

केतु के साथ मंगल या शनि हो तो पत्नी आत्महत्या कर लेती है। अपने जीवन काल में उसे जल से पर्याप्त भय होता है। कोई यात्रा प्रायः मंगलमय नहीं होती। किसी न किसी प्रकार की अनिष्टकारक संभावना सदैव बनी रहती है।

पत्नी रुग्ण रहती है। अस्वास्थ्य उसकी मानसिक शांति का सत्यानाश कर डालता है। अनदेखा कर जाने वाली बातों पर भी उसे घोर क्रोध आता है। शरीर में फोड़े-फुंसियाँ प्रायः निकलते रहते हैं। त्वचा सम्बन्धी विकार रहते हैं।

स्त्री के सन्दर्भ में सप्तमभावस्थ केतु—यदि उसकी राशि वृश्चिक हो—मासिक धर्म के समय रक्तस्राव में भीषण विकृतियाँ उत्पन्न करता है। यह स्थिति यदि पापी ग्रहों से प्रभावित हो या दृष्ट हो तो स्थिति और भी भयावह और दुखद हो जाती है। इस प्रकार का अत्यन्त दूषित केतु स्त्री के गर्भाशय में ट्यूमर बनने अथवा होने का निश्चित संकेत प्रदान करता है। यदि इस प्रकार के केतु पर शनि अथवा सूर्य का पर्याप्त प्रभाव हो तो गर्भाशय निकालना पड़ता है।

इस प्रकार केतु किसी भी स्थिति में लाभप्रद नहीं कहा जा सकता। जातक के दाम्पत्य जीवन को नष्ट करने में सारी शक्ति लगा देता है। सप्तम भावस्थ केतु किसी आचार्य की दृष्टि में शुभ नहीं होता।

—:०:—

नवम अध्याय

नवग्रह शान्ति और मन्त्र

सृष्टि का प्रत्येक अणु सूर्यचन्द्रादि नवग्रहों के भूसंचालन द्वारा अनुशासित है। चेतन पदार्थ दोनों ग्रहों की संचालन शक्ति की परिधि में नियमित हैं। वर्षों पूर्व भारतीय ऋषियों ने अतीन्द्रिय शक्ति विज्ञान के माध्यम से ग्रहों के रूप-स्वरूप, उनकी गति-शक्ति आदि के सन्दर्भ में जो तत्त्वपूर्ण तथ्य विभाषित किये थे, आधुनिक विज्ञान क्रमशः उन्हें सिद्ध करता जा रहा है।

नवग्रह समुच्चय का परम वैज्ञानिक संयोजन ज्योतिष की जन्मांग व्यवस्था है। जीवन में शिव और कल्याण की प्राप्ति के लिए मनुष्य ग्रहों पर आत्यन्तिक रूप से आश्रित है। ग्रहों की सन्धि-विग्रह से उत्पन्न स्थितियों के स्वानुकूल अनुग्रह के सन्दर्भ में अग्रांकित पंक्तियों में कुछ अनुभव सिद्ध मंत्र सविधि उद्धृत हैं।

सूर्य के मन्त्र—

वैदिक सूर्य मन्त्र जप प्रयोग :

विनियोग—

आकृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूपाङ्गिरस ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्य-प्रीतये जपे विनियोगः।

मन्त्र—

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः ॐ भूर्भुवः स्वः आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः ह्रौं ह्रीं ह्रां ॐ सूर्याय नमः।

ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्।

विनियोग—

अस्य श्री सौरमन्त्रस्य देवभागऋषिः, गायत्री छन्दः,
सूर्यो देवता तत्प्रसादसिद्धचर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—

देवभागऋषये नमः (शिरसि) गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे) सूर्यदेवतायै नमः (हृदये)। विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे) "ॐ" मन्त्र द्वारा कर एवं हृदयादि-न्यास करें।

ध्यान—

धृतपद्मद्वयं भानुं तेजोमण्डलमध्यगम् ।
सर्वाधिव्याधिशमनं छायाश्लिष्टतनुं भजे ।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः ।

इस मन्त्र का ७००० जप करें तथा रक्त पुष्प और रक्त चंदन से सूर्यनारायण की प्रातः पूजा कर अर्घ्य देवें ।

पौराणिक मन्त्र

जपाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ।।

चन्द्रमा के मन्त्र—

वैदिक मन्त्र का प्रयोग :

विनियोग—

इममित्यस्य देवव्रात ऋषिः अत्यष्टिश्छन्दः चन्द्रो देवता चन्द्रप्रीतये जपे विनियोगः ।

मन्त्र—

ॐ श्राँ श्रीं श्रौं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ इमन्देवा असपत्नं सुवध्वम्महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा । ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः श्रौं श्रीं श्राँ ॐ चन्द्रमसे नमः ।

ॐ श्राँ श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः ।

इस मन्त्र का ११००० जप करें तथा श्वेत पुष्प और श्वेत चन्दन से संध्या के समय पूजा कर अर्घ्य देवें ।

पौराणिक मन्त्र

दधिशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम् ।
नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम् ।।

मंगल के मन्त्र—

वैदिक मंगलमन्त्र जप प्रयोग :

विनियोग—

अग्निमूर्द्धेति मन्त्रस्य विरूपाक्ष ऋषिः गायत्री छन्दः भौमो देवता मंगल-प्रीतये जपे विनियोगः ।

मन्त्र—

ॐ क्राँ क्रीं क्रौं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ अग्निमूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति। ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः क्रौं क्रीं क्रां ॐ भौमाय नमः।

ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः।

इस मन्त्र का १०,००० जप मध्याह्न में करें तथा रक्त चन्दन और रक्त पुष्प (लालकनेर) से मंगल की पूजा करें।

पौराणिक मन्त्र

धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं च मंगलं प्रणमाम्यहम्॥

बुध के मन्त्र—

वैदिक बुध मन्त्र जप प्रयोग :

विनियोग—

उद्बुध्यस्वेति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः बुधो देवता बुध-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

मन्त्र—

ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं भूर्भुवः स्वः ॐ उद्बुद्धयस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथा मयंच। अस्मिन्त्सधस्थे यद्धयुत्तरस्मिन् विश्वदेवा यजमानश्च सीदत ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः ब्रौं ब्रीं ब्रां ॐ बुधाय नमः।

ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः।

इस मन्त्र का ९,००० जप करें तथा वहुरंगी पुष्पों से बुध की पूजा करें।

पौराणिक मन्त्र—

प्रियङ्गुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम्॥

बृहस्पति का मंत्र—

वैदिक बृहस्पति मंत्र जप प्रयोग :

विनियोग—

बृहस्पते इति मंत्रस्य गृत्समद ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः बृहस्पतिर्देवता बृहस्पतिप्रीतये जपे विनियोगः॥

मंत्र—

ॐ ज्राँ ज्रीं ज्रौं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ बृहस्पते अतियदर्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः ज्रौं ज्रीं ज्रां ॐ बृहस्पतये नमः।

ॐ ज्रां ज्रीं ज्रौं सः गुरवे नमः।

इस मन्त्र का १९००० जप करें तथा पीले फूल और केसर के चन्दन से गुरु की पूजा करें।

पौराणिक मन्त्र—

देवानां च ऋषीणां च गुरुं कांचनसन्निभम्।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्॥

शुक्र के मंत्र—

१—वैदिक शुक्र मंत्र जप प्रयोग :

विनियोग—

अन्नात् परिस्रुत इति मंत्रस्य अग्निसरस्वतीन्द्रा ऋषयोऽतिजगती छन्दः शुक्रो देवता शुक्रप्रीतये जपे विनियोगः।

मन्त्र—

ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ अन्नात् परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिवत् क्षत्रम्पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतम्मधु। ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः द्रौं द्रीं द्रां ॐ शुक्राय नमः।

ॐ द्रां द्री द्रौं सः शुक्राय नमः।

इस मंत्र से १६००० जप करें तथा श्वेत चन्दन और श्वेत पुष्प से शुक्र की पूजा करें।

२—पौराणिक मन्त्र :

हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्॥

शनि के मंत्र—

नवग्रहों में वर्गीकृत पापीग्रहों में शनि का स्थान अत्यन्त विचारणीय है, शनि से प्रभावित जातकों को प्रतिकूल परिस्थितियों से उत्तीर्ण करने के लिए कुछ मंत्रों और प्रयोगों का उल्लेख प्रस्तुत है।

१—वैदिक शनि मंत्र जप प्रयोग :

विनियोग—

शन्नोदेवीरिति मंत्रस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः गायत्री छन्दः आपो देवता शनैश्चरप्रीतये जपे विनियोगः ।

मन्त्र—

ॐ खां खीं खौं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः । ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः खौं खीं खां ॐ शनैश्चराय नमः ।

२—ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः ।

३—ॐ खां खीं खौं सः शनये नमः ।

इनमें से किसी एक मंत्र का २३,००० जप करें तथा नीले पुष्प और चन्दन से शनि की पूजा करें । पूजा के समय तेल का दीपक होना चाहिए ।

४—पौराणिक मंत्र :

ॐ नीलांजनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम् ।
छायामार्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम् ॥

५—शनि स्तुति :—

कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः ।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः ॥

एतानि शनि-नामानि जपेदश्वत्थसन्निधौ ।
शनैश्चरकृता पीडा न कदाचिद् भविष्यति ॥

६—शनिपत्नी-नामस्तुति :—

ध्वजिनी धामिनी चैव कंगाली कलहप्रिया ।
कण्टकी कलही चाथ तुरंगी महिषी अजा ॥

शनेर्नामानि पत्नीनामेतानि संजपन् पुमान् ।
दुःखानि नाशयेन्नित्यं सौभाग्यमेधते सुखम् ॥

राहु के मन्त्र :—

१—वैदिक राहु मन्त्र जप प्रयोग :

विनियोग—

कयानश्चित्र इति मंत्रस्य वामदेव ऋषिः गायत्रीछन्दः राहुर्देवता राहुप्रीतये जपे विनियोगः ।

मन्त्र—

ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता। ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः भ्रौं भ्रीं भ्रां ॐ राहवे नमः।

२—ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः।

इस मंत्र का १८,००० जप करें तथा यथा सम्भव रात्रि के समय नीले रंग के पुष्प एवं चन्दन से राहु की पूजा करें।

३—पराणिक मन्त्र :—

ॐ अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम्।
सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम्॥

केतु के मन्त्र :—

१—वैदिक केतु मंत्र जप प्रयोग : —

विनियोग—

केतुं कृण्वन्निति मंत्रस्य मधुच्छन्दा ऋषिः गायत्रीछन्दः केतवो देवताः केतुप्रीतये जपे विनियोगः।

मन्त्र—

ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः भूर्भुवः स्वः ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्या अपेशिरे। समुपद्भिरजायथाः। ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः प्रौं प्रीं प्रां ॐ केतवे नमः।

२—ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः केतवे नमः।

इस मंत्र का १७००० जप करें तथा धूम्रवर्ण के पुष्प और चन्दन से केतु की पूजा करें।

३—पौराणिक मन्त्र—

ॐ पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम्।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्॥

—: ० :—

समाहार

वैवाहिक विलम्ब के ज्योतिषीय हेतु एवं उसके बहुआयामी परिहार-परिकर के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विश्लेपण द्वारा अन्तर्विरोधों और प्रस्फुटित सूत्रों से आक्रान्त यह प्रासंगिक विषय सार्थक विन्दु का स्पर्श कर रहा है।

सतर्क अध्ययन के माध्यम से परिणय के अवरोध स्पष्ट हो जाने के पश्चात् वेदविहित, शास्त्रगर्भित, आचार्य-अभिशंसित मंत्रों-स्तोत्रों, आदि के विधिसम्मत प्रयोगों द्वारा उनका परिशमन प्रामाणिक रूप से संभव है।

मन्त्र मात्र शब्द-समूह नहीं है, उसके बाह्याभ्यंतर व्यक्तित्व के अभिज्ञान से साधना-पथ प्रशस्त होता है, साधना के सूक्ष्म और स्थूल स्वरूप एवं उसकी समग्र विधि साधक को सिद्धि सुलभ कराती है।

जन्मांग में मंगल की वक्र एवं सदोष संस्थिति की अदोष व्याख्या अपरिहार्य है. अन्यथा मंगल-दोष का भय तथा उसका प्रभाव दाम्पत्य जीवन में विघटन के शिलालेख उत्कीर्ण करता रहता है।

व्रत अनादि काल से आस्था के संवाहक रहे हैं, वैवाहिक विलम्ब के अनुकूलन की दिशा में व्रत के कल्पनातीत योगदान को सहज कल्पित किया जा सकता है।

परिणयोपरान्त दाम्पत्य-अजिर में उतरने वाले प्रत्येक असामंजस्य, अविश्वास, असंतोष के अवांछित संकेत को समुचित मंत्रों और प्रयोगों द्वारा तिरस्कृत, निरादृत और बहिष्कृत किया जा सकता है।

ज्ञान के शैवाल बहुल तड़ाग को अध्ययन द्वारा निष्कलुष बनाकर परम्परा को वर्तमान का अलंकार बनाया जा सकता है।

—:o:—

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना

बंगलौर मद्रास

मूल्य : रु० ६५ (सजिल्द)
४५ (अजिल्द)